त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका

वर्ष-13, अंक-45, अप्रैल - जून 2023

ISSN-2321-1504 Nagfani

RNI No. UTTHIN/2010/34408

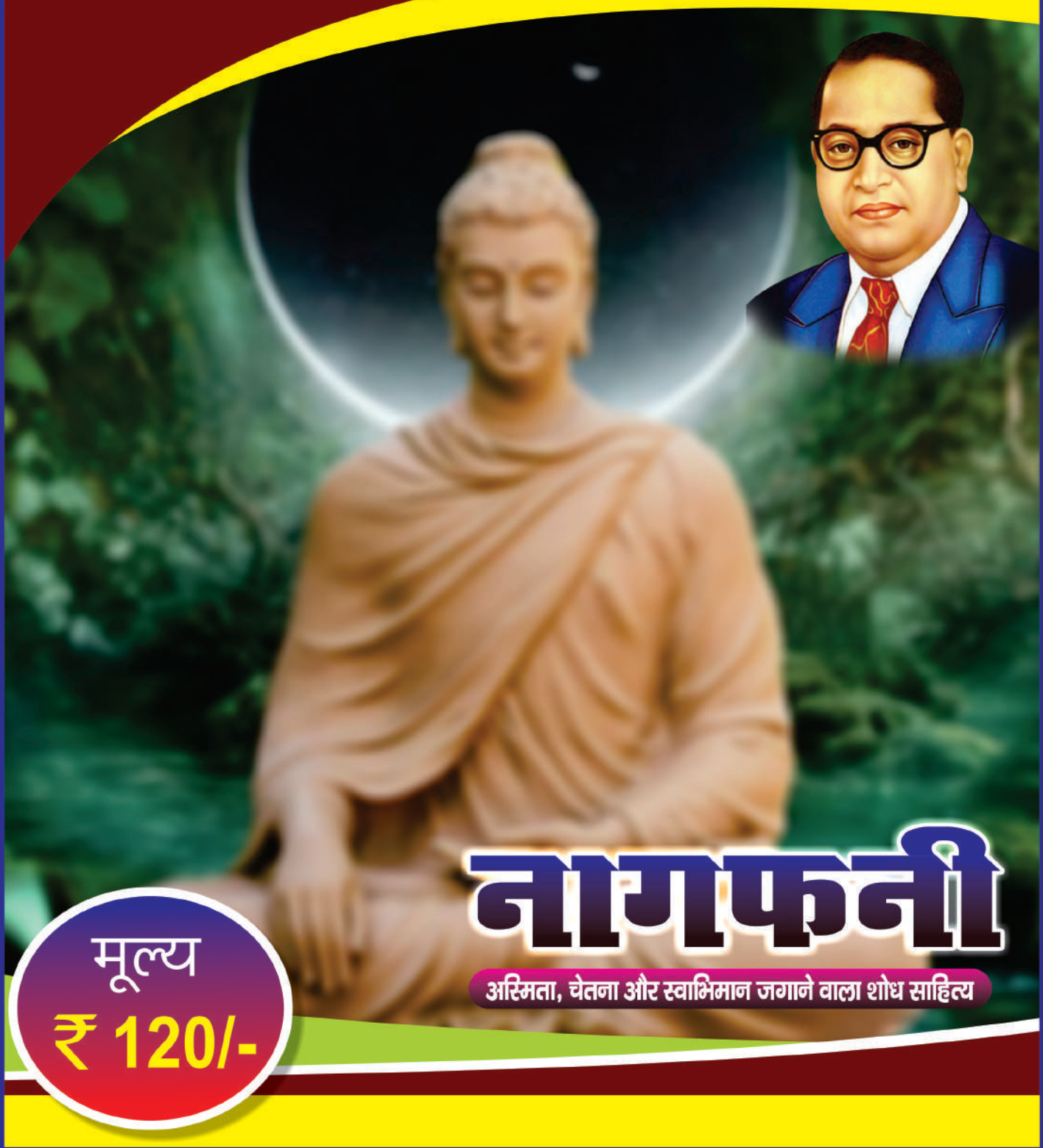

नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला शोध साहित्य

मूल्य

₹ 120/-

अगामी अंक की सूचना

अप्रैल से जून 46वाँ अंक के लिए आगामी 30 अक्टूबर 2023 तक ही आलेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 अक्टूबर के बाद प्राप्त आलेख को उसके आगे वाले अंक के लिए रखा जाएगा। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं। स्वीकृति संबंधी मेल प्राप्त होने के बाद सदस्यता के बारे में जानकारी के लिए सम्पर्क कर सकते हैं. सदस्यता के संबंध में नागफनी के वेवसाइट पर विस्तार से जानकारी दी गयी है."नागफनी" अस्मिता,चेतना,और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है पत्रिका का ISSN-2321-1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख nagfani81@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

आलेख भेजने संबंधी निर्देशः-

- शोधालेख यूनिक कोड kokila फॉन्ट 16 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है ।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण-पत्र
- अन्य किसी टाइप फान्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refrred Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला शोध साहित्य)
त्रैमासिक साहित्यिक शोध पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर
सह संपादक
रूपनारायण सोनकर
Co Editor(English
Pro.Rajesh karankal
Dr.Santosh Kumar Sonker
कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति

वर्ष-13 अंक45,अप्रैल -जून 2023

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.ओम प्रकाश सैनी, कैथल (हरियाणा)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन. पी.प्रजापति द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य

मुख पृष्ठ—डॉ. आजम शेख, मैत्री ग्राफिक्स, सावंगी (ह), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.8279789405

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/-रुपये, पंच वार्षिक

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-फोन पे –8279789405 बैंक–A/C –Name - NAAGFANI
A/C - 41588126927 IFS CODE- SBIN 0010633 SWIFT SBI - COLLECTORATE COMPOUND DEH-RADUN UTTARAKHAND 248001

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमें संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं ।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gamil.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी

वर्ष-13 अंक - 45,अप्रैल-जून-2023

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 3-4

साहित्यिक विमर्श

1.सूअर दान: एक अध्ययन - **प्रो.राजमुनी** 5-11

2.नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में समसामयिक बोध - **रमेश प्रसाद पटेल & डॉ. अमित शुक्ला** 11-13

3.समकालीन हिंदी ग़ज़ल में पर्यावरणीय चेतना - **विनीत कुमार यादव, डॉ. क्षमा मिश्रा** 13-15

4. नागार्जुन के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन - **जितेन्द्र कुमार** 16-19

5. 'धरती' का 'दर्द' धरती कविताएं - **प्रो. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत** 19-25

6. संत काव्य में जिज्ञासा भाव - ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय - **डॉ. शीतल प्रसाद महेन्द्रा** 25-28

दलित विमर्श

1.ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों की 'कथा-संरचना'- **विनय कुमार यादव** 29-31

स्त्री विमर्श

1.अन्नाभाऊ साठे के साहित्य की नायिका और उनका संघर्ष-**डॉ. मिलींद रामचंद्र घाटे** 32-33

2.नारी की अस्मिताः समकालीन कहानियों में - **डॉ. सिन्धु जी नायर** 33-37

3.'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचंद की विधवा-संवेदना - **गजराज सिंह** 38-39

4.कंजर समाज और महिला सशक्तीकरण का मजबूत दस्तावेज है रेत उपन्यास - **कनकलता श्रीवास्तव** 39-41

5.दलित स्त्री चेतना को अभिव्यक्त करती सुशीला टोकभौरे की कविताएं **-हरेन्द्र कुमार** 42-44

विविध विमर्श

1.आंबेडकर की भारतीय-संस्कृति - **प्रो. कन्हैया त्रिपाठी** 45-47

2.नये संविधान की मांग आखिर क्यों? - **राम पुनियानी** 48-49

3.समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित किन्नर विद्रोह - **रामेश्वर महादेव वाढेकर** 49-50

कहानी

1. दुलारी - **रूप नारायण सोनकर** 51-52

कविता

1.**कानपुर की एक मेहतर बस्ती में रहने के दिन याद करते हुए - प्रो. दिनेश कुशवाह** 53-54

2.क्रिकेट की घरेलू पिच पर बैटिंग(हास्य-व्यंग्य) - **रूप नारायण सोनकर** 55

English Discourse

Dalit Discourse

1.The Narrative Trajectory of Omprakash Valmiki's *Joothan*: The Three Evolutionary Ps Pain, Protest and Progress - **Laksheyata Yadav** 56-62

Other Discourses

1.Assessment of Body Mass Index of Young Adult (Male) who Practices Yoga Postures regularly - **Dr. Abhishek Sanchora & Dr.Asem Jayanti Devi** 63-64

2.Right to Water and Human Rights a Socio- Legale Study - **Dinesh Kumar** 65-69

3.Value education in teacher training **- Dr.Sujan kumar Patel & Dr.Shefali Patel** 69-71

4.The Educational System of Indian Society in Chetan Bhagat's Five Point Someone **- P. Iyyappan & Dr. V. Suresh** 72-74

5.The Inner Sufferings of Women in Shashi Deshpande's The Binding Vine-A**. Sagayaraj & Dr. V. Suresh** 74-78

****

संपादकीय .....

जब बच्चा इस धरती पर अवतरित होता है तब माता- पिता की खुशियों का कोई ठिकाना नहीं रहता है। आदमी और औरत की तीन स्थितियां होती हैं बचपन,जवानी और बुढ़ापा। बच्चे का एक से लेकर अट्ठारह साल की उम्र तक मन मस्तिष्क कुम्हार की मिट्टी की तरह होता है। कुम्हार बर्तन चाक के सहारे बनाता है। मां बाप भी एक कुम्हार की तरह ही होते हैं। वे अपनी संतानों को इंटरमीडिएट तक शिक्षा कराने के बाद डॉक्टर , इंजीनियर, आई. ए. एस, आई. पी. एस, टेक्नोक्रेट्स आदि बनाना चाहते हैं। यहां तक की वे अपने बच्चों को थल सेना,वायु सेना और जल सेना के बड़े-बड़े अधिकारी बनने का ख़्वाब अपने बच्चों में भर देते हैं। वास्तव में ये नौकरियां देश की प्रतिष्ठित नौकरियां मानी जाती हैं। इन नौकरियों में जाने से देश और समाज की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती है। नौजवानों में देश और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का जज़्बा पैदा हो जाता है।

विदेशों में बैज्ञानिक विधि से बच्चों की अभिरुचि का ध्यान रखा जाता है।उनकी जिज्ञासा और इच्छा के अनुसार ही शिक्षा दी जाती है। माता- पिता अपनी इच्छा उन पर नही थोपते हैं, उन पर कोई जबरदस्ती उनके द्वारा नही की जाती है। बच्चे अपने अनुसार अपना भविष्य बनाते हैं और अपने देश के एक सक्षम नागरिक बनते हैं।

भारत देश में ऐसा नहीं है। शिक्षा प्राप्त करने में बच्चों की अभिरुचि का ध्यान नहीं रखा जाता है। यदि पड़ोसी का बच्चा कोई क्लास वन अधिकारी बन गया या व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में टेक्नोक्रेट जैसी प्रतिष्ठित नौकरी प्राप्त कर लिया, जिसमे करोड़ों का प्रतिवर्ष पैकेज रहता है। माता-पिता और युवा की जिज्ञासा इस तरह की नौकरियां पाने की हो जाती है।ऐसी उच्च श्रेणी की नौकरियां पाने वाले लोग बैंकों से लोन के जरिए गाड़ी बंगला तुरंत खरीद लेते हैं और मनपसंद लड़की से शादी भी कर लेते हैं।विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रहे युवाओं में उपरोक्त उदहारण उनके सामने होते हैं।

देश भर में आई. ए. एस, आई. पी. एस,डॉक्टर,इंजीनियर,वकील , सेना के ऑफिसर और टेक्नोक्रेट की शिक्षा देने के कोचिंग इंस्टीट्यूट,सेंटर आदि बहुतायत में खुल गए हैं। जहां से बच्चे ट्रेनिंग पाकर मन चाही उच्च नौकरियां पा जाते हैं। इन प्राइवेट कोचिंग संस्थाओं का देश भर में अरबों खरबों का व्यापार हो गया है। कोटा ,राजस्थान में बहुत सारे प्राईवेट कोचिंग इंस्टीट्यूट चल रहे हैं, जो उच्च कोटि का प्रशिक्षण देकर युवाओं को उच्च कोटि की सरकारी और प्राईवेट नौकरियां पाने में मदद करते हैं। कोटा में चल रहे तमाम कोचिंग सेंटर की ख्याति देश भर में फैल गई है। इसका मुख्य कारण कोटा के कोचिंग इंस्टीट्यूट से शिक्षा पाए युवा देश की प्रतिष्ठित सरकारी व प्राईवेट उच्च श्रेणी की नौकरियां प्राप्त कर रहे हैं। अधिकतर युवा कोटा के कोचिंग इंस्टीट्यूट से प्रशिक्षण लेने के बाद नौकरियां प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन वहां के तमाम कोचिंग इंस्टीट्यूट में पढ़ रहे पच्चीस-तीस युवा प्रति वर्ष आत्म हत्या क्यों करते हैं?

यह एक विकट समस्या है। मनोचिकित्सक इस पहेली को सुलझाने में लगे हैं। मेरा मानना है कि युवाओं को उनकी अभिरुचि के अनुसार शिक्षा देना चाहिए। जबरदस्ती अपनी इच्छा उन पर नही लादना चाहिए। बहुत से युवा विज्ञान, गणित और इंग्लिश में बहुत कमजोर होते हैं। ऐसे युवाओं को कोटा के कोचिंग इंस्टीट्यूट में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजना और उनसे डॉक्टर,इंजीनियर, और टेक्नोक्रेट बनने की उम्मीद रखना गलत है। ज्यादातर ऐसे ही युवा आत्म हत्या करते हैं। कोटा में बहुत सारे कोचिंग इंस्टीट्यूट में कम्पटीशन बढ़ गया है। प्रत्येक कोचिंग इंस्टीट्यूट अच्छा से अच्छा रिज़ल्ट लाने के लिए युवाओं पर ज्यादा से ज्यादा दबाव डालते हैं जिसको कमजोर दिल के बच्चे सहन नही कर पाते हैं। जब वे फैल हो जाते हैं तब उनको अपना भविष्य अंधकार मय लगता है।गरीब माता- पिता का पैसा बर्बाद हो जाना उनको बहुत खलता है। माता-पिता ने जो उम्मीद उनसे लगाई थी, उसमे वे लोग खरे नहीं उतरते हैं। जब उनके सहपाठी उच्च नौकरियां के लिए चुन लिए जाते हैं तब उन पर दबाव ज्यादा बढ़ जाता है क्योंकि कि वे असफल हो जाते हैं। वे सोचने लगते हैं कि वे समाज में मुंह दिखाने लायक नही रहेंगे। माता-पिता, समाज और गुरुजनों का प्रेसर भी उन पर हावी हो जाता है। सरकारी और प्राइवेट संस्थाओं में नौकरियां नाम मात्र की रह गई हैं। आत्महत्या का यह भी एक कारण है। उनको प्रगति के सारे रास्ते बंद नज़र आते हैं। आज कल गर्ल और ब्वॉय फ्रेंड रखने का दौर तीव्र गति से चल रहा है। लगभग नाइंटी फाइव प्रतिशत युवा गर्ल और ब्वॉय फ्रेंड रखते हैं। कुछ युवा अपनी गर्ल फ्रेंड से वायदा करते है कि वे ऑफिसर बनने के बाद तुरंत उससे शादी कर लेंगे। जब वे परीक्षा में असफल हो जाते हैं तब उनको सारी दुनिया बेकार लगने लगती है। वे आत्म हत्या करने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

मिडिल क्लास के बच्चे ज्यादा आत्म हत्याएं करते हैं जिनमे दलित,पिछड़े और गरीब सवर्ण के युवा सम्मिलित हैं। गरीब दलित और पिछड़े युवाओं के माता-पिता कर्ज में डूब जाते हैं।

****

भारत रत्न बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के दर्शन से दलित,पिछड़ा, गरीब सवर्ण और अल्पसंख्यक समाज बदल रहा है

"शिक्षित बनो, संगठित हो,संघर्ष करो"बाबा साहेब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर का उपर्युक्त अमर वाक्य पब्लिक डोमेन में ऊर्जा भर रहा है। गरीब से गरीब लोग अपने अपने बच्चों को शिक्षित करने में लगे हैं जो बहुत ही उत्साह वर्धक है। आजादी के बाद सरकार ने लगभग प्रत्येक गांव में कक्षा एक से पांच तक प्राइमरी पाठशालाओं का निर्माण किया। कई गांवों के मध्य एक एक

जूनियर हाईस्कूल खोले गए। बड़े बड़े कस्बों में राजकीय इण्टर कॉलेज खोले गए। इसके बाद बड़े बड़े शहरों में विश्व विद्यालय खोले गए। शिक्षा ने तेजी से गति पकड़ी और नौजवान पीढ़ी शिक्षित होने लगी।वे लोग बी ए, एम ए करने के बाद छोटी बड़ी नौकरियां पाने लगे। लोगों की गरीबी दूर होने लगी।मुझे याद है मेरे सगे रिश्तेदार श्री आर डी सोनकर जो गांव सौह तहसील बिंदकी,जिला फतेहपुर उत्तर प्रदेश भारत के रहने वाले थे। नेहरू इण्टर कॉलेज बिंदकी से इंटर मीडिएट करने के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से दर्शनशास्त्र में एम ए किया। इसके बाद आई ए एस हो गए।जिला फतेहपुर के सभी वर्गों के नौजवानों ने श्री आर डी सोनकर का अनुसरण किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद से पढ़ने के बाद आई ए एस , पी सी एस और एलाइड सेवाओं में चुने गए। श्री आर डी सोनकर एक पथ प्रदर्शक के रूप में ख्याति प्राप्त की।

उस समय स्कूल,कॉलेज और विश्वविद्यालय की फीस बहुत ही कम थी। गरीब से गरीब आदमी का बेटा और बेटी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता था। जब से प्राइवेटाइजेशन शिक्षा के क्षेत्र में हुआ,शिक्षा बहुत ही मंहगी हो गई।गरीब आदमी धीरे धीरे शिक्षा से वंचित होता जा रहा है। प्राइवेट स्कूलों का व्यावसायिककरण हो गया है। शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। जगह जगह पैसा कमाने के लिए प्राइवेट इंजीनियरिंग व मेडिकल कॉलेजों की भरमार हो गई है। जो बहुत अधिक धनाढ्य होगा वही डॉक्टर बनेगा। पी एम टी टेस्ट के बाद जो डॉक्टर बनते थे उनमें दक्ष डॉक्टर समाज को मिलते थे। जो इंजीनियर सरकारी इंजीनियरिंग कॉलेजों से निकलते थे।वे सभी बहुत ही काबिल इंजीनियर होते थे।

अब बी टेक ,एमबीए करने के बाद नौजवान सड़कों पर बेरोजगार घूम रहे हैं। एक उदाहरण देना चाहता हूं। एक एम बी ए ,एक स्टोर की दुकान में काम कर रहा था । वह घर-घर जाकर स्टोर में बिकने वाली वस्तुओं का प्रचार कर रहा था। मैने जानने के लिए उससे पूछा, -

"आप कितना पढ़े हैं?"

उसने कहा- " एम बी ए "

मैने कहा- " आपको कोई अच्छी नौकरी नहीं मिली और आप इस काम के लिए प्रति माह कितना रुपया पाते हो?"

वह बोला- " केवल सात हजार"

मैने अफशोश जताते हुए कहा- " यह धनराशि बहुत ही कम है!"

उसने उत्तर दिया - " किसी तरह सरवाइव करना है। "मुझे यह जानकर बहुत पीड़ा हुई। करोड़ों बेरोजगारों का यही बुरा हाल है।

रोटी रोटी के लिए
संघर्ष कर रहा है प्रत्येक आदमी
उच्च शिक्षित आदमी
फिर भी भूंखा सोता है

इस संबंध में मेरी एक कविता प्रस्तुत है।-

वह रिक्शा चला रहा था
तेज बुखार से उसका बदन तप रहा था
वह शाम को अपने बच्चों को
रोटी खिलाना चाहता था
एक सेठ रिक्शा पर बैठा
उससे तेजी से रिक्शा चलाने को
कह रहा था
जर्जर शरीर रिक्शा न थाम सका
जमीन पर गिर पड़ा था
मरते मरते जय भारत, जय भारत,
कह रहा था।

****

दिनांक–30 जून 2023

-रूप नारायण सोनकर

ADDRESS:-
JAGNANDINI PALACE
DANDA LAKHOND
SAHASTRADHARA ROAD DEHRADUN
PIN 248001 UTTARAKHAND
Mobile : 8279789405
EMAIL ID :- sonkar.roopnarayan@gmail.com

सूअर दान: एक अध्ययन

प्रो. राजमुनी
हिंदी विभाग
काशी विद्यापीठ यूनिवर्सिटी वाराणसी उत्तरप्रदेश

हिंदी दलित साहित्य में यदि ध्यान से देखा जाए तो आत्मकथा के अलावा उपन्यास ,नाटक, कहानी ,कविता आदि विधाओं में भी साहित्य लेखन बहुत तीव्र गति से हो रहा है। साहित्य की प्रत्येक विधा अपने आप में भारतीय समाज का स्वरूप चित्रित करने में एक से बढ़कर एक है चाहे वह कहानी हो चाहे उपन्यास। दलित साहित्य ने आज अनेक भारतीय भाषाओं में अपनी उपस्थिति बड़ी दमदारी के साथ प्रस्तुत की है। इसकी प्रमुख वजह है कि दलित साहित्यकार जब साहित्य सृजन करता है तो वह किसी दूसरे से कोई कला उधार नहीं लेता और ना ही वह किसी दूसरे की नकल करता है। इसके साथ ही सबसे बड़ी बात यह है कि दलित साहित्यकार की अपनी भाषा होती है अपनी संस्कृति होती है अपने पात्र होते हैं अपनी संवेदना होती है और अपनी सभ्यता होती है इन सब से मिलकर बनता है उसका परिवेश जिसमें वह पल-पल जीता है और मरता है। हां एक बात अवश्य है कि साहित्यकार अपने अस्तित्व को याद रखते हुए एक समतामूलक समाज की संकल्पना करता है। एक ऐसे भविष्य का सपना देखता है जिसमें पूरा देश सुख में जीवन व्यतीत कर सकें कोई किसी के साथ अत्याचार और भेदभाव ना करे। इन्हीं दलित साहित्यकारों की श्रंखला में रूपनारायण सोनकर जी का नाम अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से नागफनी आत्मकथा के साथ-साथ 'जहरीली जड़े ",कहानी संग्रह -'डंक 'उपन्यास 'सूअर दान 'जैसी अनेक कालजई रचनाओं का सृजन किया और आज भी वे निरंतर एक बेहतर भविष्य की कामना के साथ साहित्य सृजन कर रहे हैं।

इनके द्वारा रचित 'सूअर दान 'उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसके विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इसकी प्रशंसा की है। उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है की पूरी दुनिया में जितने भी विकसित देश हैं वहां पर व्यक्ति की कला और कर्म को सम्मान और महत्व दिया जाता है। दूसरी हो भारत एक ऐसा देश है जहां कर्म को छोड़कर धर्म और ईश्वर पर सबसे अधिक खर्च किया जाता है। यही वजह है कि भारत आज भी अनेक स्तरों पर विकसित देशों से हजारों वर्ष पीछे है। आर्थिक संपन्नता के विषय में लेखक का मानना है कि यदि आपके पास संपत्ति है तो जीवन की बहुत सारी समस्याएं अपने आप हल हो जाती हैं। इसी बात को पुष्ट करते हुए वह कहते हैं कि-" धन की शक्ति वह शक्ति होती है जो सारी परेशानियों पर विजय प्राप्त कर लेती है। अमेरिका, इंग्लैंड और अन्य पश्चिमी देशों में वहां के मूल निवासी टाई सूट पहनकर झाड़ू लगाते हैं लेकिन उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई आंच नहीं आती है लेकिन भारतवर्ष में किसी सवर्ण ने अच्छा कार्य किया तो सामाजिक प्रतिष्ठा और धर्म उनको लहूलुहान कर देता है।"1 (सूअर दान, पृष्ठ संख्या 9)यह उस समय का प्रसंग है जब रामचंद्र त्रिवेदी और उसके अन्य दलित जाति के साथी आपस में मिलकर एक सूअर फार्म खोलते हैं जिससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती जाती है। इसके बाद भी रामचंद्र त्रिवेदी कभी भी अपने आप को हीन भावना से नहीं देखता है। बल्कि वह पूरे गांव में सीना उठाकर चलता है और इस बात पर गर्व महसूस करता है कि वह सूअर पालन से संपन्न हुआ है। और वहां यहां तक भी कह देता है कि मानव जीवन में वही कार्य सबसे उत्तम है जिसमें आपको आत्म संतुष्टि मिले। यह बात उसने उस समय कहीं जब वह अपने साथियों के साथ बैठकर मयखाने में शराब पी रहा था और स्वर्ग के विषय में चिंतन करते हुए कह रहा था कि वास्तव में यदि कहीं स्वर्ग है तो वह है मेरे सूअर फार्म में।पूरे विश्व में प्रत्येक व्यक्ति अधिकतर दो प्रकार के सुखों की तलाश में रहता है। इनमें से पहला सुख है शारीरिक सुख और दूसरा है मानसिक। यह दो तरह के सुख हैं और यह दोनों तरह के सुख किसी भी धर्म और जाति के बंधन को स्वीकार नहीं करते। यह बात रामचंद्र त्रिवेदी के संबंध में घसीटे चमार ,सज्जन खटीक और सावंत यादव ने कही। क्योंकि यह चारों बहुत अच्छे मित्र हैं जिनके अंदर किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। इस सूअर पालन को लेकर सबसे अधिक सामाजिक विरोध रामचंद त्रिवेदी को झेलना पड़ता है इसके बाद किसी का नंबर आता है। क्योंकि उनके लोग जो यह मानकर बैठे थे कि सबसे अधिक अधर्मी और पापी केवल दलित और पिछड़े होते हैं लेकिन उन्हें पता चला एक ब्राह्मण भी अपने लाभ के लिए इतना गिर सकता है।

लेखक ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में अपने उपन्यास में यह बताने का प्रयास किया है की शिक्षा और धर्म में क्या अंतर है। वे कहते हैं कि शिक्षा तर्क करना सिखाती है और धर्म अंधभक्त बनाता है। लेकिन यह सच है कि सही बात को कितना भी न करने की कोशिश की जाए आप उसे नकार नहीं सकते। तभी तो जो लोग उनको समझाते हैं कि सूअर पालन मेहतर का काम है तो वह इसका जवाब देते हुए कहते हैं कि-"आप लोगों ने धारणा फैला रखी है। गोमूत्र पवित्र होता है और शुद्ध होता है लेकिन सच तो यह है कि मूत्र -मूत्र होता है पाखाना -पाखाना होता है चाहे वह आदमी का हो या जानवर का।"2 (12)

सच तो यह है कि आज मानव ने जमीन से लेकर आसमान तक जीवन को सुलभ बना लिया है। उसने अपने विकास के बहुत सारे संसाधन अपने बुद्धि और विवेक से विकसित कर लिए। आज 21वीं सदी में आधुनिक शिक्षा पद्धति ने हमें सिखाया है जीवन जीने के लिए दो चीजें बहुत जरूरी है सबसे पहला श्रम करना और दूसरा ईमानदारी ।क्योंकि इनका हमेशा चोली दामन का साथ रहा है। वर्तमान समय में संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपना व्यापार चुनने का अधिकार है। कोई अब दूसरे को किसी भी प्रकार का व्यापार करने से नहीं रोक सकता। इसी बात को स्पष्ट करते हुए लेखक कहते है कि -"आज के युग में कोई भी व्यापार करना अधर्म नहीं होता। मेहनत और ईमानदारी से किया गया कार्य उस कस्तूरी को प्राप्त करता है जो मिरग में रहती है। पुजारी दयाशंकर हजारों वर्षों पुरानी अंधविश्वास मान्यताओं और परंपराओं को धो रहे थे जो स्वयं सवाना और विशेषकर ब्राह्मण समाज के लिए घातक साबित हो रही है। पृष्ठ संख्या -12) श्रम की फसल सदैव हरी भरी रहती है लेकिन हराम की फसल बहुत जल्दी सूख जाती है। धर्म के नाम पर पुजारी दयाशंकर गांव वालों को ईश्वर के बारे में बहुत बड़े-बड़े उपदेश देते थे लेकिन उनकी नजर सदैव गांव की बहन बेटियों पर टिकी रहती थी। उनकी कथनी -करनी में बहुत अंतर था कहा जाता है खाने के दांत और दिखाने के दांत और। यही वजह है कि वह इस बात से दुखी है अब उसके धर्म के धंधे चौपट हो जाएंगे।

समाज को अपने वश में करने के लिए पाखंडियो ने हजारों वर्ष से यही भय दिखा रखा है कि यह आस्था का विषय है इसमें तर्क नहीं चलता। अगर तुम ईश्वर के विरुद्ध कार्य करोगे तो भगवान ही रूठ जाएगा। ऐसा हो भी क्यों ना इनके अनेक तुलसी जैसे कवियों ने लिख ही दिया है-भय बिनु प्रीत न होई गुसाईं। आधुनिक शिक्षा पद्धति

तर्क करना सिखाती है स्वस्थ परिवर्तन चाहती है। शिक्षा ही वह माध्यम है जो सभी लोगों के मानसिक रोगों का बेहतर इलाज कर सकती है। शिक्षा के बिना व्यक्ति आवारा पशुओं की तरह होता है। इसीलिए हजारों वर्ष से दलितों और पिछड़ों को शिक्षा से वंचित रखा गया और आगे भी रखने के प्रयास निरंतर जारी है।भ्रूण हत्या किसी भी सभ्य देश के लिए सबसे घिनौना काम है। भ्रूण हत्या जैसे अपराध भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि बहुत सारे देशों में भ्रूण हत्या हैं आज भी हो रही है। लेकिन इस सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता है कि अगर इसी तरह से लड़कियों की हत्या होती रही तो एक दिन ऐसा आएगा जहां देश में एक लड़की दस लड़कों से शादी करेगी। भारत में तो लड़कियों का अकाल महाभारत काल से है। वह भी धार्मिक पाखंडो की वजह से। पाश्चात्य देशों में समझदारी भी है और प्यार भी है। इसके विपरीत भारतीय सभ्यता और संस्कृति में धार्मिक अंधविश्वास और रूढ़िवादिता कदम कदम पर दिखाई देती है। इसी सच्चाई को ध्यान में रखते हुए लेखक ने मिस हैरी सिल्वा और उसके चारों मित्र रामचंद्र त्रिवेदी ,सज्जन खटीक ,घसीटे चमार और सलवंत यादव की प्रेम कथा के द्वारा एक सुखद भविष्य की कल्पना की है-"हम सभी लोग अच्छे हैं। धन्यवाद मिस हैरी सिल्वा तुम्हें हमारी याद आई।
तभी तो इंग्लैंड से आप लोगों से मिलने भारत आई हूं।
रामचंद्र त्रिवेदी ने कहा-'आपकी बहुत याद आ रही थी।'

सज्जन खटीक ने कहा-'तुम्हारी पोएट्री के प्रेम गीत मुझे विचलित कर रहे थे।'घसीटे चमार ने आतुर भरी आंखों से हैरी को देखा और बोला मैं तुम्हारे संबंध में कानून का आर्टिकल खोज रहा था ताकि हम चारों का जीवन संभल जाए।'सलवंत यादव इस वक्त में बायोलॉजी का कोई गूढ सूत्र ढूंढने लगे और कहा-'लगता है हम चारों की किस्मत सुधरने वाली है।"(पृष्ठ संख्या 17)

हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह दिनकर अपनी प्रसिद्ध रचना 'रश्मिरथी 'कर्ण और दुर्योधन की मित्रता के विषय में कहते हैं-'मित्रता बड़ा अनमोल रत्न .....।'इसका मतलब यह है कि एक जैसी जीवनशैली और विचार है मित्रता को अनवरत रूप से आगे चलने में मदद करते हैं। आदर्श मित्र और आदर्श परिवार से ही सभ्य समाज का निर्माण होता है। लेकिन दूसरी ओर जो लोग कीचड़ में रहते हैं उन्हें अच्छे पानी में रहना पसंद नहीं आता। लोगों ने सही कहा है कि गोबर का कीड़ा गोबर में ही रहना पसंद करता है। रूपनारायण जी ने पुजारी दयाशंकर जैसे दोगले लोगों के विषय में बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि ऐसे लोगों को स्वस्थ परंपरा पसंद नहीं आती। भारतीय गांव की संरचना और पाश्चात्य गांव की संरचना में इसीलिए फर्क दिखाई पड़ता है। इन दो तरह की चीजों में व्यवस्था और सोच का फर्क है। भारतीय समाज के गांव की संरचना ऐसी संरचना है जो पर्दे के भीतर सब कुछ चाहती है और सहन भी करती है लेकिन खुलकर खेलने से भागती है। भारत में पर्दा जरूरी है लेकिन पर्दे के पीछे कुछ भी करो। यहां धर्म और ईश्वर विज्ञान पर भारी पड़ता है क्योंकि धर्म के आगे तर्क नहीं किया जाता है। यदि कोई तर्क करता है तो उसे समाज विद्रोही कहा जाता है। इतना ही नहीं दुनिया का सबसे बड़ा पापी भी समझा जाता है।

किसी भी देश को विकसित बनाने के लिए सबसे बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षा की होती है। यदि किसी देश को बर्बाद करना हो तो वहां की शिक्षा व्यवस्था को समाप्त कर दीजिए। यही हो रहा है भारतीय समाज में आजादी से पहले और आजादी के बाद। पूरे विश्व में जितने भी देश हैं जो विकसित हैं वहां की सरकार अपने प्रत्येक नागरिक की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वयं लेती हैं। इसीलिए वहां का प्रत्येक नागरिक अपने देश के विकास के विषय में सोचता है और उसमें सहयोग करता है। इसी बात को लेखक ने बहुत स्पष्ट शब्दों में अपने उपन्यास में अभिव्यक्त किया है-"वहां पर सरकारी और प्राइवेट सेक्टरों का एक सुव्यवस्थित संचालन होता है। लड़के -लड़कियों को मुफ्त शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का सारा भार सरकार उठाती है।"पृष्ठ संख्या 22

पूरी दुनिया में पाप और पुण्य की अनेक परिभाषाएं देखने को मिलती है। वहीं पर गौतम बुध कहते हैं कि पाप क्या है? और पुण्य क्या है? यह तो मैं नहीं जानता लेकिन हां जब किसी व्यक्ति या समाज की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य किया जाता है तो वह पाप होता है। महापुरुषों ने ही नहीं बल्कि हमारे अनेक साहित्यकारों ने भी अन्याय के विषय में स्पष्ट रूप से लिखा है। उनका मानना है कि अन्याय करने वाले से अन्याय सहने वाला अधिक जिम्मेदार होता है। इसीलिए दलित समाज पर आजादी से पहले से लेकर आज तक अनेक तरह के अन्याय अत्याचार हो रहे हैं। लेकिन अब उन अत्याचारों का विरोध भी किया जा रहा है और उनके प्रति चारों और विद्रोह के स्वर भी सुनाई दे रहे हैं। लेखक कहते हैं कि किस प्रकार ईट के भटटो पर काम करने वाले मजदूरों का हर तरह से मानसिक और शारीरिक शोषण किया जाता है। जब उसकी सारी हदें पार हो जाती हैं तब वह अपने बिखरने की चिंता किए बिना उसके विरुद्ध हो जाते हैं और उससे डटकर मुकाबला करते हैं। इसी प्रकार के शोषण और अन्याय के शिकार धर्म परसी और सन्नो होते हैं। जयंत सिंह जब सन्नो को घसीटते हुए अपने कमरे पर ले जाता है तब वह ठाकुर से कहती है-"तू हिजड़ा है। अगर तू हिजड़ा ना होता तो औरतों पर इस तरह अत्याचार न करता। छोड़ मेरा हाथ नासपीटे दादा गयादीन तुम लोग आओ इस हारामी को ठीक कर दो। आज यह मेरे साथ अत्याचार कर रहा है कल तुम्हारी लड़की और स्त्रियों के साथ भी करेगा।"पृष्ठ संख्या -26 फिर क्या था सभी लोगों ने लाठी-डंडे लेकर के जयंत सिंह की चटनी बनाई और इतना मारा कि वह बेहोश हो गया। इसके बाद सारे मजदूर अपना सामान बांध कर अपने अपने गांव चले गए। इससे स्पष्ट होता है कि बंधी हुई झाड़ किसी भी गंदगी को साफ करने में सक्षम होती है लेकिन खुली हुई झाड़ि तिनका भी साफ नहीं कर सकती। लेखक ने यहां इसी बात को अपने उपन्यास में बहुत सहज ढंग से पाठकों के सामने रखा है।

लेखक ने अपने उपन्यास में शिक्षा प्राप्ति के बाद मानवी विकास की ओर भी इशारा किया है। वे उस चीज को भी बताने से नहीं चूकते हैं जो शिक्षित होने के बाद भी अपने समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नहीं चलते हैं। लेखक का मानना है कि बौद्धिक विकास के साथ-साथ भावनात्मक विकास भी जरूरी है तभी तो हम एक बेहतर समाज की कल्पना कर सकते हैं। लेखक गांव और शहर दोनों के विषय में अपनी समझ स्पष्ट रखते हैं। वे कहते हैं कि गांव के शोषण की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। वे सैकड़ों पीढ़ियों का हिसाब रखते हैं। शहरों के शोषण की अपनी हदे होती हैं लेकिन सच्चाई यही है गांव और शहर दोनों में जातिवाद और भेदभाव का जहर आज भी देखने को मिलता है।

किसी भी देश के विकास के लिए स्वास्थ्य ,शिक्षा ,न्याय ,सुरक्षा चारों आवश्यक। लेकिन भारत का दुर्भाग्य रहा है कि आजादी से लेकर आज तक इन चारों पर उस प्रकार ध्यान नहीं दिया जैसा देना चाहिए। रूपनारायण जी आगे बताते हैं कि गुंडे और बेईमान की ना कोई जाति होती है ना कोई धर्म होता है। जिसके मुंह में खून लग जाता है उसे केवल मांस चाहिए कहां से आएगा इसकी उसे कोई चिंता नहीं। सरकारी सुविधाओं का शोषण करने में सभी लोग अपना अपना योगदान देते हैं। तभी तो लेखक कहता है-"सत्यनारायण त्रिपाठी जोरावर सिंह से पूछता है-'क्यों बे डॉक्टर तेरे हेल्थ सेंटर का क्या हाल है? डॉक्टर जोरावर सिंह ने शराब के प्याले को हाथ में घुमाते हुए और प्याले में नजर बढ़ाते हुए उत्तर दिया-'आपके आशीर्वाद से हम तीनों के शराब के प्याले में प्राइमरी हेल्थ सेंटर की समस्त दवाइयां घुल गई है।

उन तीनों का हेल्थ सही रहा तो गांव वालों का भी हेल्थ सही रहेगा। दूसरी हो जो पैसा सरकारी स्कूल के लिए आता है उसको भी लोग अपने सुख सुविधा के लिए इस्तेमाल कर लेते हैं। जब जितेंद्र यादव सत्य नारायण त्रिपाठी से कहता है कि मैंने भी तो आपके अनुसार स्कूल में काम किया है मेरे बारे में तो कुछ कहे। इस पर सत्यनारायण त्रिपाठी बोला-"दवाइयों का टॉनिक पीने के बाद मुझे नींद नहीं आएगी। स्कूल के लिए जो पैसा फर्नीचर खरीदने के लिए दिया गया था तूने हम तीनों के घरों में लगवा दिया। तुझे मैं सफल स्कूल प्रिंसिपल होने का पूरा क्रेडिट देता हूं।" पृष्ठ संख्या 30 यहां हम देखेंगे किस प्रकार शिक्षा स्वास्थ्य में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इसमें भ्रष्टाचार करने वाले केवल वे ही लोग हैं जो धन बल और जन बल से संपन्न है। इसी में एक नाम है सत्यनारायण त्रिपाठी उसने सभी को डरा धमका कर रखा है। यहां तक कि वह सभी से खुलेआम कहता है मैंने 15 मर्डर किए हैं 15 वर्षों की प्रधानी में। यहां हम देख सकते हैं कि भ्रष्टाचार और अन्याय करने में गैर दलित ही सबसे आगे दिखाई देते हैं।

वही उपन्यासकार ने दूसरी ओर यह भी बताने का प्रयास किया है कि दलितों ने भयंकर विपरीत परिस्थितियों में भी अपने मानवीय व्यवहार को नहीं बदला और ना ही दूसरे से मानवीय व्यवहार की आशा छोड़ी जैसे काला बच्चा नाम का एक पात्र है जो लंगड़ा है इसके बाद वह सुनैना से कहता है कि तुम भाग जाओ मैं लड रहा हूं इसीलिए लोग मुझे नहीं मारेंगे। लेकिन इसके बाद भी उन्होंने सुनैना और काला बच्चा को खूब डंडों से मारा।

किसी भी देश का समग्र विकास शिक्षा की धुरी पर टिका होता है। शिक्षा के महत्व के विषय में विश्व के अनेक विद्वानों ने अपनी राय इस प्रकार दी है। नेलसन मंडेला का मानना है कि शिक्षा दुनिया का सबसे ताकतवर हथियार है लेकिन इसका प्रयोग समाज को बदलने के लिए किया जाना चाहिए न कि बदला लेने के लिए। वहीं दूसरी ओर विश्व के महान तर्क शास्त्री डॉक्टर भीमराव अंबेडकर कहते हैं कि शिक्षा वह शेरनी का दूध है जो पियेगा वही दहाड़ेगा। इस तरह से वास्तव में लेखक ने अपने उपन्यास में शिक्षा के महत्व को सबसे प्रथम श्रेणी में रखा है। तभी तो वे अपने उपन्यास सूअर दान में संकटा प्रसाद चिकवा नाम के पात्र को सामने लाते हैं जो सभी को अपने शिक्षित होने का एहसास कराता है। प्रत्येक गलत कार्य का विरोध करता है। जब डॉक्टर जोरावर सिंह संकटा प्रसाद चिकवा ते कहता है-"महाशय आपने शहर में चार अक्षर क्या पढ़ लिया सरकारी कार्य सरकारी कर्मचारियों और डॉक्टरों के कार्य में नुक्ताचीनी निकालने लगे।'डॉक्टर साहब मैं आपकी सेवा में खोट नहीं निकाल रहा हूं। दवाइयों के अभाव में जो मरीज तड़प रहे हैं उनको दवा देने की आपसे गुजारिश कर रहा हूं।.....सूचना अधिकार अधिनियम 2005 के आधार पर मैं आपसे सारी सूचनाएं मांग सकता हूं।" पृष्ठ संख्या 34-35

नशा भी किसी समाज को तबाह करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही नशा मनुष्य को अकर्मण्य और गुलाम बनाता है। इसीलिए दलितों को इससे बहुत दूर रहना चाहिए। यही संदेश सूअर दान उपन्यास में लेखक ने बहुत ईमानदारी के साथ दिया है। भौतिक सुख-सुविधाओं ने आदमी का मानसिक चैन छीन लिया है। बनावटी जीवन शैली ने मानवीय संवेदना को कुचल कर रख दिया है। इसीलिए संकटा प्रसाद चिकवा शहरी जीवन से ऊब गया और वह गांव वापस आता है जहां पर अपनी शिक्षा का उपयोग जी भर करता है। लेखक कहता है कि शिक्षा के माध्यम से कृषि और स्वरोजगार को भी बेहतर ढंग से किया जा सकता है। महाराष्ट्र के संत संत गाडगे महाराज ने भी जीवन भर भारतवासियों से नशा न करने की अपील की। और उन्होंने संदेश दिया कि नशा को छोड़ो और शिक्षा से नाता जोड़ो। आजादी के पहले और उसके बाद भी दो तरह की विचारधाराएं सदैव समाज में चली पहली सामाजिक विनाश की और दूसरी सामाजिक विकास की। इसके बाद लेखक अंत में स्वीकार करते हैं कि समाज को बिगाड़ने वाले से अधिक बनाने वालों की ही जीत होती है। सतनारायण त्रिपाठी जो कि छल कपट के माध्यम से चुनाव जीता है और गरीब और असहाय लोगों का शोषण करता है वहीं दूसरी ओर संकटा प्रसाद चिकवा जैसे लोग भी हैं जो निरंतर समाज को बनाने में लगे रहते हैं और अंत में उनकी जीत भी होती है। तभी तो लेखक जनसेवा करने वाले लोगों के विषय में अपनी बात बड़े आत्मविश्वास से कहते हैं-"समाज सुधारकों के पीड़ित मानवता के प्रति किए कार्य पानी की तेज धार की तरह होते हैं जो बेईमानी जुल्म और घिनोने कृत्यो की लपटों को बुझा देते हैं। संपूर्ण मानवता झुलसने से बच जाती है।"पृष्ठ संख्या 41

लेखक ने इस बात पर विशेष जोर दिया है कि फूट डालो और राज करो की विचारधारा अंग्रेजों की नहीं बल्कि हिंदू धर्म की वर्णवादी व्यवस्था की देन है। सत्यनारायण त्रिपाठी ने भगतू पासी से कहा कि तुम संकटा प्रसाद चकवा के खिलाफ चुनाव लड़ो। हम सभी तुम्हारे साथ हैं। आजाद भारत में आज भी नारी के प्रति पुरुषवादी सोच में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी नारी को केवल रबड़ स्टांप की तरह यूज किया जाता है। क्योंकि जब भगतू पासी सत्यनारायण त्रिपाठी से कहता है कि मैं तो अनपढ़ हूं प्रधानी कैसे करूंगा इस पर वह कहता है कि तुम चिंता मत करो सारा काम मैं कर लूंगा केवल तुम हस्ताक्षर करना। उसे आगे समझाते हुए कहता है तुमको पता है जिस गांव की प्रधान महिला होती है उसमें वह काम थोड़े ही करती है सारा काम तो उसका पति करता है। बस ऐसे ही समझ लो।

रूप नारायण जी मानते हैं कि यह अजीब देश है। जहां पर ताकतवर एवं अपराधी व्यक्ति गरीब आदमी का जी भर शोषण करता है। लेकिन वह भूल जाता है कबीर की उस बात को जब वे कहते हैं दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय। मुई खाल की सांस सो सार भसम हुई जाए। आज 21वीं सदी की राजनीति का भी यही शोषण का चेहरा है। वहीं दूसरी ओर कुशल राजनीतिज्ञ काशीराम के द्वारा कही गई बातें आज भी सार्थक हो रही है। उन्होंने कहा था मेरे लोगों की चमड़ी खा पीकर मोटी हो गई है। इसीलिए आंदोलन नहीं करते। इसी बात को लेखक बड़ी ईमानदारी से स्वीकार करते हुए कहते हैं-"सत्ता पाकर कुछ लोग बिल्कुल बैल की तरह होते हैं जिनका मात्र काम होता है भार ढोना। खेतों में हल व बैलगाड़ी को खींचना।"पृष्ठ संख्या 43

शिक्षा के विषय में लेखक मानते हैं कि शिक्षा से ही समाज का विकास और विनाश संभव है। शिक्षा ही किसी भी देश और समाज की दशा और दिशा तय करती है। तभी कोई देश निरंतर विकास की ओर उन्मुख हो सकता है। वे कहते हैं गलत आदमी जो सबसे हार जाता है तो उससे बदला लेने के लिए साम दाम दंड भेद की नीति अपनाता है। यही काम किया सत्यनारायण त्रिपाठी ने क्योंकि उसके द्वारा खड़ा किया गया काठ का उल्लू भगतू पासी हार गया था, ग्राम प्रधान के चुनाव में। ईमान के विषय में कहा जाता है कि ईमान अनमोल होता है ना वह बिकता है ना खरीदा जाता है। इसी बात पर स्पष्ट करते हुए लेखक कहते हैं-"डॉक्टर जोरावर सिंह ने प्रधान को लालच में फंसाना चाहा-देखिए प्रधान जी पहले वाले प्रधान जी हमारे साथ मिलकर काम करते थे। हम दोनों को फायदा होता।,"इसीलिए तो इस गांव का हेल्थ सेंटर अंतिम सांसे ले रहा है। अपना और हमारा फायदा भूल जाइए। हमें गांव के फायदे और गांव के बीमार लोगों की चिंता करनी है। कुछ तो आदमीयत और मानवता दिखाएं। यदि गांव के लोग स्वस्थ रहेंगे तो पूरे देश के लोग स्वस्थ रहेंगे। " पृष्ठ संख्या -47 लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि दलितों ने कभी भी ईमानदारी का साथ नहीं छोड़ा। और ना ही उन्होंने सच के रास्ते को बदला। सच का रास्ता तो सीधा ही होता है। क्योंकि बुराई भी बहुत दिन तक नहीं छुपती है।

किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था में जब तक जातिवाद रहेगा तब तक शिक्षा महत्वहीन हो जायेगी। लेखक ने दया शंकर प्रसाद चिकवा के माध्यम से इस बार सच करके दिखाया है। जातिवादी लोगों के लाख विरोध करने के बाद भी शिक्षित ग्राम प्रधान शिक्षा में जातिवाद को समाप्त करने के लिए पूरा प्रयास करता है और वह सफल होता है। प्राइमरी स्कूल में भोजन से लेकर फर्जी मजदूरों के नाम भी वह अपनी लिस्ट से हटा देता है। इसके बाद भी जब इनकी नहीं चलती है तो प्रधान पर चरित्र हीनता का आरोप लगाते हैं उसमें भी यह अपने मुंह की खाते हैं। सच्चाई यही है चरित्रहीन है सबसे ज्यादा चरित्र के साथ खेलते हैं ।उनकी कथनी -करनी में जमीन आसमान का अंतर होता है। इस बात को लेकर सत्यनारायण त्रिपाठी और ग्राम प्रधान संकटा प्रसाद चिकवा के माध्यम से बहुत सहज भाषा में अभिव्यक्ति किया है। अंत में जीत ईमानदार की ही होती है।

लेखक का मानना है कि एक बेहतर समाज बनाने के लिए शासन की सत्ता ईमानदार लोगों के हाथ में होनी चाहिए। लेकिन आजादी से लेकर आज तक राजनीति में ईमानदारी के लिए कोई स्थान रिक्त नहीं है। सच तो यह है कि शोषित पीड़ित लोग ही सदियों से समाज की सेवा करते आ रहे हैं। कुलीन लोगों की मानसिकता सदैव दूषित रही है। जो लोग सामंती व्यवस्था के समर्थक हैं उनका व्यवहार बाहर भीतर अलग-अलग होता है। जैसे रूपनारायण जी कहते हैं कि मिस हैरी सिल्वा को गांव के सभी सवर्ण तरह-तरह के आरोप लगाते हैं लेकिन पसंद करते हैं- "यह कुलटा गांव में व्यभिचार फैला रही है। यह तो एक रंडी है। दूसरा कहता -यह एक बहुत ही बड़ी धनाढय वेश्या है। तीसरा सवर्ण कहता था जो पढ़ा लिखा था-यह तो हाई प्रोफाइल कॉल गर्ल है।' लेकिन एक की सुंदरता को देखकर सभी मंत्रमुग्ध हो जाते थे।"पृष्ठ संख्या-59 यह एक ऐसा उपन्यास है जो बराबर स्त्री शिक्षा और स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देता है।

लेखक इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं की अज्ञानी और मूर्ख की कोई जाति और धर्म नहीं होता। धर्म और अंधविश्वास का चोली -दामन का साथ सदैव रहा है।

लेखक ने अपने सूअर दान उपन्यास में व्यापार और जीवन के संबंध को बहुत तर्क पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। रूपनारायण जी ने पिगरी फार्म के द्वारा यह साबित करने का प्रयास किया है कि व्यापार की सबसे पहली शर्त गिव एंड टेक होती है। इसे आप हिंदी में लेना और देना कह सकते हैं। दूसरी ओर कोई भी व्यक्ति जब व्यापार करता है तो सबसे पहले वह अपने लाभ और हानि के विषय में जरूर मंथन करता है। धन जीवन के लिए सब कुछ नहीं लेकिन बहुत कुछ होता है। लेखक बताते हैं कि किस प्रकार दलित और गैर दलित दोनों मिलकर अपने विकास की योजना बनाते हैं और वह सफल भी होते हैं। इस प्रकार के व्यापार को करने के लिए उन्हें पूरे गांव में विरोध का सामना करना पड़ता है जो लोग ढोंग और पाखंड की मानसिकता से ग्रसित हैं उनका। कहा जाता है कि व्यापार करने के लिए तकनीकी रूप से दक्ष होना बहुत जरूरी है। इसी को ध्यान में रखकर लेखक ने बड़ी तर्क और इमानदारी के साथ स्पष्ट किया है कि कुशल व्यक्ति और तार्किक सोच किसी के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसी बात को लेखक कहता है -"पुजारी की तीनों बेटियां शिमला ,हिमला ,तरना को उनकी योग्यता के अनुसार दो को सहायक मैनेजर और तीसरी को अकाउंटेंट की नौकरी दी गई। इन्होंने कंप्यूटर का डिप्लोमा भी ले रखा था। बड़ी स्पीड से कंप्यूटर चलाती थी। वे सभी मिस हैरी सिल्वा रामचंद्र त्रिवेदी ,सज्जन खटीक, घसीटे चमार ,बलवंत यादव के साथ कार्य करती थी। मिस हैरी सिलवा को मैनेजिंग डायरेक्टर बनाया गया था। चारों पाटनर मालिक थे।"पृष्ठ संख्या- 66 लेखक के इस प्रकार के प्रगतिशील विचार से एक बात साफ नजर आती है कि भूखे पेट व्यक्ति को पेट भरने के लिए भोजन चाहिए चाहे वह किसी के भी द्वारा और किसी भी तरह से पैदा किया गया हो। समझदार व्यक्ति अपना विकास करने के लिए कोई भी व्यवसाय चुन सकता है। लेखक ने अपने उपन्यास में भेदभाव को मिटाने के लिए कितना शानदार उपाय बताया है। यह बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि मानव ने प्रकृति और पशु पक्षियों से प्रेम करना शायद लिखा होता तो वह समाज के टुकड़े-टुकड़े न कर रहा होता। जितना भेदभाव इस भारत देश में है उतना शायद ही कहीं देखने को मिले। इस प्रकार के भेदभाव से संपूर्ण भारतीय समाज की पूरे विश्व में बदनामी होती है। और हम हैं कि सारी पृथ्वी ही अपना घर है। इस बात को बड़े गर्व से दूसरे देशों के सामने रखते हैं। वहीं दूसरी ओर लेखक आशावादी सोच को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है कि इस देश में मानवता को बचाने वालों की भी कभी कमी नहीं रही। तभी तो वे कहते हैं-" यह भारत की मिट्टी का कमाल था जो सभी सूअरों को एक बना रही थी। ऐसा कमाल कभी-कभी होता है। जब सारा विश्व एक नजर आता है ।दूरियां सीमाएं सभी समाप्त हो जाती हैं। एक रंग में सभी नजर आते हैं। केवल दोस्ताना ,प्यार ,भाईचारा नजर आता है सभी सूअर आपस में कलरव कर रहे थे ।देशी-विदेशी सुअर और सूअरिया प्रेमालाप कर रहे थे। वो ऐसी संताने पैदा करने जा रहे थे जिन्हें अंतरराष्ट्रीय संताने कहा जा सकता है ।देशों के खून संतानों में दौड़ रहे थे ।जैसे दो नदियों के मिलने के बाद पानी दौड़ता है, कौन किस नदी का पानी है ,पहचानना मुश्किल है और फिर समुद्र में मिलकर महासागर बन जाता है। सूअर दान उपन्यास में लेखक ने कुछ ऐसे सवाल भी उठाए हैं जहां नारी अस्मिता और सम्मान की बात आती है। जहां लोकतंत्र और नारी के बीच जो संबंध है उसके विषय में बार बार सोचना पड़ता है। इसी तरह के समसामयिक सवालों से जूझते हुए लेखक कहता है कि ईमानदारी और देश भक्ति यह दोनों सगी बहन है केवल शोषित पीड़ित लोगों के पास ही सुकून से रहती हैं। धन पशुओं के यहां इनके लिए कोई स्थान रिक्त नहीं होता। इसी बात को स्पष्ट करते हुए वह एक गरीब औरत का चित्र खींचते हैं-"देखता हूं एक औरत को
जो चीथड़ों में है
दूध पिला रही है बच्चे को
तन ढकने को बेबसी है
खाने को रोटी नहीं
पीने को गंदी नाली का जल है ….. .....
वह बाबा साहेब को याद कर रही है
हे बाबा साहेब मेरा देश दुश्मनों से बचा रहे
बस मेरी यही फरियाद है।"संख्या 71 इसमें आप देखेंगे किस तरह से वह स्वयं दर्द खेलते हुए अपने संपूर्ण देश की खुशहाली की कामना करती है।

लेखक ने अपने सुअर दान उपन्यास में मानव जीवन के संघर्ष को कई रूपों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। वे बताते हैं किस प्रकार आजादी से पहले से लेकर आज तक धर्म में अंधविश्वास और तर्क में सत्य और असत्य में निरंतर संघर्ष विद्यमान रहता है। एक बार तो ऐसा लगता है चारो और पाखंड और अत्याचार के बादल छाए हुए हैं। अब ऐसे समय में सत्य का जीतना बहुत मुश्किल है। लेकिन लेखक ने कभी अपने विश्वास को नहीं डगमगाने दिया। इस प्रकार के संघर्ष में विजय सदैव मानव धर्म की ही होती है। लेखक का मानना है कि भारत जैसे देश में धर्म और ईश्वर के नाम पर सब कुछ जायज है नशा ,गुंडई ,अत्याचार ,रेप ,हत्या सब कुछ होता है। लेकिन जब गुनाहों की पोल खुलती है तो वह धर्म के ठेकेदार सलाखों के पीछे नजर आते हैं। इसी बात को पुष्ट करते हुए लेखक ने मंदिर के अंदर का दृश्य को इस प्रकार दिखाया है-"मंदिर के अंदर चारों भांग छान रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद गांजा और अफीम का नशा अंदर अत्याचारियों को ऐसी

दुनिया में ले जाता था जहां विनाशी विनाश था ।जोर-जोर से ठहाके लग रहे थे जैसे उन लोगों ने विजय प्राप्त कर ली हो। "पृष्ठ संख्या -76 सच्चाई तो यही है आज पूरी दुनिया में धर्म का नशा फैला हुआ है। यह ऐसा नशा होता है जो एक बार चढ़ जाए तो मृत्यु पर्यंत नहीं उतरता।

लेखक कहते हैं कुछ लोग यह मान लेते हैं कि मैं ही दुनिया में सर्वश्रेष्ठ हूं अब आगे कोई ना होगा औरन आज है। लेकिन परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है यह बात सभी को ध्यान रखनी चाहिए। समय के साथ साथ लोगों की सोच में भी परिवर्तन होता है। जब राम चंद्र त्रिवेदी मिस हेरी सिलवा और तीनों पार्टनर सज्जन खटीक ,घसीटे चमार और सलवंत यादव के साथ पुजारी की तीनों बेटियों को विदेश ले जाते हैं तो गांव में चारों ओर हाहाकार मच जाता है। उसी समय मारकंडे अग्निहोत्री दांत पीसते हुए कहता है-"मैं होता तो तीनों लड़कियों को जान से मार देता। यदि भी मेरी बेटियां होती। ब्राह्मणों की शान, प्रतिष्ठा और गौरव इस पुजारी की बेटियों ने गर्त में मिला दिया है। पहले ब्राह्मण दलितों पिछड़ों की खूबसूरत लड़कियों और औरतों को रखेल बनाकर रखा करते थे। मेहतरो की नव विवाहित पत्नियों के साथ सुहागरात पहले ब्राह्मण मनाया करते ।थे अब उल्टा हो गया है। राम! राम !राम!" पृष्ठ संख्या -81 यहां आप देख सकते हैं कैसे उन्हें अपने हजारों साल पहले किए गए कुकर्म याद आ रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि आधुनिक शिक्षा पद्धति ने पुरानी परंपराओं और रूढ़ियों को तबाह करके रख दिया है। प्रत्येक व्यक्ति को तर्कशील मानव के रूप में तब्दील कर दिया है।

इस उपन्यास के चौथा भाग में रूपनारायण जी ने दिखाया है जब पुजारी दयाशंकर की तबीयत बहुत खराब होती है तब वे चारों लोग राम चंद्र वेदी घसीटे चमार सलवंत यादव और पुजारी की तीनों बेटियां उनको अमेरिका इलाज के लिए ले जाती हैं और वहां वह ठीक होता है। इससे स्पष्ट होता है लेखक ने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयास किया है की मानवता पत्थर को भी संवेदनशील बना देती है बड़े-बड़े जानवर भी आदमी बन जाते हैं। इस पूरी घटना से प्रेरित होकर दयाशंकर पुजारी की तीनों बेटियां डंके की चोट स्वीकार करती हैं-"आदमी जाति से नहीं बल्कि कर्म से बड़ा होता है। जातिवाद ऊंच-नीच की भावना समाज में एक कोढ की तरह है। यदि इसका इलाज न किया गया तो पूरा समाज रोगी बन जाएगा।"पृष्ठ संख्या- 83

लेखक ने पूरी ईमानदारी के साथ इस बात का समर्थन किया है कि अपने और पराये की पहचान मुसीबत में होती है। अर्थात समय पर जो अपने काम आए और आपका जीवन रक्षक बने वही अपना होता है रक्त संबंध ,जाति ,धर्म सब व्यर्थ हैं। यह इस बात का प्रमाण है जीवन धर्मशास्त्र एवं भगवान से नहीं बल्कि विज्ञान से चलता है और संरक्षित भी होता है। यह बात उसे समय देखने को मिलती है जब दयाशंकर पुजारी अमेरिका से ऐडस की बीमारी का सफल इलाज कराके लौटता है। इसके बाद वह धर्म कर्म पूजा पाठ सब भूल गया। तभी तो हुआ अब इन सब का विरोध करते हुए कहता है-"इन पत्थर की मूर्तियों को जिनको हम देवता रहते हैं। रात -दिन इनकी की सेवा में लगे रहते हैं, इस विश्वास के साथ यह हमारा कल्याण करेंगी। यह सभी कोरी चीजे हैं। इन्होंने कभी किसी मानव का कल्याण नहीं किया। हमारे संस्कारों को बेवजह इतना धार्मिक बनाकर हमें कर्महीन बना दिया है एवं फिजूल के धार्मिक कर्मकांड में लगा दिया है।।..... आप लोग कुछ भी समझो। मानव से बड़ा कोई नहीं होता। सज्जन खटीक ,घसीटा चमार और सलवंत यादव सही मायने में मानव है..... उसने आगे कहा मैंने उनके साथ बुरा व्यवहार किया आप लोगों के भड़काने पर। लेकिन उन्होंने मेरी गलतियों को क्षमता ही नहीं किया बल्कि मरते आदमी का इलाज करा कर जीवन दिया।₹5000000 मेरी बीमारी में खर्च कर दिए ऐसे ही लोगों को महामानव कहा जाता है।"पृष्ठ संख्या 84धर्म और मानवता की बात की जाए तो आप पाएंगे कि इन दोनों का दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं है। बल्कि धार्मिक अंधविश्वास एवं धार्मिक कट्टरता ने पूरे के पूरे भारतीय समाज को मानसिक एवं शारीरिक रूप से गुलाम ही नहीं बनाया बल्कि बहुत बड़ा नुकसान किया था और आज भी कर रहे हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर पुजारी दयाशंकर ने मारकंडे अग्निहोत्री से कहा जब कुत्ता मूर्तियों के ऊपर पेशाब कर सकता है तो सुअर मंदिर के अंदर क्यों नहीं जा सकता। यही वह पड़ाव है जहां से लेखक समतामूलक समाज की नीव रखना चाहता है जिससे भविष्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम रह सके। जब पुजारी दयाशंकर की तीनों बेटियों की शादी खटीक चमार, यादव के साथ होती है तो गांव वाले बहुत विरोध करते हैं लेकिन स्वयं पुजारी दयाशंकर इस बात पर अपनी सहमति देते हुए कहते हैं-"आप कौन होते हैं? मेरी बेटियों की शादी रुकवाने वाले।"पृष्ठ संख्या -91 और अंत में पुजारी दयाशंकर ने संविधान की समानता और मौलिक अधिकारों की धाराएं पढ़कर अपनी बेटियों की शादी संपन्न करा दी । यहां लेखक अंतर्जातीय विभाग को समाज के लिए वरदान मानता है। क्योंकि यही एक संबंध ऐसा होता है जहां पर सभी मानव एक समान हो जाते हैं और किसी में कोई भेदभाव शेष नहीं रह जाता।

समाज को विभाजित करने वाले मानसिक विकलांग लोगों की की जब एक नहीं चलती है तो वह सामने वाले पर तरह-तरह के व्यंग बाण छोड़ते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं जिससे परेशान होकर सामने वाला अपना रास्ता छोड़ दे और पुनः अपनी परंपराओं और रूढ़ियों के जाल में आकर फस जाए। लेकिन ऐसा होते हुए लेखक ने दिखाई नहीं। मारकंडे अग्निहोत्री जब दयाशंकर की तीनों लड़कियों पर तरह-तरह की जाति के आधार पर व्यंग करता है तब भी वे अपने रास्ते से पीछे नहीं लौटती आगे ही चलती जाती हैं। बल्कि उसे करारा जवाब देते हुए कहती हैं लगता है जेल में कुछ कम धुलाई हुई है इस बेचारे की।

जिन संस्कार ,संस्कृति और इज्जत के नाम से एक छाता कुछ तथाकथित मूरखो ने बना रखा था, आज उसमें आधुनिक शिक्षा पद्धति और भारतीय संविधान की आग में अनेक छेद कर दिए हैं जिससे वह जर्जर हो चुका है। आप लोगों के मानस पटल और हृदय पर ज्ञान का पानी धीरे-धीरे जा रहा है। जिसे रोक पाना अब संभव नहीं। दयाशंकर पुजारी की तीनों लड़कियां ज्ञान और तर्क के पानी से पूरी तरह भीग चुकी है। उनके ऊपर आप किसी संस्था ,जाति ,धर्म और बदनामी का असर नहीं होता है। बल्कि सभी लोगों को बुरी तरह लताड़ लगाते हैं और अपने रास्ते पर निरंतर आगे बढ़ रही है।

सुअर दान उपन्यास में लेखक ने सारे परिवर्तनों में शैक्षिक परिवर्तन को सबसे प्रथम स्थान दिया है। शिक्षा ही वह माध्यम है जो अनेक प्रकार की मानसिक गंदगी को दूर करती है। इस उपन्यास के छठ में भाग में लेखक सिंहासन खेड़ा गांव के मजदूरों के विषय में बताता है। वहां के मजदूर दिन रात मेहनत करते हैं उन्हीं का एक लड़का डिप्टी कलेक्टर हो जाता है। यह खुशी पूरे गांव की खुशी के रूप में सामने आती है। एक मजदूर के बेटे का डिप्टी कलेक्टर होना समग्र गांव को मानसिक मजबूती प्रदान करता है। इसके साथ ही लोघ उज्जवल भविष्य की कामना करने लगते हैं। लेखक ने इसमें यह चित्रित करने का प्रयास किया है की शिक्षा से तर्कशील पीडिया का निर्माण होता है जो न्याय के खिलाफ अपनी लड़ाई लड़ सकती है।

भारतीय समाज में आजादी के 76वर्ष बाद भी दहेज की समस्या प्रत्येक जाति और धर्म में बनी हुई है। अब यह प्रत्येक परिवार का एक मानसिक रोग बन गया है। बिना दहेज जैसे शादी करना कोई अपराध हो। दहेज की समस्या सबसे पहले जमींदार और पूंजी पतियों के यहां हुआ करती थी। लेकिन आज यह शोषित पीड़ित समाज के लिए भी गले की हड्डी बन गई है। पूरा विश्व अच्छी तरह से जानता है कि पैसे

से सुख नहीं खरीदा जा सकता। फिर भी लोग उससे नहीं बच पाते हैं। दौलत का नशा सच में आदमी को जानवर बना देता है। रतनलाल और अनुसुइया के माध्यम से रूप नारायण जी ने इससे समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।जब रतनलाल अनुसूया के रहते हुए दूसरी शादी करता है तब अनसूया बार-बार उससे निवेदन करती है -"ऐसा जुल्म मत करिए। मेरे मां-बाप मर चुके हैं। मेरा भाई बहुत छोटा है। चाचा -चाची उसको पालते हैं। मैं घर में पढ़ना लिखना सीख लिया है। मैं गणित में हिसाब किताब कर लेती हूं। इस पर जोर से बोलते हुए कहा-'क्या तुम अंग्रेजी बोल सकती हो? पढ़ सकती हो? लिख सकती हो?..... अनपढ़ गवार औरत तू मुझे शिक्षा दे रही है इस बचपन की शादी को मैं नहीं मानता हूं।"पृष्ठ संख्या- 107लेखक ने यहां इस बात की ओर इशारा किया है कि इंसान बनना कठिन है विद्वान बनना आसान है। ऐसी शिक्षा किस काम की जो मानवीय पक्ष को स्वीकार न कर सके। रतनलाल सरकारी अधिकारी तो बन गया लेकिन उसके अंदर मानवीय संवेदना नहीं है। इसीलिए वह अपनी पहली पत्नी और 6 साल की बेटी पर तरस नहीं खाता है। उसकी पत्नी यहा तक कहती है कि मुझे बस अपने घर में रहने दो,मैं कभी भी पत्नी का अधिकार नहीं जताऊंगी। इसके बाद भी रतन लाल का दिल नहीं पिघलता है। यहां एक बात साफ नजर आती हैं वह यह है कि आज समाज में बौद्धिक विकास तो हो रहा है लेकिन मानवीय विकास उतना ही कम दिखाई दे रहा है। इसलिए समाज में अनेक तरह की समस्याएं जन्म ले रही हैं।

नारी के शोषण के पीछे ब्राह्मणवादी मानसिकता, वेद शास्त्र आदि हैं। क्योंकि पतिव्रता नारी की जो कल्पना है वह केवल वेद शास्त्रों और पुराणों में ही देखने को मिलती है। यही वजह है जब अनसूया का पिता उसे कहता है बेटी तुम अपनी दूसरी शादी कर लो। तो इस पर अनसूया इस मानसिक बीमारी से ग्रस्त है पतिव्रता की दुहाई देती हूई कहती है चाचा में मर जाऊंगी लेकिन दूसरी शादी नहीं करूंगी। जब तक जिंदा रहूंगी तब तक डिप्टी कलेक्टर की बीवी कहलाऊंगी। इसलिए हम यहां कह सकते हैं कि भौतिक विकास ,अति महत्वाकांक्षा ,पूंजीवादी मानसिकता ,आधुनिक जीवन शैली ने मानवीय संवेदनाओ को कोमा में डाल रखा है। इन्हीं सब की वजह से आज समाज में जीवन को बचाने के लिए, उसकी वास्तविकता को दर्शाने के लिए दलित विमर्श ,बाल विमर्श ,वृद्धा विमर्श, थर्ड जेंडर, आदिवासी आदि हिंदी साहित्य में दिखाई देते हैं। नारी को पुण्य -पाप नीति -नीति मान-अपमान यह सब धार्मिक परंपराओं के कारण ही सिखाया गया है। लेखक यहां बहुत ईमानदारी से स्वीकार करते हैं की नारी की जिंदगी को नर्क करने का एक ही कारण है मनुवादी व्यवस्था का आज भी पालन करवाना। और यह व्यवस्था ईश्वर और धर्म दोनों के द्वारा संरक्षित की जाती है जहां पर कोई तर्क काम नहीं करता है। लेकिन लेखक का दृष्टिकोण बहुत सकारात्मक है मानते हैं कि अन्याय के खिलाफ अंत तक लड़ना चाहिए परिणाम चाहे जो हो।

यदि हम संपूर्ण सूअर दान उपन्यास को देखें तो हम पाएंगे कि इसका वैज्ञानिक चिंतन ही इस उपन्यास को अन्य उपन्यासों से अलग पहचान दिलाता है। रूपनारायण जी ने एक ऐसी वैज्ञानिक सोच की नींव रखी है जिस पर समरसता का महल खड़ा किया जा सकता है। 21वीं सदी से भी आगे की बात है जहां फसलों के हाइब्रिड बीज तैयार हो सकते हैं वहां मानव के क्यों नहीं। इतना ही नहीं लेखक ने हाइब्रिड संतानों के माध्यम से सभी सामाजिक समस्याओं का समाधान बहुत सहजता के साथ कर दिया है। जब गांव में गौशाला की हालत पतली होने लगी तो अंत में पिगरी फार्म के मालिकों ने ही 60 लख रुपए में गौशाला फॉर्म खरीद लिया गायों सहित। इतना ही नहीं इसके बाद इस फार्म के विस्तार से रोजगार की समस्या भी हल हुई और फॉर्म के मालिकों ने एक ऐसी हाइब्रिड नल पैदा की जो सुगाय के नाम से जाने जाने लगी। यही वह नस्ल है जो सभी प्रकार की संकीर्ण मानसिकता को समाप्त करने में सक्षम है। इसी के विषय में वे कहते हैं-"चारों पार्टनरों ने सोचा की क्या गए और सूअर के संगम से नई ब्रीड तैयार की जा सकती है? सज्जन खटीक ने अमेरिका के वैज्ञानिकों की मदद ली और एक नया ब्रेड सुगय उत्पन्न करने लगे। सुगाय गांव वालों के लिए एक अचंभा था।"पृष्ठ संख्या -139

इतना होने के बाद भी कुछ धार्मिक पाखंडियों ने इसका भी विरोध करना शुरू किया। लेकिन लेखक कहते हैं वैज्ञानिक चिंता नहीं है जो अच्छे-अच्छे पाखंडियों और परंपरावादियो की सोच को बदलने की ताकत रखता है। तभी तो कुछ लोग ऐसे भी थे जो इस बात का पुरजोर समर्थन कर रहे थे-"एक जवान ठाकुर जीवन सिंह बोल-'विज्ञान का चमत्कार हो रहा है। अजब संताने पैदा हो रही है। यह 21वीं सदी से आगे की दुनिया है इसमें सब कुछ हो सकता है जिसको हम सोच नहीं सकते।

..... आप गलत कह रहे हैं। जब से पिगरी फार्म व सुगाय फार्म के पार्टनरों ने अपना धंधा शुरू किया है, यह गांव चमत्कारिक गांव बन गया है। हम लोग सदी गली नृत्य प्राय घिनौनी सभ्यता और संस्कृति से छुटकारा पा चुके हैं। इस गांव के लोगों में नए-नए विचार आ रहे हैं।"पृष्ठ संख्या -140

इसी समय फिर एक घटना घटित होती है। इस डिग्री फॉर्म का घर विरोधी सत्यनारायण त्रिपाठी इसी समय कुरूपता का शिकार होता है। जो कदम कदम पर ईमानदार लोगों को सत्ता है और शोषण करता है। जब उसका कहीं इलाज नहीं होता है तब वह फिर वापस उन्हें चारों पिगरी फॉर्म के मालिकों के पास आता है। और सच कहा है लेखक ने सत्यनारायण त्रिपाठी सोचता है कि मुसीबत में गधे को भी आप बनाया जा सकता है। यहां पर फिर इस सूअर फार्म के मालिक कौन है सत्यनारायण त्रिपाठी का मुंबई के अस्पताल में प्लास्टिक सर्जरी करवाई और उसको उसे बीमारी से मुक्त किया। तब से वह सत्यनारायण त्रिपाठी भी उन लोगों का भक्त हो गया और कहने लगा-"आप लोग वास्तव में बहुत महान है। पहले मैंने बाबा साहब डॉक्टर अंबेडकर का घोर अपमान किया लेकिन अब मैं प्रायश्चित करता हूं। आप लोगों के पास आकर मेरी आंखों के सामने छाया अंधकार दूर हो गया। आंखों की परतों में कूपमण्डुकता की जो परते चढ़ी थी उतर गई। इन आंखों से अब मैं एक नई दुनिया को देख रहा हूं आप लोगों ने अंधकार को समाप्त कर दिया।"पृष्ठ संख्या -143

लेखक के अनुसार यह कोई साधारण सूगाय हाउस नहीं बल्कि यह एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला बन चुका है। सज्जन खटीक जैसे वैज्ञानिक इसमें नए-नए प्रयोग कर रहे हैं। उनका मानना है कि जिस प्रकार पेड़ पौधों की कलम हो सकती है उनकी हाइब्रिड फसल तैयार हो सकती है तो फिर मानव और जानवर की हाइब्रिड फसल क्यों नहीं तैयार हो सकती? मानव और जानवर के मिश्रण से मानवीय जानवर भी पैदा हो सकते हैं जिन्हें लेखक ने एक नया नाम दिया है वह है मानवर इसमें हम देखेंगे कि लेखक के उपन्यास का जो उद्देश्य है वह सामाजिक परिवर्तन। लेकिन रूप नारायण जी का सामाजिक परिवर्तन मुख्य रूप से उसे वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित है जिसे कोई भी व्यक्ति नकार नहीं सकता। इसी वजह से यह सूअर दान उपन्यास 21वीं सदी से भी चार कदम आगे की दुनिया की खोज करता है। अपनी इसी सोच के कारण रूप नारायण जी एक कुशल भविष्य दृष्टा के रूप में पाठक के सामने खड़े होते हैं।

उपन्यास के अंत में लेखक ने बताया है कि किसी भी अव्यवस्था को बार-बार गंदा गंदा कहने से साफ नहीं हो सकती। उस सामाजिक बुराई को दूर करने के लिए जब तक प्रयास नहीं है होगा तब तक वह दूर नहीं होगी। आगे वे यहभी कहते हैं कि कुछ पाने को कुछ खोना

पड़ता है, व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागने से ही सामाजिक परिवर्तन संभव होता है। जो व्यक्ति ,वस्तु ,विचार एवं व्यवसाय जीवन को बेहतर बनाए वही मूल्यवान होता है। यह बात पुजारी दयाशंकर की समझ में अच्छी तरह से आ गई है इसीलिए वह कहता है -"मैं अब कोई गोदान नहीं करूंगा। स्वर्ग और नर्क सभी कल्पना की चीजें हैं मरने के बाद आदमी इसी मिट्टी में विलीन हो जाता है। आदमी की सांस रोकने के बाद उसको कुछ पता नहीं रहता, क्योंकि उसके सारे क्रियाकलाप बंद हो जाते हैं। वह बिल्कुल मिट्टी हो जाता है। मिट्टी कभी भी गाय की पूछ नहीं पड़ सकती है। और अंत में पुजारी दयाशंकर ने गाय दान की जगह सूअर के बच्चों पर हाथ रखते हुए अंतिम सांस ली।"पृष्ठ संख्या -160

यदि हम प्रेमचंद के गोदान और रूपनारायण सोनकर के सूअर दान की समीक्षा करें तो हम पाएंगे कि सूअर दान जिन सामाजिक कुरीतियों का बड़े तार्किक ढंग से विरोध करता है गोदान वहीं उन्ही धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का प्रत्यक्ष -अपरतक्ष समर्थन करता हुआ नजर आता है। प्रेमचंद के गोदान के जितने भी पात्र हैं वे लगभग सभी कहीं ना कहीं धर्म और ईश्वर के डर से भयभीत नजर आते हैं। सूअर दान के अगर सभी पात्रों को आप देखें तो वह सभी अपनी आधुनिक सोच और बेहतर समाज की संकल्पना के साथ स्वयं आगे बढ़ते हैं बल्कि अपने विरोधियों को भी सही रास्ते पर लाने के लिए मजबूर करते हैं। इसलिए आप देखेंगे सूअर दान उपन्यास गोदान उपन्यास से अधिक महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि की एक कालजई उपन्यास है जिसकी प्रासंगिकता भविष्य मे सदैव बनी रहेगी।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रूपनारायण सोनकर जी ने प्रारंभ से लेकर अंत तक शिक्षा के माध्यम से मिथक को तोड़ते हुए आगे की यात्रा प्रारंभ की है और बड़े तार्किक ढंग से धार्मिक रूढ़ियों अंधविश्वास और परंपराओं को ध्वस्त करते हुए एक समता मूलक समाज की नींव रखी है। इसके साथ ही उन्होंने आधुनिक सोच, आधुनिक शिक्षा और व्यवसाय के माध्यम से जो हृदय परिवर्तन किया है वह वास्तव में काबिले तारीफ है। उन्होंने समाज की तमाम बुराइयों को एक-एक कर खोल कर रख दिया है। इसके बाद उन्होंने सभी बुराइयों का इलाज भी बखूबी किया है। आपका यह उपन्यास तत्कालीन समाज की सच्चाई को बया करता हुआ नजर आता है। इसलिए हम कह सकते हैं की सूअर दान उपन्यास में भविष्य की अनेक संभावनाएं छिपी हुई हैं जो एक बेहतर समाज के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सूअर दान उपन्यास ने हिंदी साहित्य में अपनी एक अलग पहचान बनाई है जो अन्य उपन्यास कारों से एकदम अलग एवं मौलिक है।

****

नासिरा शर्मा के कथा साहित्य में सम सामयिक बोध

रमेश प्रसाद पटेल
शोधार्थी- हिंदी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा
मध्य प्रदेश मो-9981415300

डॉ.अमित शुक्ला
शोध निदेशक
प्राध्यापक हिंदी विभाग ठाकुर
रणमत सिंह महाविद्यालय
रीवा मध्य प्रदेश

शोध सारांश- समसामयिक बोध के आधार पर नासिरा शर्मा का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है इसलिए कि साहित्य के क्षेत्र में उनकी पहचान कहानीकार,निबंधकार,उपन्यासकार, विचारक,नाटककार,अनुवादक यात्रावृतांत संपादक टेलीफिल्म कार आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिन तमाम क्षेत्रों में उन्होंने अपने शोहरत का झंडा फहरा कर रखा है। उनकी कामयाबी उनकी कथाकार के रूप में उनकी पहचान खासकर विश्व में मानवता के कथाकार के रूप में वह बहुत ही बहुत चर्चित लेखिका है। प्रस्तुत शोध पत्र में मैंने जीवन से संबंध किस प्रकार उनकी रचनाओं में समसामयिक दिशा का उदाहरण प्रस्तुत हुआ है यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नासिरा जी की विलक्षण प्रतिभा की धनी है। अपनी कृतियों में उन सारी को कुरीतियों को उठती है उसके विरुद्ध आवाज उठाती है उन अत्याचारों के विरुद्ध वह बोलते हैं। जिनमें शायद कथाकारों ने कहीं ना कहीं कौतूहल बढ़ता है प्रत्येक रचना पर बहुत सारा स्वतंत्र अध्ययन उनके हुआ है। किंतु समसामयिक दिशा को दर्शाती उनकी रचनाएं वर्गीकरण की तरह सांप्रदायिकता पर भी अपनी कलम को उद्घाटित किया है, जिस प्रकार उन्होंने नारी अस्मिता की बात की पुरुष विविधता की बात की देश और प्रदेश के बीच के रिश्तों में आई खटास के विषय में बात की तो यह कहा जा सकता है,कि उनके अलावा इस तरह से यथार्थ को प्रस्तुत करने की क्षमता किसी कथाकार में नजर नहीं आती यह शोध आलेख एक सूक्ष्म अवलोकन है,जो उनकी रचनाओं के विषय को विस्तृत रूप प्रदान करने में सफल होगा ऐसा मेरा विचार है।

मुल शब्द- समसामयिक, लेखिका, उपन्यास, जीवन, कथाकार।

व्याख्या- नासिरा शर्मा का पहला ही उपन्यास समसामयिक दिशा को पूरी तरह से केंद्रित है क्योंकि जहां आलोच्य को की शिकायत है कि महिला उपन्यासकार अपनी रचनाओं में घर परिवार की समस्याओं एवं मानसिकता प्राय स्त्री की ही होती है वहीं उन्होंने इस उपन्यास में ईरान की क्रांति को दर्शाया है जो पिछले वर्षों में कुछ ऐसा घमासान समय लेकर आई थी जिसमें लगभग 5000 वर्ष पुरानी सभ्यता संस्कृति का वैभव एवं तना-बना है एक ही हकीम के बारे में अच्छा और बड़ा सुनने को जिस प्रकार से मिला विचारधाराओं की देश के प्रति निष्ठा और दूसरों के प्रति उनकी खूंखार निगाह सभी विषयों को उन्होंने समेथा है नजरिया जी के इस उपन्यास में मुख्य पात्र सत्ताधारी हैं जो सियासी गुटों के नेता और क्रांति के पत्तेदार बनकर सामने आए हैं | जैसे राजा शाह पहलवी के खिलाफ बगावत करके जनता ने तानाशाही से मुक्ति प्राप्त करना चाही थी इस लक्ष्य की प्राप्ति को लेकर के यह उपन्यास इस्लामी गणतंत्र के नाम पर अयातुल्लाह खान जैसे तानाशाही शासको की कथा को प्रदर्शित करता हुआ नजर आता है |

समाज के निम्न मध्य वर्ग के द्वारा जिले जाने वाले शोषण को नासिर शर्मिणी अपनी कहानी और उपन्यास के अलावा जितने भी तरह के विधाओं में उन्होंने लिखा है सभी में दिखाया है पत्थर गली कच्ची दीवारों शोषण एवं गरीबों पर आधारित कहानी हैं जहां लेखक और कार्तिक के स्वार्थ और पक्षपात से परिपूर्ण निरूपित हुए हैं असली बात नामक कहानी में भूख के टेस्ट का वर्णन है तंबोलन भूख से होकर रोटी की तलाश में कभी मंदिर तो कभी फकीरों की पंक्ति जाती है मंदिर के प्रसाद उसके पास आने तक खत्म हो जाता है और उसकी आंखें

भोंक के मारे और दर्द और सीख के मारे भी घुट्टी हैं वह कहता है-**"मां रोटी तो सकती जो आओ यह तुम्हारा अधिकार है पर जब वह अपने बच्चों को दूध पिलाने लगती है तब उसका अपशास्त्र के जीवन की कितनी बड़ी सच्चाई बता देता है रोटी में ताकत है जब चाहती है बाढ़ देती है और जब चाहती है एक कर देती है कभी उन्हें कोई बच्चा देता कि इमाम साहब इस शैतान को पकड़िए तो रोटी डालो अब तक डालते उतरती इमाम के कपड़े उतार हो जाते कभी कोई हरी धनिया गाड़ी लेने भेज देती ताकि चटनी पीस सके।"**[1]

इसी प्रकार उनकी कहानी 'उजड़ा फकीर' भी रानी नामक एक कैसी लड़की को लेकर की कथा कही है, जहां समसामयिक सामाजिक दरी स्थिति का चित्रण होता है। अपने पति के साथ जो अपाहिज है, फिर भी बिस्तर पर पड़े वह गरीबों की मार झेल रहा है। वह सड़क से गोबर इकट्ठा कर उसे सुखाकर बेचकर बच्चों के पेट भरती है एक दिन वह अपने घर में शहर से आकर जब कम कर रही होती है-**" रानी के ढूंढ भी कोई पता नहीं चला रानी तो इस शहर के अलावा दूसरे शहर को भी जानती थी वरना उसे पता चल जाता की स्टेशन के उसे पर निकालने के बाहर बरगद के पुराने पेड़ के नीचे राज पड़ा है। जिसकी बागडोर और जिंदगी का फैसला फकीरों का मुखिया कर चुका है।"**[2]

समसामयिक स्वरूप के तहत उनकी कहानियों में देश और देश पर हो रहे मौजूद हालातो से संबंधित काफी कुछ कहा गया है | जहां जीवन लड़कर आने लगता है वहीं उन्होंने अपनी ऐसी ऐसी कहानी लाकर के रखी हैं जहां लेखिका को लेकर के एक समय ऐसा भी आया जब उन्होंने पुरुष लेखकों को पीछे छोड़ दिया क्योंकि जिस प्रकार के विषय वह अपनी कहानियों में लेकर के उपन्यासों में आती हैं, तो उसे तरह के लेखन शायद पुरुषों के हाथी लगते थे, उनकी राजनीति और गुंडागर्दी की वर्तमान व्यवस्था को लेकर लिखी गई कहानी और उपन्यास काफी चर्चित हुए हैं। चमकदार इनकी ऐसी कहानी है, जो शिक्षा जगत के भ्रष्टाचार को व्यक्त करती है, यह एक स्कूल पर है आधारित कहानी है। जहां अध्यापकों का एक मुहैया पूरा बच्चों के भविष्य को लेकर के किस तरह से खिलवाड़ करता हैं उसे पेर कहानी है। शिक्षा जगत के भ्रष्टाचार पर प्रकाश डालते हुए उनकी कहानी खिड़की भी है, जिसमें महानता पर पानी फेंक दिया जाता है। जिस प्रकार से उन्होंने कहानियों में अपने आप को उकेरा है वह है, आदित्य है सभी विषय में फेल होनेपर सुनील को पास करने के प्रिंसिपल कहते हैं और कारण भी बताते हैं कि -**"तुमको पता नहीं खुराना साहब इस शहर के गिने हुए चूने बिजनेसमैन है हमारे प्रोफेसर के पास समय कहां है जो हमसे बात करें वह तो क्लास भी नहीं लेते कोर्स भी पूरा नहीं होता जिसे चाहे उठा कर स्कॉलरशिप मिल जाता है जिसे चाहे भेज देते हैं उनका व्यवहार और टीचर से भी ठीक नहीं है।"**[3]

देश विभाजन और उनसे उत्पन्न कई समस्याओं का चित्र उनके उपन्यास जिंदा मुहावरे में प्रस्तुत हुआ है कुछ लोग अपने परिवार के साथ सगे संबंधियों के साथ एक देश छोड़कर दूसरे देश जाते हैं और जिन देनी स्थिति से वह गुजरते हैं वहां ए तमाम विसंगतियों का चित्रण उन्होंने किया है-**" उधरन पर लेटे रहीमउद्दीन की पहली रात थी जो जागते गुजारी थी, उन्हें यह यकीन नहीं आ रहा था कि निजाम उन्हें छोड़कर चला गया तभी लटके से हर आहट पर वह चौक पढ़ने की जाने कब निजाम कर कुंडी बजा दे।"**[4]

इस तरह से अपने वतन को छोड़कर नए वतन की तलाश में विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए लोगों का काफिला एक शहर से दूसरे शहर दूसरे शहर से तीसरे शहर जाता रहा। तथा इस तरह से उनका प्रशासन की मार भी झेलनी पड़ी पुलिस वालों का कहना था वारंट की जरूरत तब पड़ती है। जब घर पर छापा मारना है सरहद पर तनाव है। पूरा इलाका हमें घेर लेना है दुश्मनों को बिना है आखिर लड़ाई छिड़ गई तो देश विभाजन में मुसलमान को पुलिस और फौजी की नौकरी से वर्जित भी तो किया गया था उसका दिल अब इस बात से कातर हो रहा था कि-**" बंटवारे के बाद जिस तरह हम पुलिस और फौजी की नौकरी में अलग समझ जाते हैं। इस तरह क्षेत्र में भी कहीं गोलू को काट ना दिया जाए लेकिन हालात बदलने लगे थे निजाम तो फसाद में अपने को ही खो बैठा शहर की हालत ही बदल रही थी बम के धमाके और कत्ल जैसे एक डरावना ख्वाब यह सब देखकर निजाम दिल में सोचने लगा कि क्या सोचा था और क्या हो गया यह शहर कितना बदल गया ख्वाब की ताबीर कितनी हकीकत मगर कितनी डरावनी।"**[5]

बंटवारे और इन सांप्रदायिक दंगों के बावजूद भी यहां एक दूसरे से प्रेम भाव कम नहीं हुआ। जाति और उसे पर होने वाले दंगों के बावजूद भी समस्याएं इतने नहीं बढ़ी कि मनुष्य मनुष्य को ना समझे देश की आज भी यथार्थ दशा यही है कि, हम एक दूसरे से अपने और अपनों के बीच समसामयिक व्यवस्था को बना नहीं पाते सामाजिक स्थितियों के वर्णन के जरिए हर कोने में चले आने वाले अत्याचारों और अन्यायों का वर्णन करते हुए लेखिका ने अक्षय वट उपन्यास को लिखा जिसमें शिक्षा क्षेत्र के भ्रष्टाचारों की पोल खोली-**"उन्हें अभी पता है कि त्रिपाठी कई तरह के खेल खेलना है मगर मैं उसको भीतर तक रंगे हाथ पकड़ नहीं पाए थे। क्योंकि कोर्ट कचहरी बाजार है। नेता और गुंडा गर्दी से उसकी गहरी पद थी बात पता लग जाती थी कि क्या हुआ मगर पुलिस त्रिपाठी के खिलाफ कभी सुबोध नहीं जमा कर पाई इसका ठोस संबंधों का जाल जो हर व्यक्ति के स्वार्थ पर निर्भर था।"**[6]

पुलिस के भ्रष्टाचार के वर्णन के साथ-साथ इस बात का भी उन्होंने जिक्र किया है कि, यहां राजनीति की पकड़ का इस्तेमाल शिक्षा जगत में किस प्रकार से होता है। क्योंकि विद्यार्थियों को इसने की मिठाई दिखाकर नेताओं का काम स्वार्थ की पूर्ति करना होता है। जिसको वह अपनी जीत समझ लेते हैं एक तथ्य यहां लेखिका ने प्रस्तुत किया है। कि-**"अगर यहां देश की राजनीति पार्टियों का प्रभाव बाद तो समझो दंगे फसाद और जाने क्या-क्या नहीं होगा तब तो यहां घोषणा भी हो जाएगी की 'जीरो ईयर' की और हमारे नए विद्यालय में पढ़ रहे बच्चे साल भर पिछड़ जाएंगे अपनी पढ़ाई में क्योंकि मुस्लिम यूनिवर्सिटी हो या फिर कोई और हर जगह नेशनल पॉलिटिक्स गिरावट का प्रतिबिंब हमको इन परिसरों में दिखने लगा है।"**[7] इनका उपन्यास ठीक करें की मंगनी कुइयां जान तथा शाल्मली यह तीनों उपन्यास स्त्रियों पर आधारित है जहां उनकी जिंदगी में तरह-तरह के उतार चढ़ाव आते हैं और जीवन में झेलने वाली समस्याओं का चित्रण शाल्मली में भी है और ठीक रे की मंगनी में भी ठीक नहीं की मंगनी में राजनीतिक दृश्य भी देखने को मिलता है जहां लक्ष्मीनिया के इन शब्दों से यह मालूम होता है कि आज कहीं ना कहीं कुछ समय बदल रहा है-**" ई जमाना में कोई भला मानुष नहीं है जहां देखो सांपनाप थाईसे नागनाथ । कहत तो रहे गणपत काका की ईमान मनौवाल बस समझो वोट वाले दिन तक है। फिर हम लोगन का ना सियाराम दादा ना गणरामऊ पहचानहि तब लगी है वहीं कुकरवाली धुतकार और पीठ खुले आकाश की घाम।"**[8] 20वीं सदी का यह दौर जागरणकाल का समय रहा है। विशेषतः महिला लेखिकाओं के लिए एक अद्वितीय एवं सार्थक पहल की तरह सामने आया है। भारतीय नारी अधिकांश रूप में परंपरा और संस्कृत के अनुरूप जिस प्रकार अपने आप को ढाल सकती है उसने डालने का प्रयास किया। किंतु पुरुष के अधीन रहकर पुरुष व्यवस्था की बंधक बंद कर रहना और प्राचीन परंपराओं के साथ जीना उसने स्वीकार नहीं किया।

निष्कर्ष-

इसीलिए परंपरागत रूप में आदर्श और शिक्षा दोनों को साथ में लेकर के उन्होंने कलम उठाई और अपने आप को सशक्तिकरण की दिशा में अपनी अस्तित्व के तलाश में तराशा। जहां तक हम नासिरा शर्मा की बात करें तो जिस तरह से उन्होंने अपने लेखन में देश और उसमें होने वाले जड़ परंपराओं के विद्रोह के प्रति अपनी कलम को निखारा है। ऐसा स्वतंत्र कलमकार का होना हिंदी साहित्य में एक विवेक मूलक दृष्टिकोण होगा उनके उपन्यासों में समसामयिक दिशा की झलक इसलिए अधिक से अधिक दिखाई देती है। क्योंकि उन्होंने जीवन की उलझन को खुली आंखों से देखा है और अपने स्थिति के ज्ञान को पहचाना है।

आधुनिक नारी के जो चित्र उन्होंने दिखाएं हैं, वह महिला लेखिकाओं के समसामयिक निर्माण संबंधी और लेखिकाओं के सामाजिक रूढ़ एवं अंधविश्वास ऊंच-नीच वर्ग भेद प्राचीन जर्जरित मान्यता एवं सहानुभूति का एक कोरा चिट्ठा है। समकालीन साहित्यकारों की मानवीय सहानुभूति के केंद्र में उन्होंने अपने संवेदनशील लेखन को उठाकर जीवन के तमाम पहलुओं को जागृत किया है।इस तरह से अगर हम कहें तो नासिरा शर्मा का कथा साहित्य चाहे वह किसी भी विधा में हो समाज और समकालीन परिस्थितियों को उखाड़ने में पूरी तरह से सफल हुआ है |

****

संदर्भ सूची-

1. नासिरा शर्मा सबीना के 40 चोर कहानी से पृष्ठ संख्या 53
2. नासिरा शर्मा इंसानी नस्ल पृष्ठ 89
3. नासिरा शर्मा बुतखाना कहानी से पृष्ठ 38
4. साहित्य अमृत हिंदी पत्रिका अंक 3,अगस्त 2005 पृष्ठ 101
5. नासिरा शर्मा जिंदा मुहावरे उपन्यास से पृष्ठ क्रमांक 13
6. नासिरा शर्मा अक्षयवट उपन्यास पृष्ठ क्रमांक 225
7. नासिरा शर्मा अक्षयवट उपन्यास पृष्ठ क्रमांक 341
8. नासिरा शर्मा ठीकरे की मंगनी उपन्यास पृष्ठ क्रमांक 82

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में पर्यावरणीय चेतना

विनीत कुमार यादव
(शोधार्थी)
लखनऊ विश्वविद्यालय

डॉ. क्षमा मिश्रा
(शोध निदेशक)
लखनऊ विश्वविद्यालय

शोध-सार: -भारतीय संस्कृति आदि काल से ही पर्यावरण के प्रति सचेत रही है। हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख मिलता है। समकालीन साहित्य में हिंदी ग़ज़ल की अपनी अलग पहचान है। यह अपनी सहजता, सरलता, व्यंगात्मकता, तीक्ष्णता, सांकेतिकता, चंचलता और संक्षिप्तता के कारण वर्तमान समय में काफी लोकप्रिय है। आज की हिंदी ग़ज़ल समाज में हो रहे सूक्ष्मतम बदलाव पर भी पैनी नजर बनाए हुए है। मानव जीवन और प्रकृति का सम्बन्ध शाश्वत है। मनुष्य की यह सहज मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है कि वह अपने आस -पास के पर्यावरण से प्रभवित भी होता है और उसको प्रभावित भी करता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारणों पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण किसी एक व्यक्ति या एक देश का काम नहीं है यह पूरे विश्व के लोगों का कर्तव्य बनता है कि वह पर्यावरण को संरक्षित रखें। जब पूरी मानवता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने का प्रयत्न कर रही है तो हिंदी साहित्य और विशेषकर हिंदी ग़ज़ल इससे निर्लिप्त कैसे रह सकती है। हिंदी ग़ज़ल ने बड़ी की कुशलता से अपना पर्यावरणीय दायित्व निभाते हुए साहित्य की सार्थकता को सिद्ध किया है।

बीज-शब्द :- हिंदी ग़ज़ल, पर्यावरण, प्रदूषण, प्रकृति, जैव विविधता संरक्षण

मूल लेख:-भारतीय संस्कृति आदि काल से ही पर्यावरण के प्रति सचेत रही है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं को ऋतूस्वरूप, वृक्षस्वरुप, नदीस्वरूप एवं पर्वतस्वरूप बताया है। ऋग्वेद में वर्णित सभी देवी-देवता जैसे अग्नि, वरुण. सूर्य, उषा, अदिति आदि प्रकृति के ही अंग हैं। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतलम् के मंगलाचरण में कहा है कि - प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिष्टाभिरीश:। अर्थात महाकवि कालिदास ने जल, वायु, अग्नि आदि को ईश्वर का ही स्वरूप (शिव) माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'कुटज' में पृथ्वी को माता एवं स्वयं को उसका पुत्र माना है। हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में प्रकृति और पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख मिलता है।

समकालीन साहित्य में हिंदी ग़ज़ल की अपनी अलग पहचान है। यह अपनी सहजता, सरलता, व्यंगात्मकता, तीक्ष्णता, सांकेतिकता, चंचलता और संक्षिप्तता के कारण वर्तमान समय में काफी लोकप्रिय है। ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा का शब्द है। परंतु साहित्य की एक विधा के रूप में इसका विकास फारसी भाषा में हुआ। ईरानी आक्रमणकारियों के साथ यह काव्य रूप भारत में प्रविष्ट हुआ। तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण ग़ज़ल की विषय वस्तु बहुत सीमित रही। ग़ज़ल, राज - दरबारों की विलासिता से बाहर नहीं निकल सकी। लोक जीवन की समस्याएं एवं चुनौतियां इसकी परिधि से बाहर ही रहीं। हिंदी ग़ज़ल को समकालीन सामाजिक सरोकारों से जोड़ने का क्रांतिकारी कार्य संभवतः दुष्यंत कुमार ने ही किया। दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़लों में तत्कालीन युग बोध को अभियक्ति दी। उनके परवर्ती काल में हिंदी ग़ज़ल को एक नई दिशा एवं ऊर्जा मिली। हिंदी ग़ज़लों में समकालीन मुद्दे जैसे - पर्यावरण-संरक्षण, आतंकवाद, उपभोक्तावाद, तकनीकी विकास, स्त्री-विमर्श, सामाजिक असमानता, पत्रकारिता, संस्कृति आदि की अभिव्यक्ति होने लगी। इस नई परम्परा में

मुन्नवर राणा, अदम गोंडवी, बल्ली सिंह चीमा, विनय मिश्र, ममता किरण, प्रदीप साहिल, गौतम राजऋषि, ज्ञान प्रकाश विवेक, गिरिराजशरण अग्रवाल, रामकुमार कृषक, राम मेश्राम, जहीर कुरेशी, कमलकिशोर श्रमिक, माधव कौशिक, देवेन्द्र आर्य, मधुवेश, महेश अग्रवाल, हरेराम समीप, राजेश रेड्डी, विज्ञान व्रत, तुफैल चतुर्वेदी, डॉ. उर्मिलेश, इंदुश्रीवास्तव, किशन तिवारी, शिवओम अम्बर, डी.एम. मिश्र आदि गजलकारों ने समकालीन परिस्थितियों और चुनौतियों को अपनी गजलों का विषय बनाया है।मानव जीवन और प्रकृति का सम्बन्ध शाश्वत है। मनुष्य की यह सहज मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है कि वह अपने आस -पास के पर्यावरण से प्रभवित भी होता है और उसको प्रभावित भी करता है। पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और 'आवरण' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किये हुए हैं। हिंदी ग़ज़ल में पर्यावरण के कई घटकों को शामिल करते हुए प्रभावशली शे'र कहे गए हैं। हिंदी ग़ज़ल के शिल्प को नई परिभाषा देते हुए ममता किरण ने तो प्रकृति को ग़ज़लमय मान लिया है। जैसे -

चाँद तारे नदी पेड़ पौधे
ख़ूब कुदरत के भी काफिये हैं।

- ममता किरण

औद्योगिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव जग जाहिर है। मानव जाति के समक्ष पर्यावरण को संतुलित बनाये रखने की चुनौती है। पर्यावरण के संरक्षण को लेकर आज विश्व समुदाय एकमत है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से नाना प्रकार की समस्याएं पैदा हो रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ सहित कई अंतराष्ट्रीय संगठन और गैर - सरकारी संगठन पर्यावरण को बचाने में लगे हुए हैं। समकालीन शहरी जीवन का अकेलापन और प्रकृति से बढ़ती दूरी एक कटु सत्य है। जब पूरी मानवता पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने का प्रयत्न कर रही है तो हिंदी साहित्य और विशेषकर हिंदी ग़ज़ल इससे निर्लिप्त कैसे रह सकती है। ज्ञान प्रकाश विवेक ने मानव जीवन और प्रकृति के समन्वय को अपनी ग़ज़लों में ढाला है-

कोई पक्षी मेरे आँगन में न उतरे दिन भर
मेरे भगवान ! मुझे इतना अकेला न बना

- ज्ञान प्रकाश विवेक

प्रकृति सदा से ही साहित्य को शुशोभित करती रही है। परन्तु समकालीन साहित्य का ध्यान इसके संरक्षण पर भी है। बढ़ती जनसंख्या के कारण मनुष्य की प्रकृति पर निर्भरता बढ़ी है। प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव है । वृक्षों का आवरण धीरे - धीरे घट रहा है। वृक्षों से हमें न केवल ऑक्सीजन और भोजन मिलता है अपितु यह हमारे जीवन को जीने के लिए अति- आवश्यक वस्तुएँ जैसे कि भोजन , दवाइयाँ , स्वच्छ हवा, स्वच्छ जल, वर्षा आदि प्रदान करने में अपना विशेष योगदान देते हैं। पेड़ हमें बहुत सारी प्राकृतिक आपदाओं से भी सुरक्षित रखते हैं तथा प्रकृति के साथ मानव जीवन के समन्वय को सम्भव बनाते हैं । हिंदी ग़ज़ल की सूक्ष्म दृष्टि पर्यावरणीय विमर्श पर भी है। समकालीन ग़ज़लकारों ने पर्यावरण संरक्षण की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसे अपने ग़ज़लों में ढाला है। प्राकृतिक संसश्यनों के दोहन से न सिर्फ पर्यावरण में परिवर्तन हुआ है बल्कि इसका प्रभाव सामाजिक - राजनितिक ढांचे पर भी हुआ है। कविता विकास ने इस अन्तर्सम्बन्ध को बखूबी समझते हुए कहा है -

अब न सजती चौपालें , पेड़ कट गए सारे
आम, नीम, पीपल की अब कहाँ निशानी है

- कविता विकास

विभिन्न प्रकार के जीव जंतुओं का अस्तित्व मानव जीवन के लिए ज़रूरी है। जैव-विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन असंभव है। पृथ्वी की वर्तमान जैव - विविधता लगभग 400 करोड़ वर्षों के विकास का परिणाम है। इस जैविक धन के निरंतर क्षय ने मनुष्य के अस्तित्व के लिये गम्भीर खतरा पैदा कर दिया है। दुनिया के कई देशों में जैव-विविधता का लगातार हो रहा क्षरण चिन्ता का विषय है। प्रकृति में कुछ भी अनायास नहीं है। मानव जाती के लालच ने प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ दिया है। हिंदी ग़ज़ल की चिंता प्रकृति के नैसर्गिक रूप को पुनः प्राप्त करने की है। राजेश रेड्डी सम्पूर्ण मानवता से इसके लिए आग्रह करते है –

मोतियों ही की तवक्को न समुन्दर से रखें
सीपियाँ भी हैं समुन्दर का ज़रूरी हिस्सा

- राजेश रेड्डी

भौतिक विकास की अंधी दौड में इंसान पूरी धरती को अपने तरीके से बनाने, बिगाड़ने या संवारने में लगा हुआ है। शायद इंसान यह भूल चुका है इस धरती पर वह अकेला नहीं है। इंसानी अस्तित्व ही प्रकृति के समन्वय का प्रतिफल है। इस सृष्टि पर जितना अधिकार इंसानों का है उतना ही अन्य जीव- जंतुओं और पेड़- पौधों का भी है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी रिपोर्ट स्टेट ऑफ द वर्ल्ड फॉरेस्ट्स के आंकड़ों को देखें तो दुनिया में 31 फीसदी से ज्यादा भूमि पर वन हैं। यह जंगल पेड़-पौधों की अनगिनत प्रजातियों का घर हैं। वहीं यदि इन जंगलों के बढ़ते विनाश की बात करें तो 1990 से लेकर अब तक करीब 42 करोड़ हेक्टेयर वन क्षेत्र नष्ट हो चुके हैं। 2015 से 2020 के बीच दुनिया भर में वन क्षेत्र एक करोड़ हेक्टेयर प्रति वर्ष की दर से नष्ट हो रहें हैं। हिंदी ग़ज़ल ने इस समस्या को बखूबी समझते हुए इसे बड़ी संजीदगी से अभिव्यक्त किया है । जैसे -

घोंसलों में अपने गौरैया है बैठी सोचती
जाये वो किस बाग़ में अमरुद खाने के लिये

- गौतम राजऋषि

भारत में सदियों से भारत में नदियों की पूजा करने की परंपरा रही है। भारत में नदियां केवल जल ही नहीं, अपने साथ एक सांस्कृतिक धरोहर लेकर बहती हैं। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, पर्यटन, स्वास्थ्य, कृषि, शैक्षिक, औषधि और न जाने कितने क्षेत्र हैं जो हमारी नदियों से सीधे-सीधे जुडे हुए हैं। मनुष्य ने अपने जरूरत के हिसाब से पहले प्रकृति को नुकसान पहुंचाया और अब नदियों को भी प्रदूषण की चपेट में लेने लगे है, जो कि एक बहुत ही चिंताजनक बात है। आज नदियों के जल को स्वच्छ रखना सभी के लिए एक बड़ी चुनौती है।

जीवन का आधार है नदिया
सपनों का संसार है नदिया

- ममता किरण

भारत के मुख्य शहर प्रमुख नदियों के तटों पर विकसित हुए हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसी प्राचीन सभ्यताएं नदियों के तटों पर ही जन्मीं और जब नदियों ने अपना रास्ता बदल लिया, तो ये सभ्यताएं नष्ट हो गईं। आज भारत में कई नदियां विलुप्त होने के कगार पर खड़ी हैं। नदियों का अप्राकृतिक कारणों से सूखना सम्पूर्ण मानवता के लिये शर्म की बात है। विनय मिश्र की ग़ज़लों में नदियों की लाचारी साफ़ झलकती है। जैसे-

अपनी माटी अपने मन की भाषा एक नदी
भूल गई है जाने कब से बहना एक नदी
रेत उधर से उड़कर आई कहने कानों में
खतरे में है जीवन जब है मुर्दा एक नदी

- विनय मिश्र

सूर्यभानु गुप्ता एक ऐसे ग़ज़लगो हैं जो प्रकृति के घटकों जैसे सूरज,

इनकी ग़ज़लों में अछूते बिम्बों की दृश्यात्मकता एक नया अनुभव संसार गढ़ती है। हिंदी ग़ज़ल में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग समकालीन समस्याओं के लिये किया जाना इस बात का सुबूत है कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल पर्यावरण के प्रति कितनी सचेत है। इन प्रतीकों के माधयम से एक ओर जहां आज के पर्यावरणीय हालात बयाँ होते हैं वहीं दूसरी ओर भविष्य के प्रति पर्यावरण संरक्षण की ज़रूरत भी महसूस होती है।

ऐसी काई है अब मकानों पर
धूप के पाँव भी फिसलते हैं
हम तो सूरज हैं सर्द मुल्कों के
मूड आता है तब निकलते हैं

- सूर्यभान गुप्त

ज्ञान प्रकाश विवेक ने सूर्यभान गुप्त की ग़ज़लों के बारे में लिखा है - " सूर्यभान गुप्त महज़ ग़ज़लें नहीं लिखते, ग़ज़ल का पर्यावरण रचते हैं। उनकी ग़ज़लों में - हवा, धूप, पानी, दिन, जंगल, सन्नाटा, पेड़, नदी, सूरज, ख़ामोशी जैसे रदीफ़ों का प्रयोग होता है। ये प्रयोग अपनी सीमा तय कर लेते हैं। यानी जंगल, सन्नाटा, पानी रदीफ़ हैं तो शेर भी उसी विषय पर केंद्रित होंगे"।

यह आज की सच्चाई है कि पेड़ कटते जा रहे हैं और धरती पर वन आवरण लगातार कम होता जा रहा है। आज के समय में पर्यावरण असंतुलित हो गया है। पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, ग्रीनहाउस के प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंग, ब्लैक होल इफ़ेक्ट आदि को कम करने के लिए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिये कई प्रयास किये जा रहे हैं। हिंदीं ग़ज़लकारों ने इन्हीं प्रयासों को ध्यान में रखते हुए ऐसे शेर भी कहे हैं जिनमें यह उम्मीद है कि आने वाले समय में यह स्थिति सुधर जाएगी।

शिकारियों ने सुकून जंगल का सारा बरबाद कर दिया है
बहुत ज़रूरी है टारज़न की किसी तरह वापसी का होना

- नादिर अरीज़

इस नए दौर की हक़ीक़त है
आँख खोलूं तो पास दहशत है
तन गयी धुंध की घनी चादर
ऐ हवाओं तेरी ज़रूरत है

- अनिरुद्ध सिन्हा

पर्यावरण संरक्षण की चेतना तभी साकार हो सकती है जब हम नदियां, पर्वत, पेड़, पशु-पक्षी, प्राणवायु और हमारी धरती को बचाने के लिये एकजुट हों। इसके लिए सामान्य जन को अपने आसपास हवा-पानी, वनस्पति जगत और प्रकृति उन्मुख जीवन के क्रिया-कलापों जैसे पर्यावरणीय मुद्दों पर जाकरूक रहना ज़रूरी है। विकास की नीतियों को लागू करते समय पर्यावरण पर होने वाले प्रभाव पर भी समुचित ध्यान देना होगा।

बहुत बेख़ौफ़ होकर फूल जो सहरा में उगता था
बदलते वक़्त में वो भी ख़ुदा से बागबाँ चाहे

- पवन कुमार

आज मानवता उस मोड़ पर खड़ी है, जब इसे पुन: यह सोचने की आवश्कता है कि पर्यावरण को हमें जीवन में पहले स्थान पर रखना है या भौतिक विकास को। विकास की कोई सीमा नहीं, नित नए अविष्कार होते ही रहेंगे और हम यूं ही प्रकृति को नुकसान पहुंचाते रहेंगे। फिर हम अगली पीढ़ी से ये उम्मीद करेंगे की वह जागरूक हो और इसका संरक्षण करे। पर्यावरण संरक्षण के लिए पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारणों पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। वर्तमान समय की आवश्यकता सतत विकास को ध्यान में रखते हुए विकास करने की है। पर्यावरण संरक्षण किसी एक व्यक्ति या एक देश का काम नहीं है यह पूरे विश्व के लोगों का कर्तव्य बनता है कि वह पर्यावरण को संरक्षित रखें। हिंदी ग़ज़ल ने बड़ी की कुशलता से अपना पर्यावरणीय दायित्व निभाते हुए साहित्य की सार्थकता को सिद्ध किया है।

****

सन्दर्भ-सूची:

1. ममता किरण: आँगन का शज़र, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020 , पृ. 49
2. ज्ञान प्रकाश विवेक : घाट हज़ारों इस दरिया के, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली , संस्करण : 2017, पृ. 24
3. कविता विकास, आजकल : प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, अंक : अप्रैल 2021 , पृ. 49
4. राजेश रेड्डी : वुजूद ,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली , संस्करण : 2011 , पृ. 103
5. गौतम राजऋषि : नीला नीला, राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2020, पृ.120
6. ममता किरण : आँगन का शज़र, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2020 , पृ. 52
7. विनय मिश्र : लोग जिंदा हैं, लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2022, पृ.118
8. साभार: रेख़्ता फाउंडेशन, लिंक : https://shorturl.at/kvU26
9. ज्ञान प्रकाश विवेक: हिंदी ग़ज़ल की नयी चेतना, प्रकाशन संसथान नई दिल्ली, संस्करण : 2018, पृ. 95
10. तुफैल चतुर्वेदी: सात पाकिस्तानी शायर, राजपाल एंड सन्ज़, नई दिल्ली, संस्करण : 2019 , पृ.62
11. अनिरुद्ध सिन्हा, आजकल: प्रकाशन विभाग नई दिल्ली , अंक : मई 2023 , पृ. 41
12. ज्ञान प्रकाश विवेक: हिंदी ग़ज़ल की नयी चेतना, प्रकाशन संसथान नई दिल्ली, संस्करण : 2018, पृ. 180

नागार्जुन के उपन्यासों में राष्ट्रीय आंदोलन

जितेन्द्र कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राजनीति हमेशा से ही साहित्य के केन्द्रित वर्ण्य विषयों में मुख्य रही है दोनों में ही कार्य कारण वाला संबंध है। साहित्य का कार्य है राजनीति की आलोचना करना व उसे दूषण मुक्त करना। राजनीति भी साहित्य को किसी ना किसी रूप में प्रभावित करती ही है। कोई भी साहित्यकार इस से अछूता नही है। नागार्जुन के उपन्यास हमें अधिकतर राजनीतिक तत्त्व से परिपूर्ण मिलते हैं जिसका एक कारण यह हो सकतअ है की जब वह सक्रिय होते हैं । उस समय देश साम्राज्यवादीयों के चंगुल में छटपटा रहा था, पीड़ित था। नागार्जुन का राजनीति से गहरा सम्बन्ध था। उनकी आर्थिक निर्धनता, व निजी अनुभवों ने उन्हें राजनीति की वामपंथी धारा की ओर मुड़ने को प्रेरित किया। उनके उपन्यासों में हमें तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आंदोलनों की सुगबुगाहट का पता चलता है।

देश के इतिहास में 20वीं शताब्दी का तीसरा व चौथा दशक राजनीतिक आंदोलनों व उथल पुथल का समय है। नागार्जुन के लेखन में उपन्यासों में हमें सन् 1930 से लेकर सन् 1968 तक के राजनीतिक आंदोलन उनके सजीव चित्रण के साथ मिलते हैं।

देश में चलने वाले सन् 1920 के असहयोग आंदोलन तथा सन् 1930 से सविनय अवज्ञा आंदोलन व सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की विविध गतिविधियों का अंकन 'बलचनमा' उपन्यास में दिखाई पड़ता है। जब लोग स्कूल-कालेज को छोडकर आवेश मे आकर आन्दोलन में कूद पड़ते हैं। जैसा कि बलचनमा कहता है- "कांग्रेसी लोग नमक बना-बनाकर जेहल जा रहे थे। भले तो क्या नाम था, अभी याद नहीं आ रहा है। सबने भंग आंदोलन । फूल बाबू रोज अखबार पढ़ते थे। अखबारों को सरकार ने बंद करा दिया था, पर छिपे तौर पर अखबार क्या जाने कहॉ से आता था ?..लग रहा था कि हमारे मालिक भी नमक बनाने जायेंगे और गिरफ्तार होंगे। मेरे सामने एक ही सवाल था। मालिक जेल चले जायेंगे तो मैं क्या करूँगा ? ..सुबह में फूल बाबू के साथी मोहन बाबू आये। आते ही उन्होंने मुझसे कहा- मालिक तेरे पकड़े गये है। फूल-माला पहनकर जेल चले गये हैं।"[1]

'नई पौध' में 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' की चर्चा करते हुए नागार्जुन लिखते है "दिगंबर का पिता नील कंठ मल्लिक बिहार बैंक (पटना) में असिस्टेंट एकाउंटेंट था। कुल जमा 210 - मिलते थे उसे। 30-32 के राष्ट्रीय आंदोलन मे हाईस्कूल की मास्टरी छोडकर और नमक बनाकर नीलकंठ बाबू जेल गये, साल भर की सजा हुई थी।"[2] 'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन ने सन् 1920 के असहयोग आंदोलन के बारे में लिखा है-- "सन् 1920 के अंत में कांग्रेस ने असहयोग और बहिस्कार का नया लड़ाकू प्रोग्राम अपनाया था। बड़े नेताओं के इस निर्णय से साधारण जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी। राष्ट्रीय-मुक्ति संग्राम की धारा लोक-चेतना के समतल मैदान में उतर आयी गॉधी जी ने भविष्यवाणी की थी कि वर्ष-भर मे स्वराज मिल जायेगा... मगर इस विराट जन--आंदोलन की रूपरेखा क्या होगी, इस बारे में स्वयं गांधी जी भी स्पष्ट नहीं थे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि महात्मा क्या करने वाले है, प्रबल पराक्रमी अंग्रेज सरकार को वह किन दांव-पेंचों से पछाड़े, कह किसी को साफ-साफ सूझ नहीं रहा था।

असहयोग का जमाना अद्भुत था। देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पंदित होकर अंगड़ाइयाँ ले रहा था। ..गांधी जी को छोंड़कर तमाम नेता गिरफ्तार कर लिए गए- मोती लाल नेहरू, देश बंधु चित्तरंजनदास, लाला लाजपतराय वगैरह। उन्हे जेलों में बंद कर दिया गया। स्वराजी कैदियों की तादात 30,000 तक पहुँच गयी थी... आन्दोलन पूरे उठान पर था। कांग्रेस ने सारे अधिकार उन्हें सौंप दिये थे कि वह संघर्ष को सही दिशा दें और देश को विजय की आखिरी मंजिल तक पहुँवाए।[3]

बाबा बटेसरनाथ' में सविनय अवज्ञा- आंदोलन की चर्चा करते हुए लिखते हैं - "नमक कानून तोड़ने का यज्ञ जिले-जिले में कहीं न कहीं आये दिन होता ही रहता था। दयानाथ ने श्रावण पूर्णिमा के दिन यही मेरी छह में नमक बनाना शुरू किया....बूढ़े, बच्चे और जवान सैकडो की तादाद में तमाशा देखने आये थे। काफी दूर पर उधर अलग खड़ी औरतें भी गांधी बाबा का यह यज्ञ देखने आयी थी।"[4]

किसान- आंदोलन- काफी समय तक बिहार में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने किसान आंदोलन का नेतृत्व किया। बाद में वही किसान आंदोलन एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लेता है, जिसमें उस दौर के बड़े बड़े राजनीतिक बुद्धिजीवी सक्रिय थे, जिनमें राहुल सांकृत्यायन भी थे जिनकी गिरफ्तारी के बाद नागार्जुन ने भी नेतृत्व किया। नागार्जुन के उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', "बलचनमा', "बाबा बटेसरनाथ' एवं 'वरूण के बेटे" मैं हमें राष्ट्रीय आंदोलन के संघर्ष के दौरान किसानों में आयी जागृति का का प्रत्यक्ष चित्रण मिला है। डा० चंडी प्रसाद जोशी के अनुसार जमींदारों के विरूद्ध किसानों ने भी अपना आंदोलन संगठित

किया। लेकिन किसानों की इस राजनीतिक चेतना का श्रेय भी जमींदारों को ही है। किसी पार्टी या नेता को नहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयास से भी उन्होंने अपना आंदोलन मजबूत किया तथा राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेते रहे। 'रतिनाथ की चाची' में किसान कुटी का बनना, किसानों में एक नयी चेतना का सूचक है। शुभंकर पुर गांव में बलुआहा पोखर के भिंडे पर किसान-कुटी बनती है। कुटी के निर्माण में सभी दिल खोलकर चंदा देते है। यह चंदा देना किसानों में सहकारिता व सहयोग की भावना को दिखाता है, और चंदा किसी भी आंदोलन के लिए अर्थ का काम करता है। किसानों में गजब का जोश है। किसान बित्ता भर भी जमीन छोड़ने को तैयार नहीं थे। गाँवों में किसानों के दो तीन लीडर निकल आते है। जिनमें पं. कालीचरण का लड़का ताराचरण प्रमुख है। वे जमींदारों के विरोध में आंदोलन कर रहे है। वे दरभंगा और पटना तक दौड़ लगा रहे थे। इस संघर्ष की जरा सी बात भी जनता में विस्तार से प्रसारित की जाती है। सभा, जुलूस, दफा एक सौ चालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख-हड़ताल, रिहाई। यह सिलसिला किसानों के जोश को ठंडा नही कर पता। इन संघर्षों के बावजूद किसानों का आंदोलन अपेक्षित सफलता प्राप्त नही कर सका? क्योंकि प्रथम कांग्रेसी मंत्रिमंडल जो 1936 में बनता है के मंत्रियों ने अपनी किसानों की ओर से आँख मूंद ली थी, वे जमींदारों को साधने की नीति के तहत कार्य कर रहे थे। जिस से देश भर में कांग्रेस की भूमिका पर सवाल उठने शुरू हो गये थे। कांग्रेस पर जमींदारों का असर है, ऐसा सन्देश हर तरफ प्रसारित होने लगा था।

बलचनमा उपन्यास में किसान-आंदोलन का मूल प्रयोजन जमींदारों की बेदखली से अपना बचाव करना था। बलचनमा किसानों का प्रतिनिधि है व उसके हृदय में विद्रोह की एक ज्वाला है। वह इस आंदोलन में सकिय साझेदारी करता हुआ दिखाई देता है। बलचनमा एक ईमानदार व कर्मशील युवक है, बलचनमा के माध्यम से लेखक का उद्देश्य बलचनमा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है। जो साधनहीन व किसी भी तरह के अधिकारों से वंचित किसान के हृदय में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है। बलचनमा के नेतृत्व में कृषक वर्ग संगठित हो गया है। अपनी-अपनी धरती की हिफाजत के लिए किसान एक होने लगे। पहले उनकी तरफ से रहमान साहब जमीदारों को कई बार समझा चुके थे और अब कोई रास्ता नही था। रैयत लोगो ने तय कर लिया कि लाश गिरे मगर अपने खेत दूसरों की दखल में नही जाने देंगे।

इस प्रकार महापुरा के किसानों और जमीदारों के बीच संघर्ष छिड़ जाता हैं। डा० रहमान खेतिहरों का नेतृत्व कर रहे थे और बिहार से राधाबाबू भी आये थे। खेतिहरों की विजय हुई और जमींदारों, पुलिस और हाकिमों की धांधली न चल सकी। राधाबाबू इस आंदोलन के दौरान बलचनमा से वालंटियर का कार्य लिया था। उसने इस आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया और अब उसके भीतर छिपा नेता भी बाहर झाँकने लगा। वह अपने श्रम के बल पर चरवाहे से बहिया, बहिया से स्वयं-सेवक, स्वयं सेवक से किसान-मजदूर, किसान-मजदूर से किसान और किसान से किसान नेता बन गया और उजड़ा हुआ कृषक बिना किसी के सहारे के जमींदारों के साथ संघर्ष करता हुआ अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील दृष्टिगत होता है।

अब उसे पूर्ण विश्वास हो चला कि जो खेत जोतेगा, खेत उसी का होगा। जो कमायेगा वही खायेगा। कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो। इंकलाब जिंदाबाद...! जमीन किसकी जोते बोये उसकी। अंग्रेजी राज नाश हो। जमींदारी प्रथा नाश हो किसान सभा जिंदाबाद। लाल झंडा जिंदाबाद... इंकलाब जिंदाबाद..."[5]

इस तरह आंदोलनों में धूप-छाँव करते हुए किसानों में इतनी अधिक चेतना आ गयी कि वे समझने लगे कि कांग्रेस से उनके हितों का संरक्षण नही होगा। अतः उन्हें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सत्ताधारी कांग्रेस से भी संघर्ष करना होगा। बलचनमा का यह कथन सच जानो भैया, उस वक्त मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अग्रेंज बहादुर से सोराज लेने के लिए-बाबू भैया लोग एक हो रहे है, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे है उसी तरह जन बनिहार, कुली-मजदूर और बहिया-खवास को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा।"[6]

"गढ़ पोखर आपके हाथों से न निकले, इसके लिए हमें एकजुट होकर कोशिश करनी होगी। इस संघर्ष में निषाद महासभा नहीं, किसान सभा जैसी जूझारू जमात ही हमारी सहायता कर सकती है।"[7]

सरकारी तंत्र की सहायता से जमींदार मछुओं का घर बैठे-बैठे ही विरोध करते है। देपुरा के जमींदार दफा 144 लगवा देते है। मछुओं पर लूट और गैरकानूनी कार्यवाहियों का अभियोग लगाया जाता है। लेकिन मछुओं में सम्मान प्राप्त होने के बाद ही जागृति आती है। मधुरी की प्रेरणा से गाँव के लोग मछुआ-संघ जिंदाबाद --.हक की लड़ाई.... जीतेंगे। जीतेंगे !...गढ़पोखर हमारा है, हमारा है; के नारे लगाते हुए पुलिस वाहन में बैठे नजर आते है।

नागार्जुन के उपन्यासों में किसानों के संघर्ष की यह श्रृंखला 'रतिनाथ की चाची' से लेकर वरूण के बेटे तक चलती है। जिसका प्रथम दर्शन हमें 'रतिनाथ की चाची' में होते हैं फिर वह धीरे-धीरे किसान-मजदूरों के खेत खलिहानों से होती हुई आदिवासियों की जिंदगी को प्रभावित करती हुई गढ़पोखर के तालाब पर पड़ाव डालती है। यहाँ से जो संघर्ष चला वह जेल में जाकर अपने अधिकारों की माँग में सफल होता है। जमींदारों ने इन्हें रोकने के लिए हर तरह की चेष्टा की, लेकिन संघर्ष की ज्वाला के आगे उनके सभी षड्यंत्र फैल होते हैं।

अतः नागार्जुन के उपन्यासों में किसान आंदोलन का जो वर्णन आया है, वह जमींदार वर्ग के विरूद्ध शोषण के प्रति विद्रोह और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का ही परिणाम है। किसान को जिन स्थितियों से गुजरना पड़ता है, उसके माध्यम से मानो नागार्जुन पूरे भारतीय ग्रामीण परिवेश को उसके वर्तमान रूप को सजीव ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उपन्यासकार की कृषक वर्ग में व्याप्त चेतना यह निश्चिंतता प्रदान करती है कि अब किसान किसी के जोर जुल्म के आगे नहीं झुकेंगें। अब वे कमर कसकर अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करेगे। और अपना अधिकार लेकर रहेगें। नागार्जुन को अहिंसा के सिद्धांत में अब विश्वास नहीं है। यह सिद्धांत किसी भी तरह की समस्याओं का निदान करने में सक्षम नहीं है। कृषकों की बहु-आयामी समस्याओं को राजनीतिक दल भी सुलझाने में नाकामयाब रहे है। क्योकि वोट की राजनीति उन्हें भी निहित स्वार्थों के चलते समझौते के लिए बाध्य करती है। इन सारी समस्याओं का निपटारा नागार्जुन जनवादी साम्यवादी दर्शन के रास्ते से करना चाहते हैं।

मजदूर आंदोलन-

यूरोप में हुए पुनर्जागरण व औद्योगिक क्रांति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुयी अर्थव्यवस्था, जो पूंजीपतियों-उद्योगपतियों के निज विकास के निहितार्थ थी जब सारी दुनिया में अपना कब्ज़ा जमा रही थी, उसी क्रम में भारत भी उनका उपनिवेश बनता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो तक भारत ब्रिटिशों के शिकंजे में आ चूका था। फलतः औद्योगीकरण व मशीनीकरण की प्रक्रिया जोरों पर थी, इसके प्रधान पूजीपतियों ने जो यांत्रिक व्यवस्था फैलायी उसमें कृषिभूमि का तेजी से क्षरण होना शुरू हुआ और किसान अब मजदूर बनने को विवश हो गया, गाँव उजड़ने लगे शहर बनने लगे। अब मजदूरों को चिंता हुई अपनी रोजी -रोटी की, जो पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए इन कल-कारखानों में मालिको की शर्तों पर मजदूरी करने पर बाध्य हुए। और यहीं से शुरू होता है मजदूरों के शोषण का नंगा नाच। लेकिन अब मजदूरों में आयी राजनीतिक चेतना उनको श्रमिक संगठन बनाने पर बाध्य करने लगी, और यहीं से शुरूआत होती है मजदूर आन्दोलन की।

किसान आंदोलन की तरह ही मजदूर आंदोलन की शुरुआत होती है। चूँकि किसान आन्दोलन जमींदारों के शोषण से शुरू होता है। हालांकि किसान आंदोलन के ढंग का नागार्जुन के उपन्यासों में मजदूर आंदोलन का वर्णन नहीं है। कुछ जगहों पर इन नागार्जुन ने श्रमिक आंदोलनों का वर्णन किया है।

मजदूर आंदोलन की शुरूआत पर डॉ चंदी प्रसाद जोशी जी मजदूर वर्ग और उसकी समस्याओं को औद्योगिक युग की उपज मानते हैं। औद्योगिक मजदूर वर्ग का शोषण मार्क्स के दर्शन का आधार है। शोषण की यह समस्या पाश्चात्य मशीनी सभ्यता से उपजी थी, तो उसका इलाज भी पाश्चात्य चिंतकों के यहाँ भली-भाति मिलता। भारत में औद्योगिक विकास के समानांतर मजदूर वर्ग तथा उसकी बढ़ोत्तरी के साथ मार्क्सवाद का भी प्रचार प्रसार होता है। मार्क्सवाद और रूस की प्रेरणा से सन् 1928 में साम्यवादी दल की स्थापना होती है। सन् 1929 ई० में साम्यवादी दल ने अखिल भारतीय मजदूर-संघ पर भी आधिपत्य जमा लिया।

नतीजा यह हुआ की नेतृत्व में बदलाव से मजदूरों की सोच व कार्यशैली दोनों में अन्तर दिखाई देता है...। पूँजीपतियों, मिल मालिकों के खिलाफ हड़ताल उनके प्रतिरोध का मुख्य औज़ार बन गया। हिन्दी उपन्यासकारों पर भी पूँजीपति-मजदूरों के परस्पर संघर्ष का प्रभाव पडा।

नागार्जुन के उपन्यासों – 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन' और 'वरूण के बेटे' में पूँजीपतियों के विरूद्ध मजदूर-आंदोलन को विश्वसनीय ढंग से दिखाया गया है। 'बलचनमा' का कथानक यद्यपि कृषकों-जमींदारों के संघर्ष की पर आधारित है, फिर भी बलचनमा आधा 'मजदूर और आधा किसान' है। बलचनमा की कथा आत्मबीती कथा है। विशेष रूप से चौदह से बाईस वर्ष तक की आयु का खंड चित्र है।' बलचनमा की कथा एक तरफ किसान-जमींदार के संघर्ष से संबंधित है वहीँ दूसरी तरफ मजदूर-पूंजीपति वर्ग से जुडी हुयी है।

'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन मजदूर हड़ताल का जिक्र करते हैं कि- "देश का हर हिस्सा नयी चेतना से स्पंदित होकर अंगड़ाइयाँ ले रहा था। आसाम-बंगाल रलवें में हड़ताल हुई, मिदनापुर के किसानों ने लगानबंदी का आंदोलन छेड़ दिया। दक्षिण मलावार के मोपिलो ने बगावत कर दी। पंजाब में सरकार के पिट्ठू महंतों के खिलाफ अकाली सिखों की घृणा भड़क उठी।"[8]

'दुखमोचन' भी इसी तथ्य को उजागर करता है "चाचा लंदन में आज-कल बड़ी अशांति है। जहाजी मजदूर हजारों की तादाद में हड़ताल करने वाले हैं, समूचा शहर उनका साथ देगा।"[9] इससे स्पष्ट होता है कि नागार्जुन की औपन्यासिक दृष्टि केवल भारत में होने वाले मजदूरों के आंदोलन की ओर नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी है। वरूण के बेटे में कम्यूनिस्ट नेता मोहन माँझी, किसान सभा का लीडर, मछुआ लोगों से कहता है कि गढ़पोखर को हाथ में रखने के लिए हमें एक जुट होकर कोशिश करनी होगी। हम लोग मछुआ निषाद भाई हैं- "किसी युग में हमारी संख्या थोड़ी थी। उन दिनों केवल चलाना और मछलियाँ पकड़ना हमारे पेशे थे। अब हमारी बिरादरी खेती भी करती है. मजदूरी भी । पढ़-लिखकर कुछ एक भाई-बहन ऊँचे ओहदों पर भी पहुँच रहे हैं। जात-पॉत की पुरानी दीवारें ढह रही है; नये प्रकार की विशाल बिरादरी उनका स्थान लेने आ रही है। एकता का यह आलोक देहातों में भी प्रवेश कर चुका है।"[10] यह मछुओं के संघर्ष की कथा भी

एक प्रकार से श्रमिक मजदूरों के सघर्ष की कहानी है। 'इमरतिया' में - "चीनी के कारखाने में लाल झंडे वालों ने हड़ताल कर दी है। पचास-पचपन मजदूर पकड़े गये हैं। पिछली रात बड़ी देर तक नारे लगते रहे। जेलर से लेकर लेबर मिनिस्टर तक को मुर्दा बनाया जाता रहा। नौजवानों के गलों में जोर बहुत था; जेलर को आखिर झुकना पड़ा। हड़ताली हवालातियों की मांग जेलर को मंजूर करनी पड़ी । जमात में बड़ी ताकत होती है न? और कहीं उस ताकत के पीछे पढ़े-लिखे समझदार लोगों की सूझ-बूझ भी हुई तो फिर क्या कहना मजदूर-वर्ग राजनीतिक नेताओं के आचरण के दोगलेपन को बखूबी जानता है। राजनीतिज्ञों और पूंजीपतियों की मिली-भगत की जानकारी उन्हें है। "मजदूर नेताओं की आपसी बातचीत सुनने पर ऐसा लगा कि हड़तालियों की 50 प्रतिशत माँगे मिल वालो को माननी ही पड़ेगी.. राज्य के श्रममंत्री का इतना दवाब तो इन पर डलवाया ही जायेगा। इसीलिए चीनी मिल के मजदूर नेताओं की सभा के अंत में नारे- "इंकलाब" जिन्दाबाद। किसान-मजदूर एकता जिंदाबाद।"[11] फैक्ट्रियों में हड़ताल एवं मजदूरों द्वारा अपने अधिकारों के लिए नारेबाजी उनमें आयी जागृति का ही फल है। नागार्जुन अपने समय के जिस यथार्थ को लेकर कथा साहित्य की जमीन पर आये थे, उस वे अपने समय की सर्वाधिक उन्नत और प्रगतिशील विचारधारा से और भी प्रखर बनाते हुए, मांजते हुए शुरू से ही जनधर्मिता की पगडण्डी पकड कर चले, जिस पर चलते हुए ही वे अपनी मानवीय और वैचारिक आस्थाओं को उनकी मंजिल पर ले जाते हैं।

****

सन्दर्भ सूची :-

1. बलचनमा- नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें भाग-1, संपा- शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ-167
2. नई पौध, नागार्जुन- सम्पूर्ण उपन्यास खंड-2, यात्री प्रकाशन, 1964, पृ- 297
3. बाबा बटेसरनाथ- नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1975, पृ.- 95-96
4. वहीं, पृ-99
5. बलचनमा- नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें भाग-1, संपा- शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ.- 246
6. बलचनमा- नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें भाग-1, संपा- शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ.- 196
7. बलचनमा- नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें भाग-1, संपा- शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ.- 287
8. बाबा बटेसरनाथ- नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण-1975, पृ- 95
9. दुखमोचन, नागार्जुन : सम्पूर्ण उपन्यास खण्ड : दो, यात्री प्रकाशन, संस्करण-1964, पृ.- 29
10. वरुण के बेटे - नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें भाग-1, संपा- शोभाकांत मिश्र, वाणी प्रकाशन, पृ.- 286
11. इमरतिया-1968, पृ.- 86

'धरती' का 'दर्द' धरती कविताएं

प्रो. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

शोध सार: जीवन कविता के लिए सबकी समृद्धि-समरसता का नाम है। वह समृद्धि जीवन के सकारात्मक पक्ष को बढ़ाने वाली होती है। जीवन के सच्चे 'विकास' के माध्यम से मानव सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में उच्चकोटि का आत्म-परितोष अनुभव करता है। जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाने वाला विकास स्वतंत्रता-समानता-बंधुता, आधिकार आदि के आयतन को सतत विस्तृत करता रहता है। इसके लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं है। लेकिन आजकल विकास के नाम पर जीवन के निषेधात्मक तत्व का प्रोन्नयन मात्र होता है। प्रकृति-मानव का ह्रास अनवरत होता रहता है। इस ह्रास की स्थिति को कविता विकास नहीं कह सकती है। जीवन को विविधात्मक बंधनों में फंसानेवाले वर्तमान विकास की योजना-परियोजनाओं को, पूंजीवादी विध्वंसात्मक विकास की परिपाटी को समकालीन हिंदी कविता पहचानती है और विकास के नए जीवन दर्शन को हमारे सामने रखती है। इससे कविता नई मूल्यवत्ता का खनन करती है। विकास के आंतक के वर्तमान परिसर में जीवन के अंतर-बाह्य जगत की सतत सफर करती कविता के अंतस्थल को समझने का प्रयास इस आलेख में किया गया है। यहां किसी परिकल्पना की सैद्धांतिक विवेचना अलग से नहीं कर रहा हूं। कविता के गहन अध्ययन के दौरान कविता के भीतर से निसृत दर्शन को समझने का प्रयास किया जा रहा है, जो जीवन को संगीतात्मक ढंग से परिवर्तित करने का संकल्प ले चलता है। (कुंजी शब्दः विकास, पूंजीवाद, समरसता, प्रदूषण, जैविकता)

'धरती हांफ रही है' बलदेव वंशी की एक कविता है। शीर्षक पर गौर से दृष्टिपात करने पर हमारा ध्यान 'धरती' शब्द पर फौरन टिक जाता है। यह काव्यानुभव है कि कभी एक शब्द कविता की अंदरूनी सतह तक पाठक को ले जाने में काबिल निकलता है। अर्थ की दृष्टि से धरती शब्द 'धरने का भाव' अवश्य वहन करता है। सीमित नज़र में धरती शब्द मिट्टी का लौंदा-पत्थर-पहाड़-जंगल-नदी आदि का वाचक हो सकता है, पर गहन अध्ययन के दौरान यह महसूस होता है कि 'भू', 'धरणी', 'वसुंधरा', 'अचला', 'जमीन', 'रत्नगर्भा', 'मही', 'वसुधा', 'क्षिति', 'उर्वी', 'भूमि' आदि अनेकानेक धरती के पर्यायों में 'धरने' का भाव अभ्यंतरित नहीं है। अतएव उक्त कविता के शीर्षक में आया धरती शब्द इस भूतल के सबके आधार का सूचक बन जाता है। सबके आधाररूपी धरती अब हांफ रही है। शीर्षक में आई 'हांफना' क्रिया भी लक्षणार्थ में जैविकता से संपन्न किसी जीवी की रोगातुरता को व्यक्त करती है। इस रोगातुरता के बहुत सारे कारण हो सकते हैं। पूंजी की सभ्यता द्वारा नियोजित एवं प्रायोजित विकास की योजना-परियोजनाओं से प्रकृति शत-शत तरीकों से प्रदूषित होती रहती है। अमित शोषण से प्रकृति की संतुलित स्थिति, जैविक संजाल आदि नष्ट हो रहे हैं। कविता के शीर्षक पर ही बात की जाए तो लगता है कि वह पूर्णकाय वाक्य का रूप धारण किया हुआ है। व्याकरणिक भाषा में वह अपूर्ण वर्तमान काल का वाक्य है, जो क्रिया की भूतकालिक निरंतरता के साथ वर्तमान में होने तथा भविष्य में उस क्रिया के लगातार ज़ारी होते रहने के भाव को सामने रखता है। इसलिए विवेक सम्मत प्राणी के रूप में मानव का कर्तव्य यह बनता है कि वह ऐसे निषेधात्मक-विध्वंसकारी करतूतों से दूर रहे और धरती की स्वाभाविकता और समृद्धि को सुनिश्चित करने लायक कार्यों में

संलग्न रहे। मानव का अतिजीवन अकेले में संभव नहीं है। वह तो सबके अतिजीवन के साथ घुला-मिला हुआ है। इसलिए प्रकृति की समृद्धि सबकी समृद्धि का पर्याय बन जाती है। कविता के शीर्षक के साथ लगा विस्मयादिबोधक चिह्न भी चिंताजनक धरती की स्थिति को चिह्नित करता है। उसे देखते हुए पाठक के मुंह से यह काकु निकलता है कि क्या वह मृत्यु के अंतिम समय में ली जाने वाली हिचकी की ओर इशारा तो नहीं कर रहा है?कविता यह देखती है कि मानव के जीवन में पीड़ा की विभिन्न आकृतियां तथा वेदना की विभिन्न संस्कृतियां फैल रही हैं। कविता की भाषिक विवेचना से लगता है कि 'पीड़ा' शब्द शारीरिक तथा 'वेदना' शब्द मानसिक दर्द को व्यक्त करने वाले होते हैं। प्रदूषण बीमारी, जल-वायु परिवर्तन, प्राकृतिक दुर्घटना, संसाधनों का अभाव, पालायन, विस्थापन आदि की आकृति लेता है, जो दुख की खेती करता है। मसलन मानसिक-शारीरिक वेदना विभिन्न संस्कृतियां लेकर हमारे सामने आती है। पीड़ा-वेदना के घिराव से मानव निराशा, निष्क्रियता, कुंठा-क्रूरता आदि का शिकार होता है। इस आकृति-संस्कृति से मानव का आत्म शून्य हो उठता है, उसकी आंतरिक-भीतरी ताकत विलुप्त हो जाती है। आंतरिक और बाह्य वेदना के चलते मानव सहित समस्त प्रकृति का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। तन-मन की पीड़ा-वेदना के प्रबल आघात से मानव सामाजिक क्रियाओं से विरत होता है। इससे मानव मानव नहीं रह सकता है, उसमें पशुता भर जाती है, उसकी रचनात्मकता खारिज होती है, उसका भीतर भयाक्रांत हो उठता है। जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण रखने वाले मानस की आतुरता-आकांक्षा 'धरती हांफ रही है' शीर्षक कविता में प्रतिध्वनित होती है। तन-मन से विक्षत व्यक्ति के भीतर दुख के फूलते-फलते जाने की स्थिति को व्यक्त करती कविता कहती है कि वेदना/पीड़ा एक सार्वलौकिक रूप धारण कर चुकी है। विभिन्न देशों-प्रदेशों की 'मनोभूमियों' को चकित हो जाने के भाव को व्यक्त करने वाली कविता यह जानती है कि 'मृत्तिका'(ह्यूमस) 'मर्त्य' (ह्यूमन) का आधार है। इसलिए स्वाभाविक है कि मृत्तिका में होने वाला परिवर्तन मर्त्य को आहत कर देगा ही। इस अंदाज़ में कविता की मनोभूमि मानव का ही पर्यायवाची शब्द बन जाती है। यही मनोभूमि दूसरी भाषा में प्रकृति के महीन तत्वों का सूक्ष्म-सौंदर्यात्मक तत्व है। दोनों परस्पर पूरक हैं। पारस्परिकता में ही दोनों की समृद्धि है। कविता यह कहना चाहती है कि धरती जब हसीन होती है, तब जीवन हसीन होता है, जब धरती विलाप करती है, तब जीवन भी विलाप करता है। यही विलाप कविता के आर-पार में अनुगूंजित हो उठता है।

आगे कविता वर्तमान जीवन के अनुभवों पर दृष्टिपात करते हुए पूछती है कि वक्रमुखी रश्मियां, हत्यारी छवियां कहां से आती हैं इस धरती पर? ऐसे सवालों का पीछा करते हुए कविता वेदना का इतिहास रचती है। हम जानते हैं कि इतिहास मानव-जीवन के क्रमिक विकास का लेखा-जोखा है। इतिहास में मानव की अनगिनत अनुभूतियां समाहित हैं। इतिहास स्मृति का धारण कर जीवन में अपनी जगह बनाता है। स्वस्थ इतिहासबोध के बल पर मात्र ऐतिहासिक घटनाओं के मध्य के कार्य-कारण की संबद्धता-क्रमबद्धता रेखांकित की जा सकती है। लेकिन वेदना-पीड़ा का कोई इतिहास नहीं होता है, पर यह हमारा जीता-जागता अनुभव है कि वेदना की लहरियां चारों तरफ उठ रही हैं। ये लहरियां मानव रूपी हत्यारे के कारनामे हैं। कविता जानती है कि जीवन के जिन क्षणों का मानव अनुभव करता है, उनका अवबोध मानव के पास है। जो अनुभव के परे हैं, उनको लेकर कुछ नहीं बताया जा सकता है, उनको नियंत्रित नहीं किया जा सकता है। वेदनाओं के इतिहास का पता यदि मानव के पास पहले से ही होता तो मानव अपनी विध्वंसता के कार्यों से दूर अवश्य रहता। दूरी न बरतने का मतलब यह होता है कि मानव के पास स्वस्थ इतिहासबोध का नितांत अभाव है। ऐसा आदमी स्वाभाविक ढंग से सारसत्तावाद का शिकार हो जाता है। ऐसे में जीवन में हक-बक की स्थिति पैदा होती है। इस वजह से धरती की स्थिति दिन-ब-दिन गंभीर होती जाती है। काव्यात्मक शब्दों में वेदना-पीड़ा की आकृति-संस्कृति की मिट्टी इतनी उर्वर है कि दिन-रात वह उगती रहती है और बढ़ती रहती है। कराह-विरह आदि की खिड़कियां खुलती रहती हैं। इसके लिए सघन-अधम शोषण ही जिम्मेदार है। यह शोषण मानव के अधमत्व की निशानी है। अधमता नैतिकता के पैमानों को आत्मसात नहीं करती है, वह केवल अविवेक को तवज्जोह करती है। इसलिए ही तकलीफ़ों का अलिखित इतिहास रक्त-पंकिल होगा ही। वेदना की बुआई-उगाई की बात करते हुए स्वस्थ भविष्य का निर्माण कदापि नहीं किया जा सकता है। धरती की आसन्न विपदा के लिए मानवेतर कोई प्राणी जिम्मेदार नहीं हो सकता है। संवेदनशील कवि मन इस ध्वंसता की विकरालता की अनुभूति को मिथकीय भाषा में इस प्रकार व्यक्त करता है-

"किन्हीं अलक्षित ग्रहों से उतर-उतर
स्वयं आ रहीं भीतर से।पशुता के
अलक्षित क्षितिजों से लक्ष्य में आ रहीं
पहले से अधिक घातक
पहले से अधिक पातक मनुष्य
बढ़ते जा रहे धरती पर...
और धरती बुरी तरह कांप रही है
पीड़ाओं से घिरी/बै-तरह हाँफ रही है !...."

पातक मानव प्रकृति का पालन नहीं कर सकता है। रोग-संकटग्रस्त प्रकृति व मानव का बचाव तभी संभव है, जब हम पूरी ताकत के साथ प्रकृति को दिल से लगाएं। लगाना कैसे? समकालीन कविता वह भी सिखाती है-

"एक पौधा लगाना
कई परिंदों के लिए
बसेरे का इंतजाम करना है
एक पत्ते को पुचकारने से
पूरे पेड़ को हौसला मिलता है" (राग तेलंग, एक पेड़)।

प्रकृति से जी भर जुड़ने पर ही जीवन संगीतमय हो जाएगा। नहीं जुड़ेंगे तो 'पातक मनुष्य खा जाएगा एक दिन धरती का संगीत।' राज्यवर्धन की कविता इस सच्चाई की ओर हमें ले जाती है-

"खूबसूरत रंगों वाले चिड़ियों के बिना
पृथ्वी कितनी रंगहीन हो जाएगी
...और खो जाएगा एक दिन
धरती का संगीत" (खो जाएगा एक दिन धरती का संगीत)।

इस प्राकृतिक संगीत में रमने के लिए कुंवर नारायण का कवि मन समस्त जीवन के 'सुखों' का परित्याग कर जंगली गुलाब बनकर जीना चाहता है।* गुलाबी रंग जीवन में तभी छा जाएगा, जब जीवन में प्रकृति के सभी तत्वों का संगीतात्मक समन्वय रहेगा। तब हम जान पाएंगे कि प्रकृति के सारे तत्व एक दूसरे से इतने घुले-मिले हैं कि सब सबमें समाहित हैं। नदी, पेड़, हवा, सूरज, आकाश, माटी के क्रमिक विन्यास से मेरे ख्याल से तेजराम शर्मा की कविता 'एक लाल गुलाब' एक अद्भुत द्वीप रचती है और दर्शाती है कि सौंदर्यात्मक सृजन कैसे संभव होता है। काव्यात्मक संवाद इस प्रकार अपनी गति लेता है-

"मैंने माटी से कहा

क्या उगाओगे मेरे लिए
एक लाल गुलाब?
उसने कहा
पहले नदी से मांग लाओ
अंजुली भर जल मेरे लिए
नदीतट पर गया
तो बीमार पड़ी थी
कहने लगी
मुझे किसी पेड़ की
छाया में ले चलो
और मेरे ताप के लिए मांग लाओ
हवा का एक शीतल झोंका
पागल-सी बदहवास
कांपती हवा के पास गया
तो बोली
पहले सूरज से मांग लाओ
एक चिलम भर ताप मेरे लिए
सफेद उजले कपड़े पहने
सूरज के पास गया डरते-डरते
उसने कहा
आकाश के पास जाओ
और मेरे लिए मांग लाओ
कालिख की दीवार को भेदता
झरोखा भर आकाश
जब मैं आकाश के पास गया
वह खाली गुमसुम बैठा था
बोला/पहले माटी के पास जाओ
और वहां उगाओ
मेरे खालीपन को भरता/एक लाल गुलाब।"

आज की संस्कृति में ढोंग-धोखा-दिखावा-फूहड़ता-दोहन आदि इतनी गहराई में जम चुके हैं कि प्रकृति व जीवन में गुलाब खिलेगा ही नहीं। गुलाब खिलाने के मकसद से आजकल पृथ्वी तथा उसके विविध तत्वों के नाम पर दिवस मनाने का रिवाज़ चल पड़ा है। पृथ्वी दिवस (22 अप्रैल) पर्यावरण दिवस (5 जून), ओज़ोन दिवस (16 सितंबर), पर्वत दिवस (11 दिसंबर) आदि आजकल धूमधाम से मनाए जाते हैं। भोगने-मनाने की इस प्रकार की संस्कृति के मूल में भी पूंजीवादी भोगातुरता ही काम करती है। 'पृथ्वी दिवस, 1991' नामक मदन कश्यप द्वारा लिखी हुई कविता को पढ़ते वक्त ऐसे कुछ छोटे-मोटे विचार मन में उभर रहे थे। पृथ्वी दिवस मनाने की परंपरा युनेस्को द्वारा 22 अप्रैल 1970 से प्रारंभित होती है, इसका उद्देश्य भी अन्य दिनों की भांति पर्यावरण संबंधी समस्याओं के प्रति जनता के मन में जागरूकता पैदा करना होता है। करीब 1990 के पश्चात भौगोलिक स्तर पर पृथ्वी दिवस मनाना आरंभ हुआ है। लगता है कि इस सिलसिले कविता अपनी बात रखती है। भारत के राजनीतिक-आर्थिक इतिहास में 1990 से प्रारंभित शतक का एक खास महत्व है। इसी काल में उदारीकरण, निजीकरण और भौगोलीकरण आदि के साथ नव-उपनिवेशीकरण सख्त रूप में भारत में प्रवेश करते हैं और हमारी सांस्कृतिक चेतना के जगत में भी अपना पैर गाड़ देते हैं। इसके प्रभावस्वरूप हमारा जीवन पाश्चिमी पूंजीवादी मशीनी संस्कृति का अंधा अनुकरण कर उसकी गुलामी स्वीकार करने लगता है। हमारे देश के संसाधनों की लूटने-कसूटने के उद्देश्य से ही पूंजीवादी व्यवस्था भारत में छल-बल-समझौते-करारों के बल पर सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करते हुए आती है और अपने लिए लायक परिसर निर्मित करती है। इस राजनीति को कविता समझती है, यह जानने के लिए समकालीन कवि विमल कुमार की कविता 'एक जलते हुए शहर की यात्रा' पढ़ना काफ़ी है। हिंसा की दुनिया कैसे विपुल होती है, संसाधन कैसे गायब होते हैं, विश्वास कैसे दफनाए जाते हैं, कविता के शब्दों में सब गुंथे हुए हैं-

"किस तरह नुचे हैं तितलियों के पंख यहां
किस कदर कुचली गई है घास पाक में
किस तरह ढहाई गई है दीवार
किस कदर लगाई गई है आग
लूटा गया है यहां किस तरह सबका विश्वास।"

इसी प्रकार 'जंगल में पागल हाथी और ढोल' नामक नीरज कुमार नीर की कविता में पूंजीवाद के सांस्कृतिक वर्चस्व की कलई खुलती है और कविता बताती है कि कैसे हमारे जीवन की जड़ें पूंजीवाद उखाड़ फेंकता है। पूंजी के आघात से कुछ बचा-कुचा नहीं है। अपने ज़मीन, धर्म, संस्कृति आदि के प्रति मानव के मन में हीनता की भावना उत्पन्न करते हुए, अपराधबोध का बीज बोते हुए पहले आंतरिक दृष्टि से पूंजी उपनिवेशितों के मन में सम्मानहीनता की भावना उपजाती है, फिर उस पटरी से होकर क्रूरता 'छुक-छुक' कर सीटी बजाकर आगे निकल जाती है। हमारी हालत उस हाथी की हो गई है, जो पाश्चात्य सभ्यता के गड्ढे में फंसकर सूंड उठाकर त्राहि-त्राहि कर रहा है। कविता का कल्पनात्मक बोध यही कहता है-

"पेट भर रोटी के नाम पर
छीन ली गई हमसे
हमारे पुरखों की ज़मीन
कहा, ज़मीन बंजर है।
शिक्षा के नाम पर
छीन लिया गया हमसे
हमारा धर्म/कहा, धर्म ख़राब है।
आधुनिकता के नाम पर
छीना ली गयी
हमसे हमारी हज़ारों साल की सभ्यता
कहा, हमारी सभ्यता पिछड़ी है।
अपने ज़मीन, धर्म और सभ्यता से हीन
जड़ से उखड़े,/हम ताकते हैं आकाश की ओर
गड्ढे में फंसे सूंड़ उठाए हाथी की तरह।"

मेरा आग्रह है कि इस ऐतिहासिक समझ के साथ 'पृथ्वी दिवस, 1991' नामक कविता का अध्ययन किया जाना चाहिए। कविता उसकी मांग भी करती है और उसका संपूर्ण कलेवर ज्वलंत राजनीतिक बोध से रंजित भी है। कविता कहती है कि इस प्रकार पृथ्वी दिवस मनाने से कुदरत बचेगी नहीं, बचती भी नहीं है। हमारा अनुभव यह है कि प्रकृति का शोषण रोज़ाना बढ़ता जा रहा है। मनाने से यदि प्राकृतिक शोषण कम होता तो बहुत पहले ही कम हो जाता। मनाने की संस्कृति मानव के आत्म में एक छद्म तुष्टि भर देती है। व्यक्ति अपने मन ही मन यह अनुभव करता है कि पृथ्वी के लिए उसने कुछ किया है या कर रहा है। तमाशा यह है कि इन दिनों में लाखों की तादाद में पेड़-पौधे लगाए जाते हैं, विशेषकर पर्यावरण दिवस में। इसके लिए सरकार की ओर से भी लाखों-करोड़ों रुपए खर्च किए जाते हैं। यदि सालों लगे पौधे पेड़ हो जाते तो पूरी धरती बहुत पहले ही जंगल में तब्दील होती, पर जंगल हुआ नहीं, होगा भी नहीं। पूंजीतंत्र के प्राकृतिक शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वालों का मुंह बंद करने के लिए ऐसा किया जाता है, बस कहना इतना है कि नाटक जारी है। पृथ्वी दिवस के समय

आदमी संकल्प लेता है कि प्रकृति का बचाव किया जाएगा, पौधे लगाए जाएंगे। ऐसे समारोहों में समाज में पृथ्वी के संरक्षणार्थ शपथ ग्रहण कर ली जाती है, सार्वजनिक सभा का आयोजन किया जाता है, कविता लिखी जाती है, प्रतियोगिताएं चलाई जाती हैं, पुरस्कार वितरण किया जाता है, समाचार पत्र में रिपोर्टें छपवाई जाती हैं। 'मनाना' पूंजीवाद की नरम नीति का मिसाल है, वह उसका चिकना चेहरा है। मना-मनाकर पृथ्वी की स्थिति हर रोज़ बदत्तर होती चली जाती है! कविता की विचारधारा यह बताती है कि पूंजीवाद के हाथों से मुक्त हो जाने पर ही पृथ्वी का बचाव संभव है। लुभावने नारे लगाने से भूमि की स्थिति सुधरती नहीं। कवि अपनी क्षुब्धता-आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहता है कि यूरोप के सारे बूचड़खानों पर/सौंदर्यशालाओं के बोर्ड लग गए हैं। जीवन के सारे के सारे मापदंड प्रदीच्यों द्वारा ही तैयार किए जाते हैं, उनकी स्वीकृति होती है। कविता बखूब जानती है कि यूरोपीय अर्थशक्तियों ने तीसरी दुनिया या अविकसित राष्ट्रों की संपत्ति के बल पर अपने को संपन्न बनाया है और बना रही हैं। इसके बलबूते पर उन्होंने विकसित राष्ट्रों का दर्जा भी हासिल किया है। हमारी गरीबी और प्राकृतिक संपत्ति के विनाश के लिए उनको ही कविता जिम्मेदार ठहराती है। कविता जानती है इस प्रकार के दिवसों को मनाकर पूंजीवाद अपनी हिंसात्मकता का नकाबपोश करता है। हमने जान लिया है कि अतिशय शोषण का शिकार होकर बलदेव वंशी की 'धरती' हांफ रही है तो मदन कश्यप की 'पृथ्वी' बुरी तरह घायल होकर चीख भी नहीं सकती है। पूंजीवादी आर्थिक शक्तियों की तुलना हत्यारे के साथ करने वाली कविता उसकी चरित्रगत विकृति का पोल खोलते हुए कहती है कि हत्यारा श्रृंगार कर रहा है! धरती पर जो घाव उसके द्वारा लगाए गए हैं, उनपर उससे हरे वृक्ष के रंग-चित्र चिपकाए जाते हैं, जो अभी तक भरे भी नहीं हैं। जिसने पृथ्वी की आंखें फोड़ दी हैं, वही हत्यारा उनपर सुरमा लगा रहा है। आगे प्रकृति के मानवीकरण के साथ होने वाले बुरे व्यवहार का चित्रण करते हुए कवि का कहना है कि प्रकृति का बाल पकड़कर हत्यारा घसीट रहा है, प्रकृति के हाथों को वह मरोड़ रहा है, फिर वही निर्लज्ज होकर उन्हीं हाथों में कंगण पहना रहा है। इसपर कैसे भरोसा किया जा सकता है! इन हत्यारों की महत्वाकाक्षाओं से पृथ्वी के अंतरिक्ष में फैली ओज़ोन की परत में छिद्र भर गए हैं, उनके सुख-भोग की एषणाएं पर्वतों की छातियां छील रही हैं, उनकी लिप्सा पूरी प्रकृति की हरियाली निगल रही है। ऐसे-वैसे लोगों व राष्ट्रों को हम 'महान', 'सभ्य', 'उत्कृष्ट', 'विकसित' आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं। हम भी रक्तपिपासू हत्यारे के रास्ते पर चलकर प्रकृति को खतरनाक रास्ते पर ला खड़ा करते हैं। 'पृथ्वी दिवस, 1991' कविता की पंक्तियां इस भीषण परिस्थिति को इस प्रकार समेटती हैं-

"जिनकी आकांक्षाएं छेद रही हैं
ओजोन की रक्षा-परत
जिनकी एषणाएं रौंद रही हैं
पर्वतों की छातियां जिनकी तृषा पी जाती है
सारी नदियों के स्वच्छ जल
जिनकी लिप्सा निगल जाती है
पूरी वसुधा की हरियाली
अम्ल-मेघ बनकर
बरसती है जिनकी लालसा
वही 'सभ्य' और 'महान' लोग
हथियारों के सौदागर/नशीली दवाओं के तस्कर
अचानक बनाने लगे हैं
पृथ्वी को बचाने की योजनाएं
मिट्टी की रूखी देह में लगाकर
नरम विचारों के उबटन
जिनकी रक्तपिपासाओं का कोई अन्त नहीं
वे जाने किस अन्त से घबड़ा रहे हैं!"

हम सब को दृढ़ संकल्प लेकर पूंजीवाद के पंजों से तथा उसके बहुविध शोषण-तंत्र से पृथ्वी को हर कीमत में बचाना चाहिए। कविता अपने व्यंग्य भरे स्वर में बताती है कि पूंजीवादी नृशंसक शक्ति बम फाड़कर धुएं की चिंता करती है, जंगल काटकर भूस्खलन पर शोध करवाती है। इस प्रकार करके-करवाके पूंजीवाद निपट मूर्खता को ही प्रदर्शित नहीं कर रहा है! 'मेढ़की रान' तथा 'बंदरों के सिर' के साथ पूंजीवाद अपने जन्मसिद्ध अविवेक के बल पर केक की तरह इस पृथ्वी को काट-काट कर खा रहा है। इस वेला में 'बुद्धि का लाइसेंस' नाम की दिनेश कुमार शुक्ल की चर्चित कविता का याद आना एकदम स्वाभाविक है। उस कविता का कहना है कि हमारी संपत्ति पर उन पश्चिमी आर्थिक शक्तियों का मलिकाना चल रहा है। हज़ारों वर्षों से जिन चीज़ों का इस्तेमाल जन साधारण करते आ रहे हैं, उनपर (नीम और हल्दी) तक के पेटेंट्स उन्हीं लोगों की मुट्ठी में हैं। सबको निगल लेने वाली पूंजीवादी सत्ता अपने छल-बल से अन्य देशों की संपत्ति को कैसे हथिया रही है, कविता वाकिफ़ हो चुकी है। प्रमाण है-

"ज्ञान आपका है/विज्ञान आपका है
खुदा आपका है/शैतान आपका है
दुनिया की सारी रिसर्च का ख़र्च
चूंकि आपने उठाया है/उदय और अस्त होगा
सूर्य अब आपसे ही पूछकर/आपके इशारे पर
ही बहेगी हवा/बिना दवा हमारी आबादी
ख़ुद ही नियोजित हो जाएगी
आपकी अनुमति से ही
आएंगे सुख के बौर/आपकी सहमति से ही
उठेगी आंधी दुख की/और इस दौर में
बिना आपे से लाइसेंस लिए
काम नहीं करेगी किसी की बुद्धि
बुद्धि भी एक अस्लहा है
बंदूक की तरह/घूमेंगे अशौच दशा में
नीम की दातून किए बिना लोग
लड़कियां कुंवारी रह जाएंगी
नहीं चढ़ेगी हल्दी, क्योंकि अब
नीम और हल्दी का पेटेंट भी
आप ही के नाम है/आप ही की सुबह
आप ही की शाम है।"

इस विह्वलता से भरे क्षण में भी कविता अपनी आशावादिता नहीं छोड़ती है। तरबूज की तरह रसधार के रूप में प्रकृति को परिवर्तित करने की आकांक्षा व्यक्त करने वाली कविता सारी की सारी अतींद्रिय शक्तियों पर भरोसा छोड़कर कहीं नहीं जाती है। अब 'शेषशयन विष्णु भगवान' पृथ्वी का पालन नहीं कर रहा है, ऐसा दिखता नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी को हिरण्याक्ष से बचाने के लिए भगवान विष्णु ने वराह का अवतार लिया था, इस दुश्वारी में भी वह अवतार लेता हुआ दिखाई नहीं देता है। सारी की सारी मानवेतर शक्तियों की निस्सारता की घोषणा करते हुए कवि का कहना है कि पृथ्वी को हम हज़ार-हज़ार हाथों से थाम लेंगे। मानव ही इस पृथ्वी को बचा सकता है, और कोई नहीं। लेकिन अकूत लिप्सा से आज का मानव कहां मुक्त हो जाता है? उत्पादन-उपभोग पर अवलंबित पूंजीवादी अर्थतंत्र इस भूतल को कैसे वीरान कर छोड़ता है, इस बात को ज्ञानेंद्रपति की कविता 'नदी और

साबुन' सरल ढंग से समझाती है। 'नदी और साबुन' भी प्रकृति की वर्तमान स्थिति पर रोष प्रकट करने वाली कविता है। यहां भी कविता का शीर्षक एकदम प्रतीकात्मक बन पड़ा है। हम जानते हैं कि ज्ञानेंद्रपति शब्द के पारखी हैं। इस संदर्भ में यह बताने के लिए मज़बूर हूं कि हिंदी में संस्कृत भाषा की विरासत से नदी के अनेक पर्याय उपलब्ध हैं, जैसे- तटिनी, सरिता, तरंगिणी, निर्झरिणी, अपगा, निम्नगा, वाहिनी, कूलंकषा, जलमाला, लहरी, सरी, तरंगावती, पयस्विनी, तरनी, कल्लोलिनी, प्रवाहिनी आदि। इनमें से कवि ज्ञानेंद्रपति ने क्यों 'नदी' शब्द को अपनी कविता के शीर्षक में स्थान दिया? बात स्पष्ट है कि 'नदी' शब्द की व्युत्पत्ति 'नद' से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'नाद'। 'जो निनाद या नाद करता है', वही नदी कहलाती है। नदी का नाद नदी की जैविकता का प्रमाण है, व्यापक अर्थस्थली में प्रकृति की जैविकता का भी। ज्ञानेंद्रपति यह ध्वनित करना चाहते हैं कि मनुष्य के प्राकृतिक हस्तक्षेप के माध्यम से नदी का नाद नीरवता में परिवर्तित होता है। इसके कारक तत्व के रूप में वे 'साबुन' की बात को कविता में पेश करते हैं। वह पूंजीवादी औद्योगिक कृत्रिम उत्पादन व्यवस्था की 'सुपुत्री' है। विज्ञापन में यही साबुन सारी स्वच्छता, सुंदरता, दिन के शुभारंभ का लिबास पहनकर ग्राहकों के सम्मुख आता है। कविता यह दिखाती है कि एक छोटे से साबुन की टिकिया किस प्रकार पल भर में नदी की जैविकता को गायब कर देती है। नदी अपनी अर्थवत्ता में जैविक क्रिया का रूप है। वह एक विस्तृत जैविक तंत्र की नींव है। अपनी भव्य जैविकता के सहारे जैविक तंत्र के सभी तत्वों को वह समृद्ध करती है और परवरिश करती है। नदी अपने आप में एक परितंत्र है, उसके दोनों ओर खड़े पेड़-पौधे अपने आप में लघु-लघु परितंत्र हैं। इस नदी के जल (जल में पवित्रता का भाव है) के बल पर मिट्टी उर्वर होती है। नदी की उर्वरता ही मानव की संस्कृति एवं संभ्यता के रूप में बदल जाती है। हम 'सब' प्रकृति की कृतियां हैं। हमारी नसों में प्रकृति की शक्ति ही सतत प्रवाहमान है। कविता का पर्यावरणीय चेतना यह कहती है कि 'नदी की नसों में बहता है पहाड़ों का खून।' (केदारनाथ सिंह) यह 'पानी सृष्टि की पहली आवाज़ है' (प्रेमशंकर शुक्ल, पानी एक आवाज़ है)। वे पानी की राजनीति को अपनी एक अन्य कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"पानी का मतलब
'ठंडा मतलब कोका कोला' नहीं
प्यास की वर्तनी को/बाज़ार बना देने की प्रवृत्ति के
खिलाफ होना है/सख्त खिलाफ़!।" (पानी का मतलब)

अपनी कविता में ज्ञानेंद्रपति भी साबुन के बहाने औद्योगिकृत विकृत सभ्यता के क्रूर रासायनिक स्वरूप के प्रति खिलाफ़त करते हैं। कविता यह जानती है कि प्रकृति के अन्य प्राणियों की वजह से गंगा नदी कभी मैला नहीं होती है। मानव की कृत्रिम निर्मिति (जीवन पद्धति), यानी एक छोटे से साबुन की टिकिया संपूर्ण गंगा मैया को मलिन कर देती है। भारत के निवासियों का गंगा 'तीर्थ' अब अपवित्र है। ऋषि-मुनि मने हैं- "तरति पापादिक यस्मात्" या "तीर्यते अनेन" के अनुसार 'तीर्थ पापों को तरने का स्थान है।' आज के गंगा जल में वह शुद्धि-विशुद्धि नहीं रही है, उसमें पापों से तरने की विभूति नहीं रही है। रासायनिक मलिनता का प्रतीक बनकर कविता में आए साबुन की टिकिया पिशाच (मैलासुर) का रूप धारण कर नदी में झाग -फेन बन भर जाती है। लेकिन कविता की व्यंग्यात्मकता यह है कि दूरदर्शन के स्क्रीन में वही साबुन मैलासुर के वध करने वाले कार्तिकेय (तारकासुर का वध करने वाले शिव-पार्वती का पुत्र) के रूप में दिखाया जाता है। इस ओर भी कविता ध्यान खींचती है कि आज कल औद्योगिक कारखाने (जिसे 'आधुनिक' संस्कृति मंदिर के रूप में पवित्र मानती है) जल का अतिशय दोहन करते हैं। इसलिए गंगा की धारा क्षीण हो गई है। हिमात्मजा (हिमालय की बेटी) होने के बावजूद उसकी शुभ्र त्वचा का रंग बैगनी (विषाक्त) हो गया है। दुर्दिनों के दर्जल में मरी हुई इच्छाओं की तरह गंगा में मछलियां उतर आई हैं। नीर हरने वाला कौन है, नदी के कल-कल में 'कलुष' भरने वाला कौन है, कविता बखूब जानती है। ज्ञानेंद्रपति की प्रस्तुत कविता के दो भाग हैं। कविता दो हिस्सों में शीर्षक के अनुरूप बंट गई है। नदी और साबुन वैयाकरणों की आंखों में तो 'और' समुच्चयबोधक के माध्यम से बना एक पदबंध है, जो सामासिक दृष्टि से द्वंद्व समास में आता है। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है, जो विशिष्ट प्रयोगगत संदर्भ में आपस में मिले हुए हैं। कविता के प्रथम भाग में नदी को लेकर कविता की चिंता व्यक्त हुई है तो दूसरे में साबुन के विषाघात का प्रभाव आया है। कविता यह भी जानती है कि औद्योगिक संस्कृति अपने साम्राज्य को विज्ञापन रूपी दैत्य के हाथों से विस्तारित करती है। उसके माध्यम से वस्तु का साम्राज्य फैलता है। वह मानव के मिथक, सामाजिक-भावात्मक संबंध, संस्कृति-परंपरा, भौगोलिक परिवेश आदि का इस्तेमाल करते हुए मानव के मन में अपनी जड़ें उतार देता है। प्रसंगवश इस कविता के प्रसंग से जुड़ी हुई वाणिज्य और व्यापार की किस्सागोई भी बताना चाहता हूं, जो अप्रासंगिक नहीं होगा। करीब 1990 में गोदरेज कंपनी की तरफ़ से 'गंगा' नाम का साबुन निर्मित किया गया था और दूरदर्शन में उसका विज्ञापन सरासर आया करता था। इस साबुन के रेपर में यह लिखा हुआ होता था कि 'गंगा स्नान का साबुन।' उस विज्ञापन में यह कहा गया है कि 'शुद्धता का स्वच्छ अनुभव' स्नानघर में आपको इस साबुन के मलने से प्राप्त होगा, इसके उपयोग से दिन का 'शुभारंभ होगा।' गुप्त बात यह भी थी कि गंगा के पानी के इस्तेमाल करके बने साबुन के प्रयोग से तो स्वाभाविक रूप से भारतीय मन के विश्वास के अनुसार 'पाप धुल जाएगा।' हकीकत में वह साबुन मलिन गंगा के पानी से ही बना है तो आदमी बीमार हो जाएगा। दिखाने-बताने के लिए गंगा के जल का दावा मात्र कंपनी करती है। साबुन अपने आप में कृत्रिम-अपवित्र है, पर वह गंगा की विशुद्धि का अवतार बन कर जनता के सम्मुख फैल जाता है! पूंजीवाद की कूटनीति जानिए कि धार्मिक भावना तक का इस्तेमाल करते हुए लाभ का ढेर खड़ा करने के लिए वह ज़रा भी हिचक का अनुभव नहीं करती है। यहां गंगा नदी के साथ जुड़ी भारतीय जनता की आस्तिक भावनाओं को विज्ञापन का रूप देकर झूठ-मूठ के सहारे जनता की लूट का मौका खड़ा किया जाता है। साबुन छायाहीन (निश्छाय) राक्षस की भांति पानी में व्याप्त होता है, लेकिन हमें उसका पता नहीं चलता है। बाज़ारी तंत्र के समर्थक इस उद्देश्य से विज्ञापन तैयार करता है कि अपना एक अलग उपभोक्ता वर्ग तैयार किया जा सके। मुझे कभी आश्चर्य इस बात को लेकर होता है कि आज की कविता जीवन के महीन से महीन अनुभवों को कितनी चारुता के साथ शब्द में आबद्ध करती है। साबुन के विज्ञापन के दूरदर्शन के स्क्रीन में आने का काव्यानुभव ज्ञानेंद्रपति की कविता में अंकित है, जिसमें पौराणिक और नवीन मिथकीय संसार का संगम हुआ है-

"वह एक साबुन है/साबुन की एक साबुत बट्टी/
रैपर से खुलकर/प्रस्तुत पड़ी
जल-डूबी घाट-सीढ़ी से ऊपर
सूखी घाट-सीढ़ी पर/एक नीली साबुन-बट्टी
वह एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी का/बहुप्रचारित साबुन है
माया है कि तरहथ-भर की उसकी चौकोर निश्छाय काया की
बहुत लम्बी छाया है

विज्ञापन-फिल्मों में महाशक्तिशाली पुकारा जानेवाला
सुपरमैनी भुजमछलियों वाला
मैलासुर के लिए कराल कार्तिकेय स्वरूप
सांगीतिक से अधिक सांघातिक एक धमाके के साथ
स्क्रीनागमन का अभ्यस्त!"

इस साबुन के छल-बल से थल-स्थल के जीव सराबोर है। कविता गंगा मैया की बैचैनी को इस प्रकार दर्शाती है कि पानी के जीव-जंतु (मछली, घोंघा, कछुआ आदि) किस प्रकार बदहाली में जीवन जिएंगे? बरसात के उद्दाम दिन, जो अनेक जीव-जंतुओं का मैथुनकाल है, इस दुस्थिति में वे जीवन के रंग का विस्तार कैसे करेंगे? नदी इस प्रकार सूखती-मलिन होती चली जाएगी तो जीवन की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति, कम से कम जल-थल प्राणी अपनी प्यास को कैसे बुझाएंगे? पानी जैविकता का पावन रस है, नदी तो 'पृथ्वी की प्राचीनतम नागरिक है' (केदारनाथ सिंह, पानी की प्रार्थना)। लेकिन वणिक संस्कृति इस नागरिक के सारे के सारे अधिकारों को छीन लेती है। उस नागरिक (नदी) तक को बेचने के लिए पूंजी तैयार होती है। किसकी बिक्री करें, किसकी न करें, वह विवेक पूंजीवादी संस्कृति विकसित नहीं करती है। वह प्यास को बेचती है, मलिन को बेचती है, मानव के राग-संबंधों को बेचती है। उसका एक मात्र लक्ष्य धन-धन-धन... मात्र है। गौर से पढ़िए विष्णुनागर की कविता का एक अंश, जिसमें बिक्री का विशालकाय हमारे सामने हाज़िर होता है।'बेचो-बेचो-बेचो...' नाम की कविता में कवि की अंतश्चेतना धन लिप्सा की अंदरूनी खोह में प्रवेश करती है और दिखाती है कि 'रोम-रोम' का व्यापार कैसे होता है-

"बेचो -बेचो–बेचो/जो न बिकता हो
उसे धोखे से बेचो/सड़े हुए को इत्र में लपेटकर बेचो
जो पुराने पैक में न बिकता हो
उसे नये पैक में नयी हीरोइन की सिफारिश के साथ बेचो
जो पुराने नाम से न बिक रहा हो
उसे नये नाम से बेचो/मांस भी बेचो चमड़ी भी बेचो
कमी रह जाये तो हड्डियां भी बेचो
दिल पहले बिक चुका हो/तो दिमाग भी बेचो
आग बिक चुकी है।/तो नमी को क्यों संभालकर रखे हुए हो
बादल जब बेच दिये/तो आकाश बेचने में देरी क्यों
मुस्कुराहट बेचते-बेचते थक झुके हो
तो क्रोध बेचो, मजबूरी बेचो...
जो जागते वक़्त न बिकता हो
उसे दूसरे की नींद में बेचो, उसके सपने में बेचो
जो खिलखिलाने से न बिकता हो/उसे रिरियाकर बेचो
जो नंगापन दिखाकर न बिकता हो
उसे सात कपड़ों में लपेटकर बेचो
खुशी बेच दी हो/तो दुख भी तो बेचो
आत्मा न बिक रही हो
तो शरीर का रोम-रोम ही बेच दो।"

सबकुछ बिक जाने के बाद फिर क्या बचेगा। नदी को मन में रखते हुए सोचा जाए तो पूछने की बात ही नहीं उठती है। नदी रेत की नदी' हो जाती है। वहां न पानी का लहराना है, न नाव है, न जीव है, न पौधा है, न पेड़ है। कविता की संवेदना देखिए-

"रेत की नदी एक/मिली मुझे राह में।
मैंने थोड़ा कुरेदा/आंखें छलछला आईं।
बोली: 'अतीत/छिपा है मेरे भीतर
जल है पर वह/भूला है लहराना,
वर्तमान मेरा अब तो
अनवरत दाह है/नाव लेकर
मेरे पास मत आना।" (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना)

जल शोषण की पतित-दयनीय स्थिति का घूंघट यहां हट जाता है। कोला कंपनी का इतिहास इसका उत्तम उदाहरण है। कविता नारेबाजी करती है कि 'पानी का मतलब कोको कोला नहीं है।'** (प्रेमशंकर) विदित है कि 'कोको कोला' शुद्धपानी से जन्मी विषाक्त बाज़ारी संतान है।

पानी की तरलता को, ठंडापन को विज्ञापन के माध्यम से अपने गुण के रूप में कोको कोला अपनाता है। विज्ञापन का टैग लाईन (जिसका अपना कोई अर्थ नहीं होता है, पर वह नाटकीय प्रभाव लगातार आवृत्ति के माध्यम से दूसरों पर डालता है) का मतलब वही होता है। अपना कुछ नहीं है, दूसरों के गुण को स्वाहा कर कोको कोला अपना साम्राज्य विकसित करता है। इसके प्रभाव को केरल के पालक्काड़ जिले के प्लाच्चीमड़ा गांव में वहां की जनता ने अनुभव किया है। कोको कोला कंपनी के जल-शोषण से एक गांव पूरा-पूरा मरुस्थल होता जा रहा था। मयिलम्मा नामक एक औरत ने इसके खिलाफ़ संघर्ष करना शुरू किया। मयिलम्मा यह बाताती थी कि घर के बाग में सब्जी के लिए पानी नहीं, पीने के लिए पानी नहीं। सवाल यह है कि हम जिएंगे कैसे, जाएंगे कहां? विकास के अंधभक्त पहले इस अंतर्राष्ट्रीय कंपनी की परियोजना को प्रोत्साहित कर रहे थे, पर मयिलम्मा के ऐतिहासिक संघर्ष के परिणासस्वरूप जैविकता की, उसके विकास की जनता की राजनीति की विजय हुई और केरल सरकार ने कंपनी की अनुज्ञप्ति लोकहित में अनेकानेक न्यायिक प्रक्रिया के तदनंतर 2004 रद्द कर दी। यहां पूंजीवाद का विकृत चेहरा पर्दाफाश हो जाता है। कोको कोला कंपनी जहां पानी मिलेगा, वहां अपनी कंपनी खड़ी करेगी, जब पानी खत्म होगा, सब बंद करके 'अमरिका' चली जाएगी। पर मयिलम्मा जाएगी कहां? जहां संसाधन मुफ्त में संभव है तो मुफ्त में या सस्ते में संभव है तो ऐसा हस्तगत कर अपने धनराज्य को बढ़ाने के सिवाय कंपनी का कोई दूसरा ध्येय नहीं है। यहां तक कि कंपनी के अपशिष्टों को खाद के नाम पर कंपनी बेचा करती थी। कोको कोला रोज़ पीकर कंपनी के मज़दूर और उनके बच्चे आदि बीमार भी होते थे। रामदरश मिश्र की कविता 'आदत' काव्यात्मक भाषा में कहती है कि सोना-चांदी के पहाड़ पर बारूद का पेड़ लगाकर पूंजीवाद क्षण भर में संसाधन हिंसात्मक ढंग से हथियाता है और सबकुछ भ्रष्ट करके निकल जाता है। यह बात कोको कोला कंपनी के लिए सौ फीसदी लागू है। बात इतनी ही है कि धन-लाभ नृशंसता फैलाती है। ऐसी-तैसी पूंजी की विकृति का सूक्ष्म रेखांकन दर्द से भरपूर वाणी में कविता यूं करती है-

"उसने सोने-चांदी के पहाड़ पर
बारूद के पेड़ लगाए हैं
जिनकी विषाक्त सांसों से
झुलस गई हैं हवाएं/ऐंठ गई हैं वनस्पतियां-
टूट गए हैं चिड़ियों के पंख
तेजाब-सा खलबला रहा है नदियों का पानी
जल गए हैं मौसमों के रंग
और वे एक-दूसरे में समा गए हैं
और आदमी एक प्यासा शोर बनकर रह गया है।"

इससे व्यक्त होता है कि पर्यावरणीय कविता जीवन के भविष्य की 'प्यास' के साथ 'जैविक प्यास' की चिंता को हमारे सामने रखती है। समस्त समस्याओं का मूल कारण सदानंद शाही की कविता की शैली में कहा जाए तो अन्तःकरण का आयतन संक्षिप्त होना होता है। काव्यानुभव यह है कि वह समय के बीत जाने के हिसाब से संक्षिप्त से संक्षिप्ततर होता जाता है और अर्थी-स्वार्थी मानव प्रकृति से दूर होता चला जाता है। समान भाव स्तर को एकांत श्रीवास्तव अपनी कविता 'समुद्र पीछे

खिसक रहा है' में व्यक्त करते हैं। इसमें भी पारंपरिक मिथकों का पूरा-पूरा उपयोग हुआ है। भारतीय मिथकीय परिकल्पना के अनुसार संपूर्ण पृथ्वी तो एक कच्छप की पीठ पर टिकी रहती है। मिथक यह बताता है कि भूमि का संतुलन एकदम नाजुक है। इसलिए भूतल में जीवन चलाते समय अत्यधिक सावधानी बरतने की ज़रूरत है। वर्तमान जीवन परिवेश से बटोरे गए अनुभवों के आधार पर कवि प्रकृतिपरक भाषा का प्रयोग करते हुए कहता है कि इस भूतल को लेकर उम्मीदें पौर्णमी के बाद के चांद की भांति कम होती जा रही हैं। कवि को लगता है कि भूमि एक भयंकर विपदा में फंस गई है। कवि की भाषा में कहा जाए तो

"यह घूमती हुई पृथ्वी
डायनोसोर के खुले हुए
जबड़े में आ गई है।"

भय से तरबतर होकर प्रकृति में स्तब्धता परिव्याप्त हुई है, यह भूमि बुझी हुई आग की तरह निस्तेज हुई है। एक उजड़े गांव की तरह यह संपूर्ण जगत परिवर्तित होता जा रहा है। इस अंतिम घड़ी में ही सही, हमें यह समझना चाहिए कि

"पृथिवी एक शब्द है
नाद-ब्रह्म घोष-
लाखों-करोड़ों वर्षों के
गहन अनुभवों की गूंज।
सौन्दर्य-स्फोट है पृथ्वी
आभा अपनी झलकाती
आत्मा की गहराइयों में कोमल
एक रहस्यमयी रूप.../पृथिवी रसवन्ती है
कपिला कामधेनु-सी
प्रवाहित नसों के संजाल में
अमृत की गोरस धार..../पृथिवी एक गन्ध है
नासा पुटों को झनझनाती
सतरंगी ऋतुओं से फूटती
मादक और मोहक महक....
पृथिवी एक स्पर्श है/चाक्षुष आकार से परे
ममतामयी उंगलियों का
थरथराता जादई संवेदन.../मेरा प्यार है पृथिवी
मेरे बांहों के घेरे में/अनन्त जीवन की-
अजस्रा दिपदिपाती अजर-अमर लौ!"
(श्याम कश्यप, पृथिवी मेरी बांहों में)

कविता बस इस इतना कह सकती है कि धरती को दर्द न पहुंचाएं। पृथ्वी ही जीवन की हरियाली बन कर सबकी नसों में बहती है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत (सं), हरित कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022.
2. प्रमोद कोवप्रत (सं), काव्य चयनिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015.
3. *नहीं चाहिए मुझे/कीमती फूलदानों का जीवन/मुझे अपनी तरह/खिलने और मुरझाने दो/मुझे मेरे जंगल और वीराने दो/मेरे दरख्त से/मत अलग करो मुझे/वह मेरा घर है/ उसे मुझे अपनी तरह सजाने दो,/ उसके नीचे मुझे/पंखुरियों की शैय्या बिछाने दो/नहीं चाहिए मुझे किसी की दया/न किसी की निर्दयता/मुझे काट-छांटकर/सभ्य मत बनाओ/मुझे समझने की कोशिश मत करो/केवल सुरभि और रंगों से बना/मैं एक बहुत नाजुक ख्वाब हूं/कांटों में पला/मैं एक जंगली गुलाब हूं। (कुंवर नारायण, जंगली गुलाब) प्रमोद कोव्वप्रत, काव्य चयनिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015. 78.)
4. ** पानी का मतलब//'ठंडा मतलब कोका कोला' नहीं/प्यास की वर्तनी को/बाज़ार बना देने की प्रवृत्ति के/ ख़िलाफ़ होना है/सख्त ख़िलाफ़! (प्रेम शंकर शुक्ल, पानी का मतलब) प्रमोद कोव्वप्रत, काव्य चयनिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015. पृ. 124.

संत काव्य में जिज्ञासा भाव - ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय

डॉ. शीतल प्रसाद महेन्द्रा
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय
बांदरसिन्दरी (किशनगढ़) अजमेर
मो न. 9887011119

संसार में अज्ञात अथवा सबसे अधिक छिपा हुआ ईश्वर ही है । उसी को परमतत्त्व, ब्रह्म, असीम आदि शब्दों के द्वारा कहा गया है। मनुष्य, कवि अथवा आत्मा उस अज्ञात परमेश्वर को जानने का प्रयत्न करता है । इस अज्ञात और अप्राप्त परमात्मा को प्राप्त करने के लिए आत्मा अनवरत प्रयत्न करती रहती है । सृष्टि के मूल में परम तत्व की जिज्ञासा है। ज्ञान के शिखर पर ज्ञाता और ज्ञेय, भव सागर में आश्रय और आलम्बन तथा साधना की तपोभूमि पर साधक और साध्य मिलकर एक हो जाते हैं। रहस्यवादी के अन्दर ज्ञान, भाव और कर्म का एकीकरण हो जाता है। वह ज्ञानयोगी, प्रेमयोगी और कर्मयोगी के समकक्ष हो जाता है। अतः रहस्यवाद की साधना को पूर्णयोग या सर्वांग साधना कह सकते हैं। वास्तव में रहस्यवाद परम तत्व के प्रातिम ज्ञान एवं अनिर्वचनीय अनुभूति की दार्शनिक भावात्मक साधनात्मक अभिव्यक्ति है।

भारतीय रहस्यवादी दार्शनिक प्रोफेसर रानाडे ने सर्वांगपूर्ण परिभाषा दी है जिसमें बुद्धि भावना एवं संकल्प तीनों के एकीकरण पर बल दिया गया है-"रहस्यात्मक अनुभव की अवर्णनीयता का अन्तर्ज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बुद्धि भावना एवं संकल्प रहस्यवादी प्रत्यक्ष के लिए सभी की आवश्यकता है, परन्तु अन्तर्ज्ञान को उनका सहायक होना नितान्त आवश्यक है। यह अवर्णनीयता तथा अन्तर्ज्ञान ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा रखने वाले समस्त मनुष्यों का एक गुप्त समाज बना देते हैं, जिनके नियम यदि ज्ञात है तो उन्हीं को ज्ञात है अथवा हम तो यह कहेंगे कि वे उनको भी नहीं ज्ञात है। उनको केवल ईश्वर जानना है। इस प्रकार सब देशों तथा सब कालों में रहस्यवादी एक शाश्वत अलौकिक समाज का निर्माण करते हैं। विश्वजनीनता, बौद्धिकता, भावात्मकता एवं नैतिकता उत्साह ये सब ईश्वर के प्रत्यक्ष घनिष्ठ आन्तरिक ज्ञानमय प्रत्यक्ष की अपेक्षा गौणतर है। अन्ततः इस प्रकार एक रहस्यवादी का अन्तिम न्यायकर्ता स्वयं उसकी आत्मा ही है।"

डॉ. राधाकृष्णन भी रहस्यवाद को मानवीय प्रकृति का एक ऐसा सतत् अभ्यास ठहराना चाहते हैं जिसका परिणाम आध्यात्मिक तत्व की उपलब्धि कर लेना कहा जा सकता है।

Mysticism is to be defined as the direct awareness of reality conceived as truth. It seeks truth through the inward fight of the soul, it is directness of it's awareness which constitutes it's superior claim but the search is for truth and the end is it's freedom.....mystical experience requires no proof, it is self evident and self sufficient. It does not look to any thing beyond it self for its verification.

जयशंकर प्रसाद ने आत्मा की संकल्पनात्मक मूल अनुभूति के रूप में व्यक्त किया है- काव्य में आत्मा की संकल्पनात्मक मूल अनुभूति को मुख्य धारा रहस्यवाद है। इसके विपरीत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि में काव्य में रहस्यवाद को स्थान नहीं है- कविता का सम्बन्ध बह्म की व्यक्त सत्ता से है, चारो और फैले हुए गोचर जगत् से है अव्यक्त सत्ता से नहीं। इसी प्रकार महादेवी वर्मा 'दीपशिखा' की भूमिका में रहस्यवाद पर प्रकाश डालती है-

''अखण्ड चेतन से तादात्मय का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का शोध ही हृदय का प्रेय हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौन्दर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है। अतः उससे सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज सम्भव रहेगा। महादेवी वर्मा ने बुद्धि और हृदय के तार तो मिलाये हैं पर साधना पर वैसा ध्यान नहीं है। तभी कहते हैं कि महादेवी साधिका नहीं अराधिका है।''

परशुनाम चतुर्वेदी ने रहस्यवाद के सन्दर्भ में कहा है कि, ''रहस्यवाद एक ऐसा जीवन दर्शन है जिसका मूल आधार, किसी व्यक्ति के लिए उसकी विश्वात्मक सत्ता की अनिर्दिष्ट, निर्विशेष एकल व परम् तत्व की प्रत्यक्ष एवं अनिर्वचनीय अनुभूति में निहित रहा करता है और जिसके अनुसार किये जाने वाले उसके व्यवहार का स्वरूप स्वभावतः विश्वजनीन एवं विकासोन्मुख भी हो जा सकता है।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं-" ज्ञात के क्षेत्र में जिसे अद्वैतवाद कहते हैं, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कहलाता है ।" इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि रहस्यवाद केवल कविता का विषय है। ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता न मानना अद्वैतवाद है। आत्मा जब परमात्मा से एकाकार हो जाती है, साधक जब अपने साध्य में विलीन हो जाता है तो उसे परमात्मा अथवा ब्रह्म के अतिरिक्त क कोई प्रतीत नहीं होता।

यूनानी दार्शनिक प्लाटिनस ने कहा है कि- "Mysticism is the fight of the alone to the alone. Like is known only by like and the condition of all knowledge is that the subject should become like to the object."

प्राच्य विद्वानों ने रहस्यवाद के मूल में अध्यात्मवाद की स्पष्ट घोषणा की है तो पाश्चात्य विद्वान भी असाधारण चेतना के आधार पर परमात्मा से ही सम्बन्ध जोड़ते हैं। दोनों के साम्य के आधार पर कहा जा सकता है कि- रहस्यवाद परमतत्व की जिज्ञासा है।

रहस्यवादी को अन्तर्दृष्टि द्वारा परमतत्व का प्रातिम ज्ञान होता है जिसकी अभिव्यक्ति दार्शनिक रूप लेती है। परम तत्व की अनुभूति अनिर्वचनीय होती है जिसकी अभिव्यक्ति भाषात्मक रूप लेती है।

रहस्यवादी अपनी असाधारण चेतना के द्वारा महान सत्ता से सीधा सम्बन्ध जोड़ लेता है। जिसकी अभिव्यक्ति साधनात्मक रूप लेती है। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के मतों में वैषम्य भी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लिए काव्य में रहस्यवाद का अर्थ भावों में सच्चाई का अभाव और व्यंजना की कृत्तिमता है 'गोर्की' के लिए रहस्यवाद आत्मपूजन है तो 'फ्रायड' के लिए कुंठाग्रस्त कामवृत्ति का स्वप्निल रसभोग है। ये पूर्वाग्रह से ग्रस्त अथवा विचार-धारा विशेष से प्रेरित लगते हैं।

सामान्य रूप से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रहस्यवाद परम तत्व के प्रातिमवान एवं अनिर्वचनीय अनुभूति की दार्शनिक भावात्मक साधनात्मक अभिव्यक्ति है। रहस्यवाद परम तत्व के प्रातिम ज्ञान एवं अनिवर्चनीय अनुभूति की दार्शनिक आभात्मक साधनात्मक अभिव्यक्ति है। इस परिभाषा के आलोक में रहस्यवाद के चार मूल तत्व हो सकते हैं-

I.परम तत्व की जिज्ञासा
II.परम तत्व की अनुभूति
III..साधना की समीक्षा (परीक्षा)
IV.सिद्धि की अभिव्यक्ति

I.परम तत्व की जिज्ञासा:-

सृष्टि का जीवन एक रहस्य है जिसके मूल को जानने के लिए गंभीर व्यक्ति जिज्ञासु बन जाता है। उपनिषदकार ने प्रश्न किया है कि ''हे ब्रह्मविदमहर्षियों! इस जगत का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है ? हम लोग किससे उत्पन्न हुए हैं, किससे जी रहे हैं और किसमें हमारी सम्यक् प्रकार से स्थिति तथा किसके अधीन रहकर हम लोग सुख और दुख में निश्चित व्यवस्था के अनुसार बरत रहे हैं –

किं कारणं ब्रह्म कृतः स्म जाता
जीवाम केन क्वच सम्प्रतिष्ठा।
अधिष्ठताः केन सुसेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्याम्।।

वहीं संत कबीर के भीतर जिज्ञासा उत्पन्न हुई-

साधो, को है कहां से आयो।
तेहि के मन धौ कहां बसत है, को धौ नाच नचायो।
पावक सर्व अंग काठहि में को धौ डहक जगायो।
हो गया खाक तेज पुनि वाको कहु धौं कहां समायो।।

ऐसी जिज्ञासा ने दार्शनिक रहस्यवाद को जन्म दिया। ऐसे प्रश्नों का उत्तर साधारण बुद्धि से नहीं दिया जा सकता। प्रो. दास गुप्त ने लिखा है- मैं तो रहस्यवाद को ऐसा सिद्धांत या मत कहूंगा जो बुद्धि को परम सत्ता का स्वरूप, चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो समझने का अनुभव करने के लिए असमर्थ मानता है। किन्तु साथ ही उस तक पहुंचने के लिए किसी अन्य साधन की अभेद्यता में विश्वास रखता है। रहस्यवादी तो असाधारण बुद्धि के बल पर प्रतिम ज्ञान प्राप्त करता है जिसके चलते उसे परम तत्व की झाँकी मिलती है। ऐसे जिज्ञासु को सूफीवाद में 'साकिल' कहा जाता है और इस अवस्था को 'शरीअत' (धर्मानुसरण) कहते हैं जिसमें वृत्ति ईश्वरोन्मुख होने के कारण साधक निष्ठावान बन जाता है और गुरू की खोज कर असीम पथ का पथिक बन जाता है। इसी अवस्था में डॉ. त्रिगुणायत द्वारा संकेतित अवस्थाएँ-

(1) सत्यानुभूति के लिए तीव्र ओत्सुक्य
(2) गुरू की खोज, गुरू प्राप्ति, गुरोपदेश
(3) आध्यात्मिक जागरण की अवस्था
(4) विवेक और वैराग्य की अवस्था एवं
(5) आत्मपरिष्कार की अवस्था भी आ जाती है।

II. परम तत्व की अनुभूति- रहस्यवादी असाधारण भावुकता सम्पन्न प्राणी होता है। प्रातिम ज्ञान के बल पर परम तत्व की झांकी पाते ही उनकी पैठ दृश्यमान जगत के भीतर तक हो जाती है। वह अंतःदर्शन, अंतः श्रवण, अतःस्पर्श, अंतःरसन एवं किसी गंध का अंतःग्रहण करने लगता है। इसी तरह वह अन्तर्ज्ञान के बल अव्यक्त सत्ता से भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने लगता है तो स्थूल इन्द्रियों के ब्राह्य ज्ञान से संभव नहीं। उसके और परम सत्ता के बीच वात्सल्य अथवा दाम्पत्य भाव की अनिर्वचनीय अनुभूति होने लगती है। उपनिषद्कार ने कहा - परमात्मा का परम तत्व शुद्ध मन से ही इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत में एकमात्र पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। सब कुछ उन्हीं का स्वरूप है। यहाँ परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यहाँ विभिन्नता की झलक देखता है, वह मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जनमता-मरता रहता है।

मनसै वेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेणववश्यकत।।

सर्वव्यापी सत्ता की अनुभूति कबीर को भी हुई-

''इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजनहारा।
इस घट अंतर सात समुंदर, इसी में नौलखतारा।

इसी प्रकार श्री दूर्बलनाथ जी भी कहते हैं-

''लख लिया लेख जब, भेक धर क्या लिया।
देव और धाम, क्या तीरथ नहावे।।

अड़सठ तीरथ, घट ही में गंगा।
एक त्रिवेणी के घाट पे, बैठ नाहवे।।''

कबीर ने अपनी सहजानुभूति से साईं का पता पा लिया। उन्होंने साथ में वात्सल्य का सम्बन्ध जोड़ा-

''हरि जननी मै बालक तोरा।''

तो दाम्पत्य भाव भी कायम किया-

'हरि मोर पिव मैं राम की बहुरिया।''

यही दाम्पत्य भाव संत दुर्बलनाथ के यहाँ व्यंजित हुआ है-

अपना पीया जी से जा मिलो हेली,
सांची सुरत लगाय हेली।।
अपना पीया जी से जा मिलो हेली,
गल-गल बईयां डाल हेली।।

परम सत्ता की ज्योति से जायसी को सारी प्रकृति दीप्तिमान लगती है-

जेहि दिन दसन जोति निरमई।
बहुते जोति जोति ओहि भई।।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती।
रतन पदारथ, मानिक, मोती।।

सूफीवाद के अनुसार यह दूसरा मुकाम (विश्रामस्थल) है जहां जिज्ञासु (साकिल) प्रेम के क्षेत्र (तरीकत) में आकर अराधक (आबिद) बन जाता है। डॉ. त्रिगुणायत द्वारा संकेतित भावतिरेक की अवस्था एवं आंशिक अनुभूति की अवस्था इसी के अन्तर्गत आती है।

III- **साधना की परीक्षा**-परम् सत्ता की विश्वव्यापी झलक एवं अनिवर्चनीय अनुभूति पाकर अराधक साधक बन जाता है जिससे साधनात्मक रहस्यवाद की सृष्टि होती है। सिद्ध सरहप्प ने मंत्र-तंत्र, ध्यान-धारण को भ्रम का कारण बताया-

मन्त ण तन्त धेअ ण धारण।
सब्वं वि रे बढ़! विब्भम कारण्ज्ञं

उन्होंने अपने आपको जानने के लिए अन्तर्साधना पर बल दिया-

जाव ण आप जणिज्जई, ताप ण सिस्स करेई।
अन्धां अन्ध कढाव ति, वेणा वि कूव पडेई।।

इसी काया गढ़ में ही ब्रह्म का प्रणित सम्भव है। इसके लिए गोरखनाथ ने आत्म संयम आत्मसाधना का विधान किया है। उनकी साधना प्रणाली में मन की महान शक्तियों को जगाना आवश्यक है। वे कहते है-यही मन शिव है, यही मन शक्ति है, यही मन पंच तत्वों से निर्मित जीव है। मन का अधिष्ठान भी शिवतत्व परमब्रह्म ही है। माया शक्ति के संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है और मन से ही पंचभूतात्मक शरीर सृष्टि होती है। इसलिए मन का बहुत बड़ा महत्व है। मन को लेकर अन्य अवस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है। वह तीनों लोकों की बाते कह सकता है। मन को ब्रह्मनुभूति के लिए तैयार करने के लिए मनःशुद्धि और निग्रह की साधना पेहले आती है। इसके लिए प्राणायाम का विधान है।

''यह मन सकती यहु मन सीव।
यहु मन पांच तत्व का जीव।।
यहु मन ले जै उनमन रह।
तो तीन लोक की बातां कहै।।''

शुन्य साधक कबीरदास हद्द को पार कर बेहद् तक पहुंचे थे और शुन्य सरोवर में स्नान कर उस महल में विश्राम कर सके जिसमें मुनिजन भी नहीं पहुंच सके-

हद्द छाँडि बेहद्द गया किया सुन स्नान।
मुनिजन महल न पावई वहां किया विश्राम।।

ऐसे ही विचार दुर्बलनाथ जी ने इस भजन में व्यक्त किये है-

अजर अमर घर दूर पुरूष का, आप ही आप हजूर हो।
वेद कुरान की गम नहीं पहुंचे, ऐसा अगम अपार हो।।
काजी ब्राह्मण हेरत-हेरत कोई न पाया पार हो।
सुनी जन मुनी जन और ओलिया सब ही उरले वार हो।।

कबीर की आत्मा में एक विरहिणी की पुकार है-

ऋतु फागुन नियरानी हो
कोई पिया से मिलावे।

मिलने की अभिलाषा यहाँ भी है-

''चलो न भोली नणदिया, पीया जी के देश हेली।
वा बंगला में सत पुरूष है, बैठा आप हजूर हेली।।

रहस्यवादी कवियों की विरह साधना में विरह की व्याकुलता के साथ मिलन की आशा सुफीवाद के अनुसार संयम त्याग, धैर्य एवं ईश्वर-विश्वास के कारण मारफत की स्थिति प्राप्त होती है जिसमें साधक आरिफ कहा जाता है जबकि उसका अन्तःकरण ज्ञान की ज्योति से जगमगाने लगता है।

कुमारी अण्डरहिल के अनुसार यह अवस्था साधना के विघ्न -The dark night of the soul की अवस्था है जिसमें साधक की परीक्षा होती है। डॉ. त्रिगुणायत के द्वारा संकेतित विघ्न और उनके युद्ध की अवस्था, विरहावस्था एवं आत्मसमर्पण की अवस्था इसी के अन्तर्गत आती है।

IV- **सिद्धि की अभिव्यक्ति**-साधना की परीक्षा के बाद सिद्धि की प्राप्ति होती है जिसमें मिलन एवं पूर्णता की आनन्दानुभूति है। इस स्थिति को प्राप्त करने पर सिद्ध कण्हपा ने कहा-

निश्चल निर्विकल्प निर्विकार।
उदय अस्त मन रहित सु-सार।
ऐसो सो निर्वाण भनिज्जै।
जहं मन-मानस कछुअ न किज्जै।।

वह निश्चल है, निर्विकल्प है, निर्विकार है, उदयअस्त उसे नहीं। जो ऐसा है, उसे ही निर्वाण कहा जा सकता है। वहां तक पहुंचकर मन को कुछ करना नहीं रह जाता, वह निष्क्रय बन जाता है। नाथ सम्प्रदाय का साधक शिव और शक्ति की ज्योति में लीन होकर असंप्रज्ञात समाधि का अधिकारी होकर केवल मोक्ष प्राप्त करता है। साधक कबीर भी जीवनमुक्त हुआ-

उलटि समाना आप में, प्रगटी ज्योति अनंत।
साहेब सेवक एक संग खेलें सदा बसंत।।
जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचातान।
उलटि समाना आप में, हुआ ब्रह्म समान।।

जायसी के प्रेम-साधक को भी यह सिद्धि प्राप्त हुई-

बूंद समुद्र लस होई मेरा। गा हिराई अस मिलै न हेरा।।
रंगहि पान मिला जस होई। आवहि खोय रहा होई सोई।।

सूफी साधक के अनुसार इस चौथे मुकाम में हकीकत (पूर्णता) की स्थिति प्राप्त हो जाती है जिसमें उसकी सारी इच्छाएं शांत हो जाती है। यहां तक कि ज्ञान की इच्छा भी नहीं रहती-रूह फना हो जाती है। डॉ. त्रिगुणायत द्वारा संकेतित मिलन की पूर्णावस्था, पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था तादात्म्य की अवस्था इसके अन्तर्गत आ जाती है। शंकराचार्य ने उपनिषद ब्रह्मसूत्रा और गीता पर भाष्य लिखकर तीनों की उक्तियों में सामंजस्य स्थापित किया है। केवल ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव भी ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं-

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जोवो ब्रह्मौण ना पर।'

शंकराचार्य का ब्रह्म निर्विकल्प, निरूपाधि निराकार, निर्गुण एवं

निर्विकार है वह जगत का कारण, ज्ञान स्वरूप अखण्ड एवं सच्चिदानन्द रूप है। यही ब्रह्म मायासहित होने पर समुण ब्रह्म हो जाता है। माया के कारण ही निर्विशेष ब्रह्म से सविशेष जगत् की उत्पत्ति होती है। यह माया सत, असत् विलक्षण एवं अनिर्वचनीय है। इन्द्रियों का स्वामी एवं कर्मफल का भोक्ता आत्मा ही जीव है। नित्य एवं अजन्मा आत्मा ब्रह्म से स्वभावतः ऐक्य होने के कारण चैतन्य स्वरूप भी है। वह विभु ही है अणु नहीं। बहिर्मुखी होने पर जीव जड़ोन्मुख अर्थात् संसारोन्मुख तथा अन्तर्मुखी होने पर ईश्वरोन्मुख होता है। परमार्थिक अर्थ में शंकर अद्वैतवादी हैं और आत्मोपलब्धि के लिए केवल ज्ञानमार्ग को स्वीकार करते हैं। संत कवियों के ऊपर अद्वैतवाद का पूरा प्रभाव है। कबीर का ईश्वर एक है-

मेरा साहब एक है दूजा का न जाय।
साहिब दूजा जो कहूं साहब खरा रिसाय।।

वह अरूप और निराकार है-

आप अखय पुरूष है, नहीं देह आकार।
निज सत रूप अरूप है, ''दुर्बलनाथ'' निराधार।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है-''अद्वैतवाद के मूल में एक दार्शनिक सिद्धान्त है, कवि कल्पना या भावना नहीं। वह मनुष्य के बुद्धि प्रयास या सत्य चिन्तन का फल है। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खडी होती है तब उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।''

दादू कहते है-

तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कंत।
तेज पुंज की सेज पर, दादू बन्या बसंत।।

कबीर ने अजर पुरूष को अमरलोक में पाया-

सदा बसंत होत तेहि हाऊं।
संशयरहित अमरपुर गाऊं।।
जहंबा रोग सोग नहिं कोई।
सदा अनंद करै सब कोई।।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे 'सब-पा-लिया है' का बतलाया है। ''अहा सब पा लिया है कि के देश के रास्ते में ठेलमठेल और धक्का-मुक्की नहीं है और बाजार में यहां शोरगुल नहीं है। रास्ते की धूल नहीं झाड दे, बोझा उतार दे, अपने सितार के तार ठीक कर ले और अपनी सारी खोज यहीं बन्द कर दे (क्योंकि तू अब अपने गन्तव्य पर पहुंच चुका है) आज सांझ को यहीं पैर फैलाकर बैठ जा,-यहीं इस तारा भरे आकाश के नीचे, सब पा लिया है के देश में।''

कबीर के उस अमर पुर में-शब्द मिलावा होय रहा, देह मिलावा नाहिं-व्यक्त भगवान से एकमेक होकर भी पृथक सत्ता रखकर मिलन के आनन्द का अनुभव करता है। यह उसका अलौकिक द्वैताद्वैत विलक्षण भाव है, अद्वैत में मात्र विलयन नहीं। शंकर के अद्वैतवाद में आत्मा का विलयन परमात्मा में हो जाता है।

****

सन्दर्भः-

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942 कबीर, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, पृ. 203, 237, 354
2. Mahendra Noth sarlcar, Hindu myticism P.-21
3. Platinus & Pour firuly, Mysticism in English literateune P.4
4. संत दुर्बल नाथ, 1986, अनुभव आतम प्रकाश, अखिल भारतीय संत श्री दुर्बल नाथ प्रचार समिति बाँदीकुंई, पृ.122,146, 218,247, 262
5. पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, सं. 1999, गोरख बाणी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृ.18
6. वियोगी हरि सन्त सुधासागर,, दिल्ली पृ. 68,463
7. नाथ सिद्धों की बानिया, स. हजारी प्रसाद द्विवेदी (वाराणसी: ना.प्र. सभा 2014),पृ.138
8. सन्त काव्य में रहस्यवाद, डॉ. रामषीष प्रसाद पृ.18,82
9. सूफी काव्य संग्रह, परषुराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद, 1952 पृ,52,88
10. जायसी ग्रन्थावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पद-107

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों की 'कथा-संरचना'

विनय कुमार यादव
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार।
मो.09455296429

आरंभ से ही कथा का मूल रूप 'कथा सुनने' का था, बाद में प्रेस के आविष्कार के साथ इसके मूल स्वभाव में परिवर्तन आया। संरचना का सामान्य अर्थ ढाँचा होता है। कथा-संरचना का मतलब होता है- कहानी को प्रस्तुत करने का तरीका। कथा-संरचना से आशय कहानी की सामग्री और कहानी को प्रस्तुत किये जाने वाले रूप से है। कथाकार जिस प्रकार से चाहता है उसी प्रकार से कहानी की कथा-संरचना को प्रस्तुत करता है। कोई भी कहानीकार प्रसंग, घटना, परिवेश, पात्र, कथोपकथन, भाषा-शैली आदि के अनुसार कथा-संरचना का निर्माण करता है। कथा-संरचना का आशय है- कथा की बुनावट। कथ्य और रूप की योजना ही कथा-संरचना कहलाती है। कथा की बुनावट के अंतर्गत कहानी का शीर्षक, पात्रों का चयन, परिवेश का चयन, भाषा का चयन, कथा के अंदर की घटना, प्रसंग आदि सम्मिलित होते हैं। इन सभी तत्त्वों के संयोजन से कथा-संरचना का निर्माण होता है। अलग-अलग कथाकारों की अलग-अलग कथा-संरचना हो सकती है। कथा-संरचना के विषय में शंभु गुप्त का कथन है कि "हर कहानी अपने कथ्य और रूप में, अपनी वस्तु और उसकी संरचना में दूसरी से भिन्न और अलग होती है। न केवल हर लेखक की अपितु एक ही लेखक की हर कहानी उसकी दूसरी कहानियों से भिन्न और अलग होती है।" किसी लेखक का अनुभव, उसका परिवेश, उसकी वैचारिकी, उसकी भाषा आदि कथा-संरचना की निर्मिति को प्रभावित करता है। कथा संरचना एक साहित्यिक तकनीक है, जो कथा-कहानी को प्रस्तुत करने के ढंग को दर्शाता है। कहानी के घटनात्मक स्वरूप और चरित्र पर बात करें तो कहानी का ढाँचा निरंतर बदल रहा है।

हिन्दी कहानी की कथा-संरचना में जीवन परिस्थितियों के अनुरूप निरंतर बदलाव होता रहा है। इसी बदलाव के अनुरूप युग, परिस्थितियाँ, अनुभव, संवाद, पात्र, कथानक आदि कथा-संरचना को अलग बनाते हैं। इसी बदलाव के क्रम में दलित साहित्य का विकास हुआ। दलित कथाकार के जीवनानुभव व परिस्थितियाँ अलग होने के कारण उनकी कथा-संरचना भी अलग है। हिन्दी दलित कहानी की कथा-संरचना में दलित जीवन के यथार्थ का चित्रण हुआ है। इनकी कहानियों में ईश्वर का नकार, भूत-प्रेत में अविश्वास, पुनर्जन्म में अविश्वास, ब्राह्मणवाद का विरोध, बुद्ध, कबीर, फुले, साहू, अंबेडकर के विचारों का अंगीकार, सहानुभूति के बरक्स स्वानुभूति को अधिक महत्त्व दिया गया है।

हिन्दी दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम प्रमुख है। इनके कहानी-संग्रह 'सलाम' (2000), 'घुसपैठिये' (2003) और 'छतरी' (2013) है। कथाकार अपनी कहानियों में परिवेश, घटना, प्रसंग, पात्र, संवाद, भाषा आदि का निर्माण अपने अनुभव के आधार पर प्रस्तुत करता है। दलित कहानीकारों की जीवन परिस्थितियाँ अलग रही हैं। इसीलिए कथा-संरचना में परिवेश, पात्र, वातावरण, संवाद, उद्देश्य आदि अलग ढंग से प्रस्तुत होते हैं। कथाकार कल्पना-शक्ति के द्वारा यथार्थ की घटनाओं को रचनात्मक बनाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कहानियों में अपने जीवनानुभव को कथा-संरचना में निरूपित करते हैं। इनके बारे में सुशीला टाकभौरे का कथन है कि "दलित होने की पीड़ा आपने बचपन से ही भोगी है, जो जीवन पर्यंत साथ रही। यही पीड़ा आपके लेखन को ऊर्जा प्रदान देती रही। आपका लेखन मनोरंजन का लेखन नहीं, बल्कि दलित पिछड़े वर्ग को चेतनाशील बनाने वाला लेखन है।" वे दलितों की बदली हुई जीवन परिस्थिति में कहानी की कथा-संरचना को लेकर आते हैं। कथाकार कहानी लिखने के लिए एक विषय को चुनता है और उसका ढाँचा बनाता है, वह उसी के अनुसार पात्रों, परिवेश, घटना का चयन, संवाद का चयन, उद्देश्य आदि का चुनाव करता है। कथाकार के जीवनानुभव और परिस्थिति के अनुसार कथा-संरचना प्रभावित होती है। दलित कथाकार के पास अपनी स्मृतियाँ हैं। उनके पूर्वजों ने उन जातिगत भेदभाव को झेला है। वर्तमान में भी दलित उत्पीड़न बना हुआ है। हालांकि इसके स्वरूप बदले हुए हैं। दलित कथाकारों को जातिगत भेदभाव की स्मृतियाँ झकझोरती हैं। इन्हीं स्मृतियों को कथाकार परिस्थितियों का आकलन व मूल्यांकन कर कहानी को कल्पना के माध्यम से यथार्थपरक बनाता है।

विषय वस्तु का चयन- कथाकार कल्पना, विचार आदि मूल तत्व को आधार मानकर कौशलपूर्ण रचना करता है। दलित कहानीकार दलित जीवन के संघर्ष, उत्पीड़न, जातिगत शोषण आदि अपने निजी अनुभव के आधार पर विषय-वस्तु का चयन करता है। किसी भी कहानी की विषय-वस्तु के चुनाव में रचनाकार की तत्कालीन परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित जीवन की परिस्थितियों का गहन आकलन व मूल्यांकन करके विषय-वस्तु का चुनाव करते हैं। इनकी कहानी 'सलाम' में 'सलाम प्रथा' को रेखांकित किया गया है, साथ ही जातिप्रथा, वर्चस्व, असमानता, शोषण, स्पृश्यता आदि को चित्रित किया गया है। इन्होंने कहानी के एक-एक शब्द का अनुभव किया है। 'कहाँ जाए सतीश ?' कहानी में सतीश के माता-पिता अपने बेटे को खोजते-खोजते मिसेज पंत के घर जाते हैं, जिससे मिसेज पंत को सतीश की जाति मालूम हो जाती है। जाति मालूम होने पर मिसेज पंत को जाति के नाम पर उलटी आने लगती है। ऐसे ही वजहों से दलित बच्चे अपनी जाति छुपाकर कमरा लेते हैं। व्यक्ति का स्वभाव अच्छा रहते हुए भी बुरा हो गया। शिक्षण संस्थानों में जातिगत भेदभाव के कारण परेशान छात्र अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं। इन छात्रों को जाति के नाम पर इतना परेशान किया जाता है जिससे वह ऐसे कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

शिक्षण संस्थानों में दलित छात्रों को सवर्ण विद्यार्थी और प्रोफेसर द्वारा परेशान किया जाता है। 'घुसपैठिये' कहानी इसी विषय-वस्तु पर लिखी गई है। भेदभाव-उत्पीड़न की वजह से सुभाष सोनकर नामक छात्र को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह कहानी किसी एक सुभाष सोनकर छात्र की नहीं है। आज भी स्थिति ज्यादा नहीं बदली हैं, रोहित वेमुला, पायल तड़वी जैसे अनेक छात्रों को शिक्षण संस्थान में जातिगत भेदभाव के कारण आत्महत्या करनी पड़ी। शिक्षण संस्थानों द्वारा दलित छात्रों को घुसपैठिये समझा जाता है। कथाकार ने दलित उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को कथा योजना में समाहित किया है। वह अपने जीवन अनुभव, परिस्थिति, शिक्षा आदि से पैदा हुई समझ से कथा का ढाँचा बनाता है जिससे दलित कहानी की कथा-संरचना स्पष्ट होती है। कोई भी कहानीकार अपनी विषय-वस्तु व उद्देश्य को लक्ष्यकर कहानी को चुनता है। ऐसे में दलित कहानीकारों का साफ लक्ष्य भारतीय सामाजिक संरचना में उपस्थिति जातिगत उत्पीड़न और ब्राहमणवादी

शोषण के अनगिनत आयामों को उनकी समूची संरचना को सामने लाना है।

परिवेश की निर्मिति- दलित कथाकार परिवेश के अंतर्गत पात्रों की क्रियाओं को रेखांकित करता है। साथ ही वह पात्रों के तनावपूर्ण व सौहार्दपूर्ण व्यवहारों को चित्रित करता है। इसके अंतर्गत वह सामाजिक आचार विचार, सांस्कृतिक परंपराओं, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का चित्रण किया जाता है। इस विषय में डॉ. चैनसिंह मीणा का कथन है कि "दलित समाज का परिवेश, वातावरण, रहना-सहन, वेशभूषा, खान -पान इत्यादि मुख्यधारा के व्यक्ति के लिए असह्य रहा है। मुख्यधारा निरंतर दलित समाज के परिवेश से अपने को दूर रखने का प्रयास करती रही है। वर्चस्ववादी समाज निरंतर प्रयास करता है कि दलित समाज अमानवीय परिवेश में रहे, उसके पास दूसरा विकल्प न हो।" दलितों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को दलित कहानियों में देखा जा सकता है। 'सलाम' कहानी में सामाजिक सांस्कृतिक यथार्थ की वास्तविकता को विवाह प्रसंग के माध्यम से रेखांकित किया है। हरीश की शादी में बारातियों को स्कूल की चाभी, नल का पानी आदि का न मिलना दलितों की सामाजिक स्थिति को दर्शाता है। कमल उपाध्याय को दलित समझकर चाय न देना यह दलितों की गाँव में वास्तविक स्थिति को रेखांकित करता है। 'सलाम रस्म' को दलितों द्वारा सदियों से निभाया जा रहा है, जो कहानी के केंद्र में है। दीपू द्वारा मुसलमान के हाथ से बना खाना खाने से इनकार कर देना असमानता व छुआछूत के अन्य संदर्भों को दर्शाता है। कहानी में स्पष्ट व्यक्त किया गया कि 'जुम्मन की घरवाली जिन परिवारों में काम करती थी, उनमें अधिकतर रांघड़ थे। गाँव-देहात के नियम-कायदे के हिसाब से हरीश 'सलाम' के लिए विदाई से पहले रांघड़ों के दरवाजे पर जाना था। यह एक रस्म थी जिसे सदियों से निभाया जा रहा था।' इस रस्म में दलितों का सम्मान सवर्णों के हाथों था, जिसका निर्वहन दलितों को करना पड़ता था। जुम्मन कहते हैं कि "दामाद हो या नई-नवेली दुल्हन सलाम के लिए घर -घर जाने का रिवाज है, जो हमने नहीं पुरखों ने बनाया था। जिसे इस तरह छोड़ देना ठीक नहीं है। गाँव में रहना है। दस जरूरतें हैं।" ओमप्रकाश वाल्मीकि के संबंध में राहुल सिंह कहते हैं कि "ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ दलित चेतना से अनुप्राणित होने के बावजूद बुनियादी मानवाधिकारों की कहानियाँ भी हैं। एक मनुष्य के बुनियादी आत्मगौरव और आत्मसम्मान को पुनर्स्थापित करने की अर्जी लगाती हुई कहानियाँ हैं। जाति के सवाल को पूरी गंभीरता से उठाती कहानियाँ हैं। जातिगत अपमान के भय से मुक्ति का आह्वान करती कहानियाँ हैं। पलायन की नहीं संघर्ष की कहानियाँ हैं।" ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने जीवन अनुभव को अपनी रचना में फिर से अनुभव किया है। गाँव और मंदिर के अलावा शिक्षण संस्थानों जैसी जगहों पर हो रहे जातिगत भेदभाव का चित्रण किया जाता है। जिसको 'गोहत्या' कहानी में प्रस्तुत उदाहरण को देखा जा सकता है। "अगले दिन पंचायत बैठी, मंदिर के चबूतरे पर। मुखिया, सरपंच, पंचायत के दूसरे सदस्य। मामला गोहत्या का था। इसलिए समूचा गाँव इकट्ठा हो गया। बामन-राजपूत चबूतरे पर बैठे थे। चमार, मेहतर, नाई, धोबी, कहार सब चबूतरे के नीचे। पंडित रामसरन, मुखिया जी के बराबर में बैठा हुआ था। वह धुला हुआ रामनामी ओढ़कर आया था। माथे पर लंबा-सा टीका दूर से ही दिखाई पड़ रहा था।" इससे पूरे गाँव की सामाजिक संरचना का पता चल जाती है। दलित किसी सवर्ण के बराबर नहीं बैठ सकता था। पंडित रामसरन पूर्ण तरीके से न्याय करने के लिए आए थे। ऐसे समय में सुक्का को न्याय मिलना है। समाज में व्याप्त गैर-बराबरी के ढाँचे को यहाँ चित्रित किया गया है और समाज की सामंती व्यवस्था को रेखांकित किया गया। यहाँ कहानियों में दलित से दलित और दलित से सवर्ण या अन्य समाज के परिवेश को रेखांकित किया गया है।

पात्रों का चयन- कथाकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पात्रों का चयन करता है। कहानी के पात्रों के चयन के विषय में जाफ़र रजा का कथन है कि "कहानी के संक्षिप्त क्षेत्र में जीवन के सभी सत्य को नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके विभिन्न एवं पहलुओं की ओर कुछ संकेत ही संभव होते हैं, जिनमें किसी विशेष घटना, प्रभाव या भावना को उजागर करने के लिए पात्रों से सहारा ली जाती है।" दलित कहानीकार पात्रों का चयन करने में बहुत सावधानी बरतते हैं, उनका दलित पात्र गरीब भले हो सकता है लेकिन वह संघर्ष, जिजीविषा, प्रतिकार करते हुए दिखाई पड़ेगा। इनकी कहानियों के पात्रों में गरीब, अमीर, दलित, ब्राहमण, शोषक, शोषित आदि होते हैं। इन्होंने पात्रों की संख्या को सीमित रखा है। वे पात्रों द्वारा व्यवहार, घटना, संवाद, स्थिति आदि को यथा स्थिति प्रयोग के कारण कहानी को प्रभावी बनाते हैं। इनकी कहानी 'सलाम' में हरीश का मित्र कमल उपाध्याय जातिगत भेदभाव को नहीं मानते हैं, जिसके कारण कमल उपाध्याय जातिगत भेदभाव से संबंधित समाचार-पत्रों की खबरों को झूठ मानता है। कहानी में कमल उपाध्याय को दलित समझकर दुकानदार चाय देने मना कर देता है। जिससे कमल को दलितों की तरह जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। हरीश पढ़ा-लिखा लड़का है, वह सलाम पर जाने से मना कर देता है। यहाँ दलित पात्र जातीय भेदभाव और हिंसा नहीं करते हैं, बल्कि वह अपने बचाव में प्रतिकार करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित जातियों में होने वाली असमानता को अपनी कहानियों में रेखांकित किया गया है। दीपू नामक पात्र मुसलमान के हाथ की बनी रोटी को खाने से इनकार कर देता है। गाँव के लोग दूल्हा-दुल्हन को सलाम रस्म पर जाने के लिए धमकी देते हैं। 'गोहत्या' कहानी में सुक्का अपनी नई-नवेली पत्नी को मुखिया के यहाँ भेजने से मना कर देता है। सुक्का का यह प्रतिकार मुखिया को बुरा लगता है। 'अम्मा' कहानी में अम्मा पात्र अपने बच्चों की शिक्षा पर अधिक बल देती हैं ताकि उनके बच्चों को इस तरह मैला उठाने का काम न करना पड़े। ओमप्रकाश वाल्मीकि के केन्द्रीय पात्र दलित जीवन से आते हैं। यहाँ कोई लैंगिक भेद नहीं दिखता है कि सिर्फ पुरुष पात्र ही केन्द्रीय पात्र हो, 'अम्मा' कहानी इसका उदाहरण है। हालांकि गैर दलित समाज से आने वाले पात्र भी इनकी कहानियाँ में आते हैं। सवर्ण पात्रों का अंकन इनकी कहानियों में बड़ी सतर्कता से किया गया है। शहरी मध्यवर्गीय पात्र, ठेठ देहाती जीवन के पात्र, कस्बे, महानगरीय जीवन के पात्र यहाँ मौजूद हैं। वे वर्ग, जाति एवं लिंग के गहरे अंतरविरोधों को अपनी कहानियों में लाते हैं।

घटनाओं की निर्मिति- किसी भी कहानी में घटना कार्य-कारण संबंधों पर निर्भर करती है। कथा को आगे बढ़ाने में उसके उद्देश्य तक ले जाने में घटना एक चालक की भूमिका में होती है। इसके बिना कोई भी कहानी आगे नहीं बढ़ सकती। कोई भी कथाकार घटनाओं की निर्मिति के जरिए ही कहानी को आगे बढ़ाता है। इसके लिए वह अपने अनुरूप घटना का चयन करता है। यह भी कहा जा सकता है कि कथाकार अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कथा में घटनाओं की योजना करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'गौकशी' कहानी में सिपाही ट्रक की चेकिंग कर रहा था। इधर कुछ युवक यातायात के नियम का उल्लंघन कर रहे थे इसके बावजूद पुलिस कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रही थी। "इधर पुलिस की वर्दी गाँव के गरीब, बेरोजगार युवकों को अपनी ताकत दिखा रही थी दूसरी ओर छाहर की ओर से आती तीन मोटर सायकिलों पर सवार नौ युवा वहाँ से गुजर, एक-एक बाईक पर तीन-तीन सवार, वह भी सौ किलोमीटर की गति से लेकिन सिपाही उनकी तरफ देखा तक नहीं।" इन युवकों को सरकार और पुलिस ने हिन्दुत्व के नाम छूट दे रखी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' की हरीश द्वारा सलाम रस्म को मानने से इनकार कर देना, प्रमुख घटना है जिसको मानने के लिए

बल्लू राघड़ बाध्य करता है। समाचार-पत्रों में छुपी जातिगत भेदभाव की घटना को कमल उपाध्याय सच नहीं मानता था, यह कथाकार की ताकत है कि दलितों ऊपर घटने वाली घटना कमल के साथ करा देता है। जिससे कमल उपध्याय को जातिगत भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। हरीश शहर में रहकर पढ़ाई करने कारण प्रतिरोध कर पाता है। उसे शिक्षा के कारण समानता का अधिकार मालूम है। तभी वह उस सलाम रस्म को नहीं मानता है, उससे रस्म के दौरान मिलने वाले उपहार को लेने से मना कर देता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित जीवन की परिस्थितियों को बहुत सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। वह दलित समाज में व्याप्त असमानता की खाई को चित्रित करते हैं। उनका मानना है कि इन असमानताओं को दूर करके ही दलित समाज आगे बढ़ सकता है। इसी वर्ण्य-विषय को लेकर 'शवयात्रा' कहानी लिखी गई है। दलित जातियों में चमारों के द्वारा बल्हारों को अछूत माना जाता है। कहानी में यह प्रसंग आता है कि "कल्लू से कल्लन हो जाने को वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उनकी दृष्टि में वह अभी भी बल्हार ही था, समाज-व्यवस्था में सबसे नीचे यानी अछूतों में भी अछूत।" जब गाँव में बाबा साहब अंबेडकर और रविदास जयंती मनायी जाती थी, तो उस अवसर पर समानता की बड़ी-बड़ी बातें की जाती थीं, जिसका वास्तविक धरातल से कुछ भी लेना-देना नहीं था। सूरजा को बल्हार होने के कारण घर का निर्माण नहीं करने दिया जाता है। कल्लन जब से शहर में रहने लगा, तब से उसका रहन-सहन और बोलचाल बदल गया। इस बात से चमार खुश नहीं थे। जब भी वह गाँव आता, चमार उसे अजीब-सी नजरों से देखते थे। कल्लू से कल्लन हो जाना वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे।

संयोग की निर्मिति- वह कार्य जो बिना योजना के हो जाए वह संयोग होता है। कथा योजना में संयोग की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कथाकार द्वारा कहानी में संयोग की निर्मिति कुशलतापूर्वक की जाती है। यह घटनाओं की तरह कार्य कारण संबंध पर निर्भर नहीं करती। यह कहानी में अनायास आ जाती है। ऐसा कहा जा सकता है कि कथाकार उसे सचेतन लाता है ताकि कहानी को एक मोड़ दिया जा सके। संयोग की यह पूर्व शर्त है कि इसके होने या घटने का कोई पूर्व कारण कहानी में न हो| इन सबके बावजूद वह कहानी की धूरी होती है। जिसके बिना कहानी आगे नहीं बढ़ सकेती। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में संयोग की निर्मिति हुई है। उनकी कहानी 'सलाम' में कई संयोगों की निर्मिति हुई है। कमल उपाध्याय और हरीश मित्र हैं, दोनों में आत्मीय लगाव है। इसीलिए कमल शादी में हरीश के साथ-साथ रहता है। जुम्मन की बेटी अपने पिता के साथ ऋषिकेश में रहने के कारण हाईस्कूल की परीक्षा पास कर पाई। यह गाँव की पहली लड़की थी, जिसने हाई स्कूल की परीक्षा पास किया था। 'ग्रहण' कहानी में स्पष्ट है कि "बहू ने उसे खींचकर फर्श पर लिटा दिया। अंधेरी कोठारी में लालटेन की मद्धिम लौ काँपने लगी। और दो जिस्म समय की माँग में सिंदूर भरने लगे।" यह बहू और बिरम का मिलन एक संयोग है। जिसके उपरांत बहू को बच्चा हुआ। इस प्रकार से इनकी अन्य कहानियों में संयोग को देखा जा सकता है।

वैचारिक प्रेरणा-हिन्दी दलित कहानी शिक्षा, प्रतिरोध, आत्मविश्वास, समता, लोकतंत्र, मानवीय आदि के विचारों को लेकर आगे बढ़ी है जिस पर दलित लेखन महात्मा जोतिबा फुले और डॉ. बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के वैचारिकी का प्रभाव है। कहानीकार अपनी रचना में अपने जीवन अनुभव को प्रस्तुत करता है। कथाकार अपनी वैचारिकी व्यक्त करने के लिए कहानियों का सहारा लेता है। कोई कहानीकार अपनी बात को अभिधा में ही नहीं कहता है, बल्कि वह लक्षणा का भी सहारा लेता है। इसके लिए वह अपने अनुसार कथा-संरचना बनाता है। वह अपने अनुसार पात्र, परिवेश, संवाद, कथानक आदि का निर्माण करता है। दलित कथाकार का पात्र कभी कमजोर नहीं दिखाई पड़ेगा, वह हमेशा मजबूत दिखाई पड़ता है। यह शिक्षा के कारण है। 'यह अंत नहीं' कहानी को देखा जा सकता है। "तमाम अभावों के बावजूद मंगलू ने किसन को कालेज की पढ़ाई के लिए शहर भेजा था। महीने-दो महीने में किसान और उसकी मित्र मंडली गाँव आते थे। शहर के खुले माहौल ने किसान की सोच और मानसिकता को प्रभावित किया था।" इस शिक्षा के कारण किसन लड़ने के लिए तत्पर होता है। उन्होंने शिक्षा ग्रहण करने में होने वाली बाधाओं को अपनी कथा में उल्लेख किया है। 'छतरी' कहानी में शिक्षा ग्रहण करने आर्थिक अभाव को देखा जा सकता है। "उस जुमे को बापू अपनी दिहाड़ी पर जाने के बजाय, मुझे साथ लेकर शौकत चाचा की दुकान पर गए थे। दरअसल हफ़्ता भर पहले स्कूल से लौटे हुए तेज बारिश में, मेरी किताबें और कापियाँ बुरी तरह भीग गयी थी। इस बात से बापू दुखी थे।" बापू को इस बात की चिंता हुई जिसके कारण छतरी बनवाने के लिए शौकत चाचा के पास चल गए। दलित पात्र अपने हक व अधिकार के लिए विद्रोह करता है। कथाकार अपने विचार को प्रस्तुत करने के लिए कहानियों का सहारा लेकर घटनाओं को जीवंत बनाता है।

निष्कर्ष-कहानी विधा में प्रतिरोध का स्वर अपेक्षाकृत अधिक धारदार और मुखर होता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों की कथा-संरचना में विषय-वस्तु का चयन, पात्रों का चयन, परिवेश, संयोग, घटना की निर्मिति आदि से अलग हुआ है। जिसमें पात्र कमजोर नहीं है, बल्कि किसी न किसी रूप में प्रतिकार करते हैं। उनके एक-एक शब्द में जीवन अनुभव है, जो उनकी कहानियों में दिखाई पड़ता है। इनकी कहानियों में छुआछूत की समस्या, आरक्षण, दलित जाति में असमानता, ईश्वर का नकार, मजदरी की समस्या, शोषण, सामंतवाद आदि विषय-वस्तु को प्रस्तुत किया गया है। दलित कहानीकारों का जीवन अनुभव अलग होने के कारण कथा संरचना भी अलग होती है। उन्होंने अपनी कहानी की कथा-संरचना में शिक्षा और समानता के अलावा अन्य विषयों पर बल दिया है।

****

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. शंभु गुप्त, कहानी वस्तु और अंतर्वस्तु, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ-13
2.सं. कैलाश चंद चौहान, कदम पत्रिका, नवंबर-दिसंबर, 2013, जनवरी 2014, पृष्ठ-08
3.डॉ. चैनसिंह मीणा, हिन्दी दलित कविता की रचना प्रक्रिया, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ-36
4.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2016, पृष्ठ-16
5.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2016, पृष्ठ-16-17
6.राहुल सिंह, हिन्दी कहानी : अंतर्वस्तु का शिल्प, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ-92
7.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2016, पृष्ठ-16
8.जाफ़र रजा, प्रेमचन्द : कहानी का रहनुमा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण -2008, पृष्ठ-34
9.ओमप्रकाश वाल्मीकि, छतरी (कहानी-संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-2018, पृष्ठ-49
10.ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ-36
11.ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ-36
12.रमणिका गुप्ता, दलित चेतना:साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, समीक्षा पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण-2011, पृष्ठ-100
13.ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2016, पृष्ठ-69
14.ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये (कहानी-संग्रह), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ-21
15.ओमप्रकाश वाल्मीकि, छतरी (कहानी-संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण-2018, पृष्ठ-13

अन्नाभाऊ साठे के साहित्य की नायिका और उनका संघर्ष

डॉ.मिलींद रामचंद्र घाटे
सहायक प्राध्यापक
समाजशास्त्र विभाग
हिस्लॉप कॉलेज, नागपूर Mob. 9960381754

जीवन परिचय:- 1 अगस्त 1920 को अन्नाभाऊ का जन्म दिवस है और इस दिन पूरे महाराष्ट्र में संपूर्ण मातंग समुदाय और बौद्ध समुदाय द्वारा अन्नाभाऊ की जयंती मनाई जाती है और हम भी अन्नाभाऊ की 103वीं जयंती मना रहे हैं। अन्नाभाऊ का बचपन कठिन था, लेकिन अपनी बौद्धिक क्षमता के बल पर उन्होंने मराठी साहित्य जगत में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई। अन्नाभाऊ की जीवन यात्रा पर नजर डालें तो उन्होंने कई उपन्यास, कविताएं, नाटक, कहानियां आदि लिखीं। उन्होंने लिखा और मराठी साहित्य को एक नई दिशा दी। अन्नाभाऊ ने मराठी साहित्य को एक अलग मोड़ दिया। अन्नाभाऊ ने तत्कालीन या समकालीन साहित्यकारों की दंभपूर्ण, मध्यवर्गीय अलौकिकता और कल्पना को एक यथार्थवादी जीवन और वास्तविक भावनात्मक दुनिया में प्रतिबिंबित किया। अन्नाभाऊ ने श्रमिक, मध्यम वर्ग, मजदूर और आम आदमी को मराठी साहित्य के केंद्र में ला दिया। अन्नाभाऊ ने उन नायकों और नायिकाओं का ईमानदारी से चित्रण किया है जिन्होंने गरीबों, श्रमिकों और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए समाज के कल्याण के लिए अपनी जान जोखिम में डाल दी।

अन्नाभाऊ ने साहित्य के माध्यम से उन नायक-नायिकाओं का यथार्थ चित्रण किया है जो समाज के आम लोगों को अपने जैसे लगते हैं। अत: प्रस्तुत आलेख में अन्नाभाऊ ने साहित्य में नायिकाओं का जो वर्णन किया है, वह वर्णन कल्पनाशील न होकर यथार्थवादी एवं व्यवस्था से लड़ने वाली नायिकाओं का है। चित्रा, वैजयंता जैसी नायिकाएं हैं जो बिना निराश हुए हालात से लड़ती हैं। यदि वे असहाय, कमजोर, आश्रित नहीं हैं तो स्वाभिमानी हैं, स्वतंत्र हैं और जुल्म के खिलाफ लड़ रहे हैं। इस प्रकार अन्नाभाऊ ने अपने साहित्य में नायिकाओं को उभारा है।

अन्नाभाऊ साठे ने अपने साहित्य को विद्रोह, संघर्ष, और सामाजिक परिवर्तन बताया। अन्नाभाऊ के साहित्य का विषय समाज के सबसे निचले तबके के वे लोग थे जो जीवन की समस्याओं के बोझ से दबे हुए थे। इसीलिए अन्नाभाऊ ने फकीरi की कहानी, वारणेचा वाघ, संघर्ष, वारणे की घाटी में, बंदूकें, जिंदा कारतूस और दलित-गरीबों के जीवन संघर्ष का चित्रण किया है। उसमें से उन्होंने सामान्य दलित गरीब लोगों के जीवन संघर्ष पर आधारित उपन्यासों की रचना की है। अन्नाभाऊ ने चित्रा, चंदन, कीचड़ में कमल, मयूरा, रत्ना, रूपा, आदी जैसे उपन्यासों के माध्यम से जातिवाद और मनुस्मृति से प्रताड़ित पीड़ित नायिकाओं के संघर्ष को व्यक्त किया है, नायिकाओं के माध्यम से अन्याय के खिलाफ लड़ने की शक्ति को समझाया है। जीवन जीने के लिए संघर्षरत और लोगों के जीवन संघर्ष को अन्नाभाऊ ने बड़े मार्मिक और मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। तो आचार्य अत्रे कहते हैं कि अन्नाभाऊ साठे का साहित्य अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे एक व्यक्ति की कहानी है। ये लोग निराश, या निराश नहीं हैं, बल्कि सम्मान से जीना चाहते हैं और अन्याय के खिलाफ जीतना चाहते हैं।1

अन्नाभाऊ का साहित्य न केवल सौन्दर्यपरक था बल्कि सत्य भी था। वैसे तो चित्रा उपन्यास चित्रा नाम की एक लड़की के जीवन संघर्ष के बारे में है, लेकिन उपन्यास में कई ऐसी घटनाएं हैं जो 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की झलक देती हैं। इसलिए इस बात को नहीं भुलाया जा सकता कि अन्नाभाऊ का किरदार सिर्फ एक किरदार ही नहीं बल्कि एक महान बहुजन योद्धा भी है, जिसने अंग्रेजों के खिलाफ जीवन बिताया और संघर्ष किया। तो चित्रा कई महत्वपूर्ण विषयों की नायिका बनकर सामने आती हैं.अन्नाभाऊ के साहित्य की नायिकाएं अन्याय का प्रतिकार करने वाली हैं। अन्नाभाऊ ने साहित्य के माध्यम से जुल्म के खिलाफ लड़ने वाली नायिकाओं को खड़ा किया है। अन्याय के विरुद्ध खड़ी होने वाली अन्नाभाऊ की नायिका का मर्मस्पर्शी चित्रण। अन्नाभाऊ ने "न्याय" के मूल्य को केंद्र में रखते हुए एक ऐसी नायिका का निर्माण किया है जो शोषकों से संघर्ष करती है, एक ही इच्छा और महान इच्छाशक्ति के साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए विद्रोह करती है। जो परोक्ष रूप से सतु भोसले को अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोही मन से लड़ने में मदद करती है.

अन्नाभाऊ साठे की साहित्यिक नायिका :-

'कुरूप' नामक उपन्यास महाराष्ट्र के दो पाटिल परिवारों के संदर्भ में लिखा गया है। बाबा पाटिल नाम का एक 'वंगल' या खलनायक अपनी दुष्टता और अत्याचार के कारण गाँव के लिए बदसूरत हो गया है। इस अत्याचारी बाबा पाटिल की हरनाबाई पर बुरी नजर है और वह एक रात हरनाबाई के घर में घुसकर उसे प्रताड़ित करने की कोशिश करता है, लेकिन हरनाबाई प्रताड़ना के सामने नहीं झुकती और बिना डरे वह बंदूक की गोलियों से बाबा पाटिल की हत्या कर देती है। अन्नाभाऊ ने नायिका के माध्यम से ऐसे क्रांतिकारी चरित्र का चित्रण किया है, जो अन्याय के खिलाफ लड़ता है, मौके-मौके पर फैसला देता है।2 "वारणेच्या खोऱ्यात" उपन्यास में अन्नाभाऊ ने भारत छोड़ो आंदोलन में अपना बलिदान देने वाले हिंदराव और उनकी प्रेमिका 'मंगला' को उपन्यास के केंद्र में रखकर नायिका के साहस और मदद का चित्रण किया है।[3]

अन्नाभाऊ द्वारा रचित नायिका अमीर, पूंजीपतियों की प्रतिनिधि नहीं, बल्कि एक मध्यमवर्गीय किसान, आम मजदूर थी, इसलिए अन्नाभाऊ का साहित्य गरीबी, दरिद्रता और पीड़ा के आवेग से प्रेरित है। अन्नाभाऊ कहते हैं, "जनक्रांति के नेता, जुझारू लोग, जीने के लिए संघर्ष कर रहे मजदूर, उठो, जीने के लिए लड़ो, क्रांति आपका इंतजार कर रही है।" एक दिन के लिए सूरज की तरह चमकने दें"4 अन्नाभाऊ द्वारा चित्रित नायिका असाधारण, संघर्षशील है। वह अपनी गरिमा और आत्मसम्मान को बचाए रखती है, अन्नाभाऊ द्वारा चित्रित नायिका समान ताकत के साथ अपने आत्मसम्मान को विकसित करती है, बल्कि वह अपनी इच्छा के अनुसार स्वच्छ जीवन जीती है। उदाहरण के लिए, "माकडीचा माळ" उपन्यास बंदर पालक की बेटी 'दुर्गा' और येमु के बीच के भावुक प्रेम को दर्शाता है।

'मयुरा' एक ढली हुई प्रेम कहानी है। मयूरा को चंदन नाम के एक लड़के से प्यार है और उनकी पूरी प्रेम कहानी नायिका को केंद्र में रखकर फिल्माई गई है। कई लेखकों ने अन्नाभाऊ के साहित्य को सौन्दर्यपरक और आदर्शवादी साहित्य कहा है, लेकिन जो समाज इस भारतीय समाज में कभी साहित्य का विषय नहीं बना, उस समाज में अन्नाभाऊ ने बाघ, मुरली, रामोशी, तमसगीर, वेश्याएं, जैसे अंतिम व्यक्ति के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। . अन्नाभाऊ ने अपने साहित्य में ऐसे व्यक्तियों को उभारा है और उनके जीवन की गुणवत्ता को समाज के सामने प्रस्तुत किया है, इसलिए कोई भी आश्वस्त हो सकता है कि

अन्नाभाऊ का साहित्य यथार्थवादी है। अन्नाभाऊ द्वारा चित्रित नायिका सामाजिक व्यवस्था से दो-दो हाथ करने वाली है। यह एक सतत संघर्ष है. वे जीवन के अंधकार से बाहर निकलकर अपने अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष कर रहे हैं। अन्नाभाऊ उन दुष्ट मानसिकता वाले लोगों के खिलाफ लड़ाई का चित्रण करते हैं जो उत्पीड़न पर आमादा हैं, चाहे वह 'सुलभा' हो या चित्रा, वैजयंत, रूपा या 'चंदन'। तमाशा में कलाकारों को जिस तरह से समाज के कई सदस्योंद्वारा परेशान किया जाता है, उसकी समस्या 'वैजयन्त' उपन्यास में प्रस्तुत की गई है। तमाशा में दिखाया गया है कि किस तरह महिला कलाकार का यौन, सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक शोषण किया जाता है। अन्नाभाऊ बताते हैं कि कितनी महिला कलाकार केवल आवश्यकता के कारण ही इस पेशे में आती हैं। अतः अन्नाभाऊ के साहित्य की नायिकाएँ उच्च कोटि की हैं। ऐसे नायिकाएँ अन्नाभाऊ के साहित्य में देखे जा सकते हैं। जैसा कि अन्नाभाऊ ने समाज में उपेक्षित नायिकाओं की पीड़ा से पहचाना, अन्नाभाऊ के प्रत्येक उपन्यास में नायिका को समान महत्व दिया गया है। अन्नाभाऊ का काम दलित लोगों के दुखों को प्रस्तुत करना और उन्हें साहित्य के माध्यम से पढ़ाना था।

अन्नाभाऊ की कलम में बहुत ताकत है. सामान्य पात्रों को भी अन्नाभाऊ ने खूबसूरती से चित्रित किया है। अन्नाभाऊ कहते हैं मैं क्यों लिख रहा हूं. अन्नाभाऊ कहते हैं, "मैं आम लोगों के ऊंचे सपनों और विचारों को व्यक्त करने के लिए लिखता हूं जो वैसा जीवन जीते हैं जैसा हम जीते हैं।" "मुझे अपने देश, इसके लोगों, इसके संघर्ष पर विश्वास है। यह देश सुखी हो, समृद्ध हो, यह धरती स्वर्ग बने, यह सपना लेकर मैं लिख रहा हूं। इस माटी में परिश्रम की कृष्ण अविरल धारा बहती है। अन्नाभाऊ कहते हैं कि यह धरती मेहनतकशों के परिश्रम पर आधारित है। यहां त्याग का होमकुंड लगातार जल रहा है। यह मिट्टी शिव राय के घोड़ों की टापों से जुती हुई है। मराठी सैनिकों की तलवार यहीं है. "अन्ना भाऊ ने पुरुषों और महिलाओं के आत्म-सम्मान और चरित्र की रक्षा और देश की 'आज़ादी' के नेक इरादे से लिखा।"

मुंबई के संदर्भ में अन्नाभाऊ लिखते समय उन्होंने उनकी तुलना अपनी प्रिय से की। वे कहते हैं कि "माझी मैना गावावर राहिली माझ्या जिवाची होतीय काहिली" मुंबई की असमानता पर वे कहते हैं, "मुंबई उंचावरी, मलबार हिल इंद्रपुरी कुबेरांची वस्ती तिथे सुख भोगिती. पराळात राहणारे, रात्रंदिवस राबणारे, मिळेल ते खाउनी घाम गाळणारे". ऐसी आर्थिक असमानता मुंबई और इस मुंबई को बनाने वाले श्रमिक। इसलिए उनका साहित्य मैं महिला नायक उनके जीवन के केंद्र में है।

सारांश :-

इस प्रकार अन्नाभाऊ ने हजारों वर्षों की मूकनायकों और नायिकाओं की वेदना को स्वर देकर उन्हें साहित्य की मुख्यधारा में ला दिया है। अन्नाभाऊ ने अपने जीवन, संघर्ष और विद्रोह के समन्वय को अपनी लेखनी के माध्यम से समाज के सामने रखा है। अतः अन्नाभाऊ के साहित्य की नायिकाएँ यथार्थवादी हैं। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सहायता की, जिसके परिणामस्वरूप एक ऐसी नायिका बनी जो अपनी शील की रक्षा के लिए हाथ में बंदूक लेकर बुरी आत्माओं को मार गिराती है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1)दिलिप अर्जुने (2013) आर्थीक विषमतेविरूध्दचा झंझावत, औरंगाबाद.
2)चंद्रकांत वानखेडे (2007) अण्णाभाऊ साठे : साहित्य दर्शन, नागपूर.
3)वजरंग कोरडेक (2001) भारतीय साहित्याचे निर्माते अण्णाभाऊ साठे, नवी दिल्ली.
4)नानासाहेब कठाळे (1996) लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे :जीवन आणि साहित्य, नागपूर.
5)स.ह.जोशी (2010) लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे, पुणे.
6)नागोराव नामेवार (2012) 'जग बदल घालुनी घाव', औरंगाबाद.

नारी की अस्मिता: समकालीन कहानियों में

-डॉ सिन्धु जी नायर

असोसिएट प्रोफेसर, महाराजास कॉलेज(सरकारी स्वायत्त)
एरणाकुलम, केरल

दुनियां के निर्माण के पश्चात् ईश्वर ने विचार किया होगा कि इस दुनिया को और अधिक सुन्दर बनाना होगा । इस को मद्यनज़र रखते हुए ईश्वर ने मानव की रचना की। मानव को दो रुप दिए-एक पुरुष और दूसरा नारी। `नारी` शब्द स्वतः सम्पूर्ण व निरप्रेक्ष सत्ता का बोध करता है जिसमें शक्ति, सौन्दर्य, शील, त्याग, कर्तव्य,परायणता , उत्सर्ग आदि सभी तत्व समाहित होते है । ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं किन्तु नारी के बिना दुनिया का कोई अस्तित्व ही नहीं है । ईश्वर ने नारी की शारीरिक गठन इस प्रकार की है कि संसार के भविष्य की वह स्वयं निर्माता हो गई । मनु स्मृति में नारी का विवेचन इस प्रकार हुआ है-

"यत्र नारियस्तु पूज्यन्ते,रमन्ते तत्र देवता।"[1]

अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं । अतः कहा जा सकता है कि संसार की तरक्की नारी के विकास पर आधारित है और उसे गौरान्वित भी किया गया है । नारी के स्व के अस्तित्व या उसकी पहचान से है । जब नारी अपने समाज व परिवेश में अपने हिसाब से स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है, तब वह परिवार और समाज में अपने अस्तित्व की तलाश करती है । नारी आज तक समाज में बेटी, बहन और माँ के रुप में ही पहचानी जाती रही है । लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्री इन बंधनों से मुक्त होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व के रुप में अपनी पहचान कायम करना चाहती है । यही से प्रारम्भ होती है- स्त्री की अस्मिता की तलाश। नारी चेतना स्त्री की अस्मिता से जुडा एहसास है । नारी अस्मिता का संघर्ष समाज की अनूठी देन है । साहित्य और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित है । वह एक -दूसरे को प्रभावित करते हुए परम्परागत मुल्यों के प्रवाह में परिवर्तन लाते है ।

समकालीन कहानियों में स्त्री-पुरुष संबंधों के विविध स्तरों को अत्यन्त सूक्ष्मता और प्रामाणिकता से सशक्त अभिव्यक्ति मिली है । आज शिक्षा के अधिकाधिक प्रसार से स्त्री और पुरुष सामाजिक रुप में एक-दूसरे के बहुत अधिक निकट आ रहे है । पहले शिक्षा प्राप्त करते समय स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यलयों में, फिर शिक्षा प्राप्त करके स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालयों, विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों , दफ्तरों ,बैकों आदि में एक साथ काम करते हुए स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के सम्पर्क के अधिकाधिक अवसर पा रहे हैं । इस संपर्क का एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि स्त्री-पुरुष के बीच हुई कोई भी बातचीत केवल प्रेम या एक-दूसरे के प्रति आकर्षण की ही संज्ञा पाये यह स्थिति अब समाप्त हो गई हैं। अब नारी छुई-मुई की स्थिति से उबर सकी है । यह संपर्क अब अधिक यथार्थ प्रकृत (अनरोमैंटिक) धरातल प्राप्त कर गया है ।

शिक्षा के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार से यह स्थिति और भी अधिक सुढ़ढ़ होती चली गयी । आज पुरुष की तुलना में नारी की हीनता भाव लुप्त होता जा रहा है । नारी शिक्षा ने सामाजिक परिदृश्य को बहुत द्रुत गति से बदला है । घर परिवार की लक्ष्मण-रेखा को पार कर , चौके-चूल्हे की घुटन को छोड़कर, नारी ने आज सभी पुरुष-क्षेत्रों में समानता के स्तर पर पदार्पण किया । इससे जहाँ एक ओर वह पुरुषों के अधिकाधिक संपर्क में तो अभी ही, उसका युग-युग से अभिवंदित अबला रुप भी समाप्त हो गया । पुरुष–क्षेत्रों में पदार्पण के साथ नारी का व्यक्तित्व आज तेजोदीप्त है । नारी को यहाँ तक लाने में ब्रह्म-

समाज से लेकर आर्य- समाज जैसे विविध समाज-सुधार आंदोलनों एवं आधुनिक शिक्षा ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निबाही है ।नारी अब पहले की अपेक्षा आर्थिक रुप से स्वतन्त्र है । आज नारी बेचारी नहीं रह गयी है । वह किसी भी प्रकार की संघर्षशील स्थिति का सामना करने के लिए तत्पर है । नौकरीपेशा होने से जहाँ उसे आर्थिक सुरक्षा और स्वावलंबन प्राप्त हुआ । इस स्थिति ने उसे अपने अधिकारों के प्रति भी जागरुक बनाया । आज वह अपनी दयनीय स्थिति को भाग्य का विधान या पति-परमेश्वर का वरदान स्वीकार करने को तैयार नहीं । वह अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होकर प्रत्येक शोषण का सामाजिक और कानूनी स्तर पर विरोध करती है । इस प्रकार आर्थिक सुरक्षा अपने पैरों पर खड़े होने के बल ने स्त्री को पुरुष-नियंत्रित समाज और व्यवस्था की प्रत्येक चुनौती का सामना करने में सक्षम बनाया ।

नारी से जुड़ा कोई भी मुद्दा चाहे उसकी अस्मिता ,चाहे उसकी स्वतन्त्रता का, चाहे उसकी आरक्षण की ही हमें इस हकीकत का गहरा एहसास होना चाहिए कि हम एक ऐसे समाज में जी रहे है जो पूँजिवादी ही नहीं, पुरुष वर्चस्ववादी भी है । नारी कमर कसकर कमाती भी है फिर भी समान हैसियत अब उसे हासिल नहीं है । पर अब भी वह हमेशा दोयम दर्जे की नागरिक है, उसका अस्तित्व और जीवन पुरुष सापेक्ष ही निर्धारित है । साहित्य में नारीवादी आन्दोलन के जोर पकड़ने के पहले ही पुरुषों लेखकों ने नारी मन की तह के अनेक आयामों को परत-दर-परत हमारे सामने प्रस्तुत किया । यह तो सर्वविदित बात है कि स्त्री ही अपने और दूसरी स्त्री के दिलों को सही ढंग से समझकर परख सकती है । कृष्णा सोबती, उषा प्रियम्वदा और मन्नू भण्डारी ने नारी मन के ख्यालातों को सेन्सेर किए बिना ही हू-ब-हू कागज़ में उतारने की जबरदस्त कोशिश की थी ।नारी अस्मिता संबंधी कहानियो को प्रस्तुत करने वालों में मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, मेहरुन्निसा परवेज़ , चित्रा मुद्गल, गिरीराज किशोर , सीतांशु भारद्वाज़, ममता कालिया , ज्ञान प्रकाश विवेक , स्नेह मोहनीश , संगीता सिंह और विष्णु प्रभाकर प्रमुख हस्ताक्षर रहे हैं । इन में से मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, निरुपमा सेवती और मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानियों ने विशेष रुप से मुझे प्रभावित किया हैं।

मन्नू भण्डारी की कहानी **यही सच है** में दीपा को घड़ी के पेन्डुलम की भाँति दो प्रेमियों के बीच डोलते नारी मन का चंचलता को बहुत ही शालीन तौर पर पेश किया था । पुरुषवर्चस्ववादी समाज में यह कोई गुनाह नहीं समझा जाता कि पुरुष का एक से ज्यादा स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध है । यह तो उसकी रसिक वृति का परिचायक है । लेकिन एक से अधिक पुरुषों से नाता रखने वाली औरतों के लिए मुंबई अंदाज़ में कहें तो चालू माल है यानि सेक्स के मामले में एकनिष्ठता स्त्री के लिए ही अनिवार्य समझी जाती है । कहानी के अंत में संजय रजनीगंधा के फूल लिए आता है और दीपा को अपनी बाहों में ले लेता है । संजय के चम्बन आलिंगन से दीपा को लगता है कि- "यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था.....।"[2] इस कहानी में लेखिका यह बताती है कि दीपा स्वयं नहीं जानती है कि वह किसे चाहती है । एक मन को शांति प्रदान करता है और दूसरा शरीर को । इसलिए स्त्री अस्मिता की पहचान के संदर्भ में **यही सच है** मील का पत्थर साबित होती है । **मन्नू भण्डारी** की **नई नौकरी** की पत्नी रमा अपने पति कुंदन की नयी नौकरी से इसीलिए त्रस्त है कि उसके कारण उनका स्वतन्त्र अस्तित्व बिला गया है । इस कहानी में आधुनिक रहन-सहन और विचारधारा को प्रस्तुत किया गया है । इस कहानी की नायिका रमा इतिहास की प्राध्यापिका है जो दस साल तक नौकरी करती रही है । रमा को पति कुंदन ऑफिस जाते समय दोनो ही साथ निकला करते हैं और कुन्दन रमा को कॉलेज छोड़ता हुआ अपने ऑफिस जाया करता है । आज रमा ने नौकरी से इस्तीफा दे दी है । कुंदन को एकाएक विदेशी कम्पनी में इतनी बड़ी नौकरी मिल गयी है । कुंदन की सारी ज़िन्दगी का पैटर्न (स्टाइल) ही बदल गया है । वह दो-तीन क्लबों का मेम्बर बन गया है । कम्पनी विदेशी होने के कारण विदेशियों को घर पर पार्टियाँ देनी पड़ती है । फ्लॉट कम्पनी की दी हुई है। आए दिन दूसरे कंपनियों के बड़े-बड़े अफ्सरों को एण्टरटेन करना पड़ता है । कुंदन सोचता है कि वह इस नये घर को निहायत ओरिएंटल ढंग से सजा दें और वह यह काम रमा को सौंप देता है । रमा का काम इतना बढ़ गया कि उसके पास अपना पेपर तैयार करने के लिए भी वक्त नहीं है । वह इतनी व्यस्त हो चुकी है कि -" सबेरे उठकर वह बंटी को तैयार करके स्कूल भेजती । फिर खुद तैयार होती । तैयार होते-होते ही वह नौकर को आदेश देती जाती, सारे दिन का काम समझाती, नाश्ता करते-करते वह अपना लेक्चर तैयार करती , तैयार तो क्या करती बस सूँघ-भर लेती । फिर नौ बजे कुन्दन के साथ ही निकल जाती । तीन के करीब वह लौटती । थोड़ा आराम करती और शाम की तैयारी । बाहर नहीं जाना होता था तो घर में किसी को आना रहता था ।"[3] रमा इस नये माहौल में घुल-मिल नहीं पाती है । रमा चाहती है कि कुन्दन उसे घर पर छोड़कर पार्टी के लिए चले जाये जिससे रमा को अपने पेपर तैयार करने का वक्त मिल जायेगा । कुंदन उसे प्यार से समझाता है कि -"तुम्हें छोड़कर आज तक मैं कहीं गया हूँ , जा सकता हूँ। ऑफिस के अलावा हमेशा हम साथ जाते हैं । तुम भी जानती हो कि तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।"[4] मन्नू भण्डारी की कहानी **इक्कम टैक्स और नीन्द** कहानी की महिमा डॉक्टर है । कहानी का डॉक्टर दयाल होमियोपैथिक डॉक्टर है । महिमा डॉक्टरी करके अपना अस्पताल चला रही है । उसने अब तक शादी नहीं की है । महिमा के प्रति दयाल के मन में ईर्ष्या भी है । लड़कियों को ऊँची शिक्षा देने के संबंध में डॉ. दयाल का कहना है – "भाई साहब ने इस लड़की की ज़िन्दगी खराब करके रख दी । 26 बरस की बिन ब्याही लड़की घर में बिठाकर रख ली" [5]।

आज की स्त्री और पुरुष के दाम्पत्य संबंध की भीषण संक्रान्तियों , तनावों को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत करती है । पहले के ज़माने में पुरुष का समान उत्तम स्तर का रहा है , वह अधिकारी माना जाता रहा है और स्त्री उसकी अधिकृत मानी जाती रही है । स्त्री की यह सब से बड़ी विडम्बना है कि उसे पुरुष के न्याय ओह अन्याय दोनों को ही सहना पड़ता है । पुरुष स्त्री को देवी कहकर दासी बनाकर रखता है । शिक्षा के प्रसार से स्त्री अपने ऊपर होनेवाले अन्याय के विद्रोह करने लगती है । मन्नू भण्डारी की कहानी "**तीसरा आदमी**" में लेखिका ने शक से ग्रस्त एक पुरुष की मानसिक उलझनों को दर्शाया है । सतीश और शकुन पति –पत्नी है । दोनों एक दूसरे को बहुत अधिक चाहते है । वे अपनी गृहस्थी में किसी तीसरे को आना बर्दास्त नहीं कर पाते हैं । सतीश इस बात का जिक्र आलोक के सामने शकुन से करता है कि -" मैं तो उस बात से खुश हूँ कि तुमने किसी को निमन्त्रण दिया तो ? आलोक जी, आपको शायद विश्वास नहीं होगा , आप पहले आदमी हैं जिसके आने पर शकुन यों खुश हो रही हैं , वर्ना शुकुन को इस घर में तीसरे आदमी की उपस्थिति बर्दाश्त नहीं होती ।"[6] उन्हीं की एक और कहानी "**बन्द दराज़ों का साथ**" में नारी के मानसिक अन्तर्द्वन्द का बड़ा ही बारीक चित्रण मिलता है । विपिन के साथ मंजरी विवाह के बाद सुखी जीवन बिताती है । एक दिन अचानक मंजरी को पता लगता है कि विपिन का किसी और स्त्री के साथ संबंध है और उससे उसका बच्चा भी है । जब मंजरी के सामने यह राज़ खुलती है तब वह इस स्थिति को कबूल नहीं कर पाती है । वह अपने पति को संपूर्णता में ही पाना चाहती है । मंजरी घर से दूर जाने की बात करती है तो विपिन कहता है कि -" मैं दिल्ली छोड़ दूँगा । इस सब के बाद मुझसे यहाँ रहा भी नहीं जाएगा । तुम शायद यहाँ लौटकर आना पसन्द करोगी । इस घर को अपने नाम ही रहने दो ।"[7]

मृदुला गर्ग की कहानी **हरी बिन्दी** की नायिका शादी-शुदा है । हमारा भारतीय समाज प्रारम्भ एकनिष्ठ , समर्पित और प्रतिबद्ध रह, पराए पुरुष

कि ओर आँख उठाकर न देखे, उसके साथ घुल मिल कर बात न करे। पति के लिए सारे रास्ते खुले है वह अन्य स्त्रियों के साथ मुक्त रुप से घूम भी सकता है पर बेचारी पत्नी घर की चार दिवारी में बैठे-बैठे ऊब और घुटन का अनुभव करती है। ऐसी दशा में अगर वह किसी अन्य पुरुष से मिले, उसके साथ किसी होटल में चाय पीए तो यह सब क्या अनैतिक है ? नारी की इसी मानसिकता को व्यक्त करती है-"नीले रंग का कुर्ता और चूड़ीदार पाजामा पहना तो नीले रंग की बिन्दी माथे पर लगाने को हाथ बढ़ गया। फिर न जाने क्या सोचकर उसे छोड़ जिया और बड़ी-सी हरी बिन्दी लगा ली "[8]। इस कहानी में एक विवाहिता नारी की स्वच्छन्दतावादी मानसिकता को कहानी में दर्शाया गया है। कहानी की नायिका अपने व्यक्तित्व से साक्षात्कार करने के मोह में भारतीय संस्कृति की विवाहगत मान्यताओं को मानने के लिए इन्कार कर रही है। पति राजन के दिल्ली जाने पर उसकी अनुपस्थिति में वह देर से उठती है , आज वह अपने आप को मुक्त स्वतन्त्र अनुभव करती है। ठण्डे पानी से नहाना, नीले कुर्ते पाजामे के साथ हरी बिन्दी लगाना , कान में नकली बड़ी-बड़ी बालियाँ पहनना, धुन्ध में खुलापन महसूस करना, अकेले घूमना , जहाँगीर आर्ट गैलरी में प्रदर्शनी देखते समय मुक्त रुप से हंसना, रेस्तराँ में गरमागरम आलू टिकिया के साथ आइसस्कीम खाना, राजन की नापसंद के डैनी का पिक्चर देखना, वहाँ अजनबी पुरुष के हाथ से हाथ टकरा जाने पर ठहाके लगाकर हंसना, फिर उसके साथ के रस्तरों में बैठकर बातें करना, अजनबी होने पर भी एक दूसरे के विषय में पूछताछ न करना , न रुमानी बातें करना और अन्त में अजनबी द्वारा उसकी हरी बिन्दी की प्रशंसा करते हुए एक कोमलता छोड़ जाना। इस कहानी में नायिका नौकरीपेशा नहीं है। संजीदगी से अपना घर सँभालती है। उसकी रोज़ाना की जिन्दगी पूर्णताः पति सापेक्ष है। उसके हर आचरण और विचार में पति की दखलअंदाजी है। कहानी में उसे एक दिन की ज़िन्दगी का बीरिकी से चित्रण हुआ है। उस दिन की यही खासियत है कि उसके पति की शारीरिक मौज़ूदगी नहीं है। उस दिन वह अपनी मर्ज़ी की ज़िन्दगी जीती है और जिससे पता चलता है कि वह किस हद तक पति सापेक्ष और कितना समझौता परस्त भी है। कहानी स्पष्टतः ज़ाहिर करती है कि आधुनिक समाज के परिवार में भी स्त्री की कैसी हालत है। कहानी की पत्नी के ख्यालों और आचरणों से पता चलता हैं कि वह पति की इच्छा के मुताबिक ही जी रही है। अपनी पसन्द के कपड़े पहनने, खाना खाने , फिल्म देखने यहाँ तक कि बिन्दी लगाने तक वह स्वतन्त्र नहीं है। इसलिए ही वह एक दिन के लिए ही सही अपनी मर्ज़ी की ज़िन्दगी जीती है। नायिका का हरी बिन्दी लगाना विद्रोह का सूचक है। हरी बिन्दी नायिका प्रधान कहानी है। कहानी की नायिका परम्परा और दाम्पत्य की घुटन से मुक्त होकर स्व-व्यक्तित्व को पाना चाहती है। वह और उसकी हरी बिन्दी नारी की बदलती मानसिकता का सशक्त प्रतीक है। हरी बिन्दी बौद्धिक महानगरीय युवती के संदर्भ में अस्तित्वगत चेतना को महसूसती एवं दाम्पत्यगत एकरसता से उकता चुकी युवती की दिशाहीनता की कहानी है। वह नौकरीपेशा नहीं है। संजीदगी से अपना घर सँभालती है। उसकी रोज़ाना की जिन्दगी पूर्णताः पति सापेक्ष है। उसके हर आचरण और विचार में पति की दखलअंदाजी है। कहानी में उसे एक दिन की ज़िन्दगी का बीरिकी से चित्रण हुआ है। उस दिन की यही खासियत है कि उसके पति की शारीरिक मौज़ूदगी नहीं है। उस दिन वह अपनी मर्ज़ी की ज़िन्दगी जीती है और जिससे पता चलता है कि वह किस हद तक पति सापेक्ष और कितना समझौता परस्त भी है। कहानी स्पष्टतः ज़ाहिर करती है कि आधुनिक समाज के परिवार में भी स्त्री की कैसी हालत है। कहानी की पत्नी के ख्यालों और आचरणों से पता चलता हैं कि वह पति की इच्छा के मुताबिक ही जी रही है। अपनी पसन्द के कपड़े पहनने, खाना खाने , फिल्म देखने यहाँ तक कि बिन्दी लगाने तक वह स्वतन्त्र नहीं है। इसलिए ही वह एक दिन के लिए ही सही अपनी मर्ज़ी की ज़िन्दगी जीती है। **अगर यों होता** कहानी में लेखिका ने पति के होने पर भी अन्य पुरुष के साथ संबंध स्थापित कर उसके साथ घूमने-फिरने की, यौन शुचिता के तर्क को तिलांजलि देकर विवाह और प्रेम संबंधी नयी मूल्य दृष्टि को चित्रित किया है। कहानी की नायिका मधुर है जो विवाहिता है। परन्तु नाटक की रिहर्सल के समय विदेशी जिम के संपर्क में आती है। दोनों विवाहिता होने पर भी मन और तन से एक-दूसरे के प्रति संपृक्त हो जाते हैं। अगर यों होता कहानी की मधुर विवाहित होते हुए भी जिम नामक एक विदेशी पुरुष के प्रति आकर्षित होती है। घुमक्कड़ी वृत्ति का यह जिम किसी नाटक की रिहर्सल के दौरान मधुर से मिलता है और उसे मधुर से प्यार हो जाता है। जिम भी विवाहित है , बाल-बच्चों वाला है। दोनों प्रेम की गलियों में भटक जाते हैं। मधुर को इस बात का एहसास है कि वह अपने पति से विश्वासघात कर रही है। मृदुला गर्ग की **अवकाश** कहानी की पत्नी कुछ वर्ष बाद अपने पति से तलाक इसलिए ले लेती है कि वह अपने प्रेमी के बिना जी नहीं सकती। वह अपने पति से साफ -साफ कह देती है ," पिछले दो वर्षों में अनेक ऐसे क्षण आये हैं जब उसने स्वयं यही सोचा है कि शारीरिक सुख के अलावा इसमें कुछ नहीं है. पर वे मन-मस्तिष्क से एक है। लगा, उसे स्पर्श किये बगैर, उसके साथ बातें करते या चुप रहकर,वह पूरा जीवन सुख से बिता सकती है। वह जानती है दोनों ही सच है "।[9] वह एक ओर अपने प्रेमी के आकर्षण में खींची-सी जाती है और दूसरी ओर बच्चे और पति के भविष्य के बारे में चिन्तित रहती है। अंत में जब वह विवश हो जाती है तब पति से तलाक ले लेती है। उसके बाद प्रेमी के साथ रहने लगती है इस कहानी में पति पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति के कारण बनते-बिगड़ते वैवाहिक संबंधों का चित्रण किया गया है। **वितृष्णा** कहानी की शालिनी अपने लिए समय न देने वाले पति दिनेश को उसी के साथ रहकर करारा जवाब देती है। दिनेश शालिनी के मन के कोमल भावों को समझ नहीं सका। वह बड़ी निर्ममता से शालिनी से कहता है ,"बात करने की फुर्सत उन्हें होती है जिनके पास काम नहीं होता है। अगर तुम घर को पूरे सलीके से चलाओ तो तुम्हारे पास भी चख-चख करने को वक्त न बचे "[10]। तब शालिनी भी अपनी वितृष्णा दिखाकर दिनेश के इतना बेचैन कराती है कि वह उसकी प्यार भरी नज़र के लिए छटपटाता है क्योंकि शालिनी अपनी गृहस्थी को लेकर जितनी सजग है उतनी ही दाम्पत्य जीवन की सरसता को लेकर भी। यहाँ मृदुला गर्ग ने शालिनी के माध्यम से यह दिखाया है कि अब कोई भी पुरुष अपनी पत्नी की अवहेलना नहीं कर सकता। उसकी **कराह** कहानी में पति-पत्नी के संबंधों में उदासीनता और भावनाहीनता कैसे निर्माण हो जाती है , इसकी झलक मिलती है। कहानी में सुमति को अपनी पत्नी सुधा से ज्यादा अपनी फैक्टरी का ख्याल है। यह जानते हुए भी कि सुधा की जिन्दगी के कुछ ही दिन बचे हैं , इसे फैक्टरी की चिन्ता अधिक है। सुधा उसकी व्यस्तता को अपनी उपेक्षा समझ खीझती रहती है और इसी अवस्था में वह मृत्यु के समीप पहुँच जाती है। **जीरो अक्स** कहानी की मेधा के लिए नौकरी शोक नहीं जरुरत है क्योंकि उसका तलाक हो चुका है। उसे चार बर्ष का एक पुत्र भी है। भारतीय समाज में ऐसी स्त्री को परित्यक्ता कहकर उपेक्षा भाव से देखा जाता है। "तलाक ! हुंह। पश्चिमी लफ्फाजी ! सीधे कहो छोड़ी हुई औरत है।परित्यक्ता।" दिनेश द्विवेदी ने मृदुला गर्ग द्वारा चित्रित दाम्पत्य विधान के संबंध में लिखा है कि,"पति-पत्नी के बीच पसरे हुए दाम्पत्य के धुँधलाते, बनते-बिगड़ते आपसी रिश्तों के तेवरों पर यों तो बहुत लिखा जा रहा है। लेकिन इन बारिक संबंधों की पेचीदगियों से अलग हट यदि किसी ने लिखा है तो वह है – मृदुला गर्ग "[11]।

नारी जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू दहेज प्रथा है। आज वर्तमान में दहेज एक शोषण का पर्याय बन चुका है।

संभवतः इसी कारण प्रत्येक युवती आज विवाह से पूर्व दहेज जैसी समस्या को लेकर अपने भीतर कुंठा महसूस करती है। लड़के का पिता अपने लड़के का मूल्य माँगता है। जितना लड़का शिक्षित , सम्पन्न , सुन्दर उसका शादी के समय मूल्य अधिक होता है। इस प्रथा के कारण कन्या अपने जन्म से ही चिन्ता का विषय बन जाती हैं। क्योंकि दहेज देकर भी लड़की के जीवन की कोई गारंटी नहीं होती। हर रोज़ दहेज के कारण होती मौत के समाचार स्त्री की बेबसी ही दर्शाते हैं। आज कुछ युवतियों का बिन ब्याही रह जाने के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें सबसे पहला और बड़ा कारण तो दहेज ही है। हज़ारों लड़कियाँ ब्याह की उम्र में मानसिक अवसाद और पारिवारिक उपेक्षा का शिकार इसलिए बनती हैं कि उनके माँ-बाप लड़केवालों को मुँहमांगा दहेज नहीं दे सकते। कानूनन दहेज लेना अपराध होने के बावजूद यह समस्या विकराल रुप धारण करती जा रही है। तीव्र नारों एवं विरोधी स्वरों में अन्तर मात्र इतना ही है कि अब लेन-देन के ढ़ग बदल गए है। **गुलाब के बगीचे तक** कहानी में भारतीय संस्कृति में निहित दहेज कुप्रथा पर कठोर संकेत किया गया है। कहानी की लड़की का फिल्म प्रोड्यूसर के मंझले लड़के से प्रेम हो जाता है। वे विवाह करने का निर्णय लेते हैं। परन्तु फिल्म प्रोड्यूसर एक सामान्य मैनेजर की लड़की से शादी करने की इज़ाजत इसी शर्त पर देते हैं कि वह कम से कम उतना दहेज साथ लाये जितना उनके बड़े लड़के की बहू लायी थी, इतने अमीर घर में जाएगी तो क्या खाली हाथ ? उसकी पत्नी ने उससे पूछा था पर दहेज कौन बाप नहीं देता हिन्दुस्तान में? "[12] लड़की के युवा होते ही माता-पिता के ऊपर विवाह का भय सवार रहता से है। उनकी एक ही इच्छा होती हैं कि किसी तरह लड़की के हाथ पीले हो जाये और वे गंगा नहाये। **लौटना और लौटना** कहानी के बाबूजी बेटे के दहेज की धनराशी से मकान बनाना चाहते हैं। इसलिए वे अपने अमेरिका निवासी पुत्र के लिए अधिक दहेज का सपना संजोये हुए है। वे अपनी पत्नी से कहते हैं ," तभी न सोचता हूँ , कहीं अच्छी जगह शादी-ब्याह तय हो जाए तो दहेज के रुपयों से ही मकान खड़ा हो जाए , कमाई को भी हाथ न लगे। मालूम है, अमरिका से लौटे लड़कों के दाम कितने ऊँचे लगते हैं ?"[13] वास्तव में भारत में दहेज एक न सुलझने वाली समस्या है।

मृदुला गर्ग की कहानी **कितनी कैदें** की मीना में सामूहिक बलात्कार की वज़ह से एक ठंडापन आता है किन्तु लिफ्ट में अपने पति मनोज के साथ कैद हो जाने पर मृत्यु को सामने देख वह मनोज के सामने उस घटना का बखान करती है और कैद से मुक्ति पाना चाहती है। लिफ्ट में जब मनोज और मीना दोनों बंद हो जाते हैं और बिजली चली गयी है , तब मीना निर्वसन होकर सामने आ जाती हैं। मृत्यु-संत्रास और अतृप्त काम-भावना के मिले-जुले प्रभाव से कहानी का ताना-बाना तैयार हुआ है। **एक और विवाह** कहानी की कोमल विवाह संस्था पर विश्वास नहीं रखती। वह पाश्चात्य विचारों से अभिभूत होने के कारण विवाह तथा दाम्पत्य जीवन के संबंध में अपने स्वतन्त्र विचार रखती है। उसके लिए विवाह का अर्थ है– रोमांस को तिलांजलि। कोमल अपने विचारों द्वारा अपने व्यक्तित्व को नियंत्रित करती है। **दुनिया का कायदा** की रक्षा कॉलेज में प्राध्यापिका है।उसे पति की पदोन्नति के लिए बॉस मिस्टर मेहता के अनचाहे शारीरिक स्पर्श को सहना पड़ता है। पर पति को अपनी पत्नी की इच्छा-अनिच्छा का ज़रा भी ख्याल नहीं है। अतः उन्हें खुश करने के लिए वह अपनी पत्नी का इस्तेमाल करने में भी संकोच नहीं करता है। उसका स्पष्ट मत है कि ,"सभ्य समाज का यही कायदा है। खरीद-फरोख्त, नौकरी-पेशा, सब खाने की मेज के इर्द-गर्द , शराब का गिलास हाथ में लेकर तय होते है।"[14] इसीलिए वह अपनी पत्नी रक्षा से कॉकटेल पार्टी में चलने का आग्रह करता है। रक्षा अनिच्छा से ही सुनील के साथ जाती है। वहाँ मिस्टर मेहता के साथ उसे मज़बूरी में नृत्य करना पड़ता है। नृत्य के समान मिस्टर मेहता की हरकतों से रक्षा परेशान हो जाती है। इन असहनीय कार्यों की वजह से रक्षा का मन पति से दूर हट जाता है। पर वह पति को नाराज़ नहीं करना चाहती तथा अपने वर्गीय माहौल से अलग भी पड़ना नहीं चाहती थी। यहाँ लेखिका ने नारियों की निष्क्रियता तथा स्त्री-संबंधी देहवादी मानसिकता को अभिव्यक्त किया है। मृदुला गर्ग की कहानी **मेरा** कहानी का तुम लौट आओ नाम से फिल्मांकन हुआ है। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी मेरा में इस प्रश्न को और कोण से प्रस्तुत किया है। इस कहानी में असिस्टैंट इंजिनियर अपनी भावी उन्नति की कामना के संघर्ष में आने वाले बच्चे को बाधक मानता है। प्रस्तुत कहानी में नारी के उस रुप को सामने लाया गया है जिसमें वह खुद अपने पैरों पर खड़ी हो सके और स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय लेने का साहस करे। कहानी में विवाह के बाद मातृत्व स्वीकारना चाहती है किन्तु उस पति महेन्द्र अभी इस समय पितृत्व नहीं चाहता। महेन्द्र सोचता है ,"इतनी जल्दी बच्चा हो गया तो मेरे हाथ-पांव बंध जाएँगे। मैं कुछ नहीं कर सकूँगा "।[15] दोनों में इसी कारण तनाव है। मीता मातृत्व को अपना निजी मामला समझती है। वह किसी भी स्थिति में पति के आग्रह को नहीं स्वीकारती पति-पत्नी के बीच उभरे इस तनाव को पूरी सूक्ष्मता के साथ आलोच्य कहानी में उभारा गया है और साथ ही मातृत्व की विजय को दर्शाया है। अतः वह एबॉशम नहीं कराती , तमाम दबाब के बीच वह निर्णय लेती है कि वह माँ बनेगी और अपने भावी संतान के लिए नौकरी करगी। उसकी पत्नी मीता एबॉर्शन के लिए बिलकुल भी तैयार नहीं है किन्तु पति की इच्छा से विवश जब वह अस्पताल पहुंचती है और उसे यह पता चलता है कि यह उसका बिलकुल निजी मामला है – मेरा मामला है तो वह एबॉर्शन नहीं करती। इस प्रकार वह अपने मातृत्व के अधिकार की रक्षा करती हुई , अपने व्यक्ति-स्वातंत्र्य का परिचय देती है। **मीरा नाची** कहानी में पिता अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर शहर चले जाते हैं। वहाँ से कुछ दिनों तक पैसा भी भिजवाते रहे। परन्तु जब अचानक पैसे आना रुक गया तब माँ बच्चों को लेकर पति के पास्दों में व्यक्त किया हैं- पहुँच गई। वहाँ जाते ही दोनों में संघर्ष हुआ। इसे मीरा ने इन शब्दों में व्यक्त किया है -" दोनों के बीच जो महाभारत हुआ ,क्या बतलाऊँ। पिताजी ने माँ को घर से बाहर धकेल दिया दिया साथ मुझे भी। घर में ताला डालकर चले गये। माँ मुझे लेकर बरामदे में डरी रहीं भूखी-प्यासी। मेरे तो प्राण ही निकाल गये थे भूख के मारे।"[16] वास्तविकता यहीं थी कि पिता ने शहर जाकर दूसरा विवाह कर लिया था। इस प्रकार के अनेक प्रसंग समाज में दृष्टिगत होते हैं जो नारी के प्रति उपेक्षा भाव एवं शोषण के प्रमाण है। नारी के अर्जिका रुप यानी कामकाजी रुप के मूल में विविध कारण विद्यमान हैं – संयुक्त परिवारों का टूटना, बढती महँगाई , सीमित आय आर्थिक अभाव आदि के कारण नारी नौकरी करने लगी है। अविवाहित नारी के लिए परिवार में कमानेवाला कोई नहीं है तो परिवार के भरण-पोषण के लिए नौकरी करना अपरिहार्य हो गया है। पति की व्यसनाधीनता, उसका बेरोज़गार होना भी नारी की नौकरी के लिए कारण बनता है। शिक्षित परित्यक्ता , विधवा नारी भी नौकरी करके आत्मनिर्भर बनती दिखाई देती है। परन्तु कहीं भी कामकाजी नारी की स्थिति संतोषजनक नहीं है। घर और बाहर उसका शोषण हो रहा है। चाहे नारी कितने ही बड़े पद पर नियुक्त क्यों न हो, शाम को घर पहुँचने में थोड़ा भी विलम्ब हो जाये तो उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई बार इस पर विश्वास भी नहीं किया जाता। नौकरी की जगह पर अलग-अलग प्रकार के लोगों के साथ उसका संबंध आता –जाता है। कुछ लोग उसकी विवशता की भली-भान्ति लाभ उठाकर उसका शोषण करते हैं।वह अपनी आर्थिक दशा से मज़बूर होकर कुछ नहीं कह पाती। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दोनों ही संघर्षों से नारी को गुज़रना पड़ता है। नारी शोषण भारत की सनातन समस्या है। नारी शोषण के दो प्रकार हैं–

एक – पारिवारिक शोषण एवं सामाजिक शोषण। परिवार में नारी पुत्री, पत्नी , माँ रुप में शोषित ही रही है। उसका यह शोषण आर्थिक दृष्टि से भी हुआ है। उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण कभी संतोषजनक नहीं रहा है। कभी वह दहेज के नाम पर तो कभी यौन दृष्टि से उत्पीड़ित यही है। जगदीश चतुर्वेदी के शब्दों में " पुरुष अपनी अस्मिता का स्वयं निर्माता था, किन्तु स्त्री ने जब अपने हकों की माँग की, अपने लिए सार्वजनिक जीवन में स्थान , स्पष्ट अभिव्यक्त स्वतन्त्र पहचान एवं लिखने की कोशिश की , लज्जा को त्याग कर सहज शैली में व्यावहार करना शुरु किया। पुरुष निर्मित ढाँचे, नियमों, मूल्यों एवं रिवाजों से विचलन को वदचलनी का रुप दे दिया गया।"[17] आधुनिक युग में विलासिता के प्रति आकर्षण बढ गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी महत्वाकांक्षा पूर्ण करने के लिए किसी भी प्रकार अनैतिक मार्ग का अवलंबन कर रहा है।

निरुपमा सेवती की **सबमें से एक** कहानी में पुरुष के समान स्त्री का भी अधिकार है कि वह भी एकाधिकार पुरुषों से प्रेम कर सके। कहानी की लड़की "भरपूर संतुष्ट-सी हो आयी कि मेरे तमाम वाक्य मुझे नितांत मुक्त लड़की होने का जामा पहना गये है "।[18] कृष्णा अग्निहोत्री की **"गलियारे"** कहानी में नारी पति-पत्नी के लिए निर्धारित दुहरे नैतिक मानों पर चोट करती हुई कहती है "पति का अहं ठहरा.....वह नहीं चाहेगा कि उसकी पत्नी किसी अन्य पत्नी किसी अन्य पुरुष के विषय में सोचे भी , जबकि पति कितनी बार प्यार करके अछूता और ब्याहा का अनब्याहा ही बन जाता है "।[19] नारी यदि नौकरी नहीं भी करती और भरे-पूरे घर में उसे नौकरी की आवश्यकता न हो तो भी आज उसकी सोच बहुत वदली हुई है। वह हर क्षेत्र में केवल पति की अनुगामिनी , मात्र उसी के सुख-स्वप्नों को पालने वाली , खरीदी हुई गुलाम बनने को कतई तैयार नहीं है। उसे यह भी स्वीकार नहीं कि पति की नौकरी की व्यस्तता उसके व्यक्तित्व की स्वतन्त्र अस्मिता को ही समाप्त कर दे। मेहरुन्निसा परवेज़ की **साल की पहली रात** की नायिका का यह कथन "क्यों से रेश्मा , क्या औरत हमेशा आदमी के ही नाम से जानी जायेगी "।[20]

निष्कर्षत: हम देखते हैं कि यह समकालीन कहानी न केवल नारी आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की हिमायत करती है अपितु अपनी प्रतिभा , शिक्षा और शान्ति के बल पर स्वयं अपना मार्ग बनाती है। आज वह किसी की मुहताज नहीं है। यह कहानी परित्यक्ता स्त्रियों , शराबी नशाखोर पतियों वाली स्त्रियों तथा अन्य पीड़ित महिलाओं की आँखें खोलती है तथा आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की शिक्षा देती है। समकालीन कहानियों में अनेक कहानियाँ नारी अस्मिता को जीवंतता प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हुई है। इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में नारी अस्मिता प्रगति पथ पर है। नारी अब पराधीन नहीं , आत्मनिर्भर , स्वावलम्बी और स्वतन्त्र है। वह घर में भी , परिवार में भी , समाज में भी और अपने कार्यालयी वातावरण में उसकी अस्मिता की रक्षा हो सके और उसका आत्मबल तथा अस्मिता बोध कायम बना रह सके।

आधुनिक नारी में व्यक्तित्व की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने की जो छटपटाहट है , वह आधुनिक कहानी में पूरी तरह प्रतिच्छायित हुई है। नारी-शिक्षा और शिक्षा के आधार पर प्राप्त नौकरियों ने आज नारी को एक आत्मविश्वास , आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक सक्षमता प्रदान कर उसे यह अनुभव दिया है कि वह किसी भी प्रकार पुरुष से हीन नहीं है । आज की नारी आत्मनिर्भर है। वह पुरुष का आधिपत्य स्वीकार करनेवाली अबला नहीं। नारी के इस बदले हुए चरित्र के बारे में चित्रा मुद्गल लिखती हैं – "कल तक पुरुष सत्तात्मक समाज में बँधुआ मज़दूर जैसा पशुत्व जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्री अपने घर-बाहर सभी जगह पुरुष के मुकाबले बराबरी का सिर्फ दर्जा ही नहीं चाहती , हिस्सेदारी भी चाहती है और स्वाभिमान पूर्वक अपनी प्रतिष्ठा भी। समकालीन कहानी में पुरुष अत्याचार और उसके विरुद्ध खड़ी होनेवाली नारी को प्रतिष्ठत करने का प्रयास है।

****

संदर्भ ग्रन्थ:-

1. गोपाल शास्त्री नेने, मनुस्मृति अध्याय तीन, श्लोक सं. 56, पृष्ठ 112
2. यही सच है- मन्नू भण्डारी- मेरी प्रिय कहानियाँ- पृ. 91, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली संस्करण 1993
3. नई नौकरी- मन्नू भण्डारी- मेरी प्रिय कहानियाँ- पृ.33, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली संस्करण 1993
4. नई नौकरी- मन्नू भण्डारी- मेरी प्रिय कहानियाँ- पृ. 35, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली संस्करण 1993
5. इनकम टैक्स और नीन्द- मन्नू भण्डारी- यही सच है और अन्य कहानियाँ-पृ. 105, अक्षर प्रकाशन,दिल्ली,1978
6. तीसरा आदमी- मन्नू भण्डारी- यही सच है और अन्य कहानियाँ- पृ. 36, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
7. बन्द दराज़ों के साथ- मन्नू भण्डारी- मेरी प्रिय कहानियाँ- पृ 43,राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली,1993
8. हरी बिन्दी- मृदुला गर्ग- हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियाँ-पृ.71, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2007
9. अवकाश-मृदुला गर्ग- चर्चित कहानियाँ- पृ.11, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
10. वितृष्णा- मृदुला गर्ग-चर्चित कहानियाँ- पृ. 133, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
11. चर्चित महिला कथाकारों की कहानियाँ – संपादक दिनेश द्विवेदी पृ.7, विद्या बिहार, नई दिल्ली, 1985
12. गुलाब के बगीचे तक – मृदुला गर्ग –पृ 172,नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1994
13. लौटना और लौटना- मृदुला गर्ग पृ 56 , इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली,1983
14. दुनिया का कायदा– मृदुला गर्ग, चर्चित कहानियाँ –पृ. 2 ,सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983
15. मेरा –मृदुला गर्ग, डेफोडिल जल रहे हैं-पृ 57 ,अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976
16. मीरा नाची- मृदुला गर्ग –पृ. 24-25 ,सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
17. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श – जगदीश्वर चतुर्वेदी पृ. 21, मेधा प्रकाशन, 2018
18. सबमें से एक -निरुपमा सेवती –आतंकबीज- पृ. 9, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1975
19. गलियारे – कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. 156, अनादि प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974
20. साल की पहली रात- मेहरुन्निसा परवेज़,नारी मनोविज्ञान विशेषांक – मार्च-अप्रैल, 1971

'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचंद की विधवा-संवेदना

गजराज सिंह
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
राजकीय कन्या महाविद्यालय, मानेसर (गुरुग्राम)

समाज सुधार के दृष्टिकोण से 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने उच्च कोटि का आदर्श प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की कथा में अमृतराय नामक पात्र के माध्यम से मानों प्रेमचन्द जी ने स्वयं समाज से विधवा उद्धार का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है। काशी के आर्य मन्दिर में पंडित अमरनाथ का व्याख्यान सुनते हुए अमृतराय को वैधव्य के भंवर में पड़ी हुई स्त्रियों के प्रति कर्त्तव्य पालन का बोध होता है। अमृतराय एवं उनके मित्र दाननाथ में जब विधवा उद्धार के विषय पर परस्पर चर्चा होती है कि तुम अकेले न्यायपथ पर चलकर सारे संसार का उद्धार नहीं कर सकते। तब अमृतराय सगर्व नेत्रों से देखता हुआ दाननाथ को उत्तर देता है।"आदमी अकेला भी बहुत कुछ कर सकता है। अकेले आदमियों ने ही आदि से विचारों में क्रान्ति पैदा की है। अकेले आदमियों के कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है। गौतम बुद्ध कौन था? वह अकेला अपने विचारों का प्रचार करने निकला था और उसके जीवन-काल ही में आधी दुनिया उसके चरणों पर सिर रख चुकी थी। अकेले आदमियों से राष्ट्रों के नाम चल रहे हैं। राष्ट्रों का अन्त हो गया। आज उनका निशान भी बाकी नहीं मगर अकेले आदमियों के नाम अभी तक चल रहे हैं।" [1]

पत्नी वियोग के पश्चात अमृतराय अपनी पत्नी की छोटी बहन प्रेमा के साथ विवाह के प्रस्ताव को त्याग देते हैं तथा समाज में विधवाओं की दशा सुधारने हेतु प्रतिज्ञा करते हैं। अमृतराय के इस निश्चय से प्रेमा के पिता बदरीप्रसाद बहुत खिन्न होते हैं तथा उनके विचारों के बारे में अपनी पत्नी देवकी को बताते हैं। "मनुष्य में विचार ही सब कुछ है। वह विधवा-विवाह के समर्थक हैं। समझते हैं, इससे देश का उद्धार होगा। मैं समझता हूँ इससे सारा समाज नष्ट हो जाएगा, हम इससे कहीं अधोगति को पहुँच जाएँगे, हिन्दुत्व का रहा-सहा चिह्न भी मिट जाएगा। इस प्रतिज्ञा ने उन्हें हमारे समाज से बाहर कर दिया।" [2]

अमृतराय के विचारों को प्रेमा सम्मान देती है। यद्यपि वह उनके साथ होने वाले विवाह के टूटने से रोते हुए दुख प्रकट करती है। किन्तु वह अपनी सखी पूर्णा को स्पष्टता से कहती है कि अमृतराय की प्रतिज्ञा समाज की उन्नति के लिए बिलकुल ठीक है। वह पूर्णा को यह भी बताती है कि उसकी भी कभी विवाह करने की इच्छा नहीं रही है।

"दीदी के मर जाने के बाद, वह कुछ विरक्त से हो गए थे, बाबूजी के बहुत घेरने पर और मुझ पर दया करके वह विवाह करने पर तैयार हुए थे, पर अब उनका विचार बदल गया हैं। और मैं भी समझती हूँ कि जब एक आदमी स्वयं गृहस्थी के झंझट में न फँसकर कुछ सेवा करना चाहता है, तो उसके पांव की बेडी न बनना चाहिए। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, पूर्णा, मुझे इसका दुख नहीं हैं, उनकी देखा-देखी मैं भी कुछ कर जाऊँगी." [3] पंडित वसन्तकुमार की गंगा नदी में डूबने से मृत्यु हो जाती है तथा विवाह के तीन वर्ष बाद ही पूर्णा अपनी युवावस्था में विधवा हो जाती है। उधर बदरीप्रसाद अपनी पुत्री प्रेमा का विवाह अमृतराय के मित्र दाननाथ से कर देते हैं। निराश्रित पूर्णा को बदरीप्रसाद की आज्ञा से उनके घर में आश्रय मिल जाता है। बदरीप्रसाद का पुत्र कमलाप्रसाद, पूर्णा को गलत निगाह से देखता है किन्तु पूर्णा अपनी पवित्रता पर अडिग रहती है। इतना ही नहीं कमलाप्रसाद तो अमृतराय द्वारा विधवा स्त्रियों के आश्रय हेतु खोले गए वनिता आश्रम की भी निन्दा करता है। वह अपने पिता बदरीप्रसाद को बताता है कि वनिता आश्रम खोलकर अमृतराय ने धन कमाने का नया ढंग निकाला है।"वनिता आश्रम में विधवाओं का पालन-पोषण किया जाएगा। उन्हें शिक्षा भी दी जाएगी। चन्दे की रकमें आएँगी और यार लोग मजे करेंगे। कौन जानता है, कहाँ से कितने रुपए 1.आए। महीने भर में एक झूठा–सच्चा हिसाब छपवा दिया। सुना है कई रईसों ने बड़े-बड़े चन्दे देने का वचन दिया है। पाँच लाख का तखमीना है। इसमें कम-से-कम पचास हजार तो यारों के ही हैं। वकालत में इतने रूपए कहाँ इतनी जल्द मिल जाते थे।' [4] कमलाप्रसाद अपने षड्यंत्र में दाननाथ को भी सहभागी बना लेता है। वह दाननाथ द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत कराते हुए अमृतराय के नेक कार्य में बाधा डालने का हर संभव प्रयास करता है। दोनों अपनी तरफ से पूरी कोशिश करते हैं कि अमृतराय को समाज से वित्तीय सहयोग प्राप्त न हो सके। एक दिन तो अमृतराय के व्याख्यान में रुकावट डालकर कमलाप्रसाद हिंसा का आश्रय लेता हुआ अमृतराय एवं उसके सहयोगियों के प्राणों का प्यासा बन जाता है| उस दिन प्रेमा के मंच संभालने पर बमुश्किल अमृतराय की जान बचती है। प्रेमा के व्याख्यान से पूरी सभा मंत्रमुग्ध हो जाती है तथा वह अमृतराय द्वारा हारी जा चुकी बाजी को जीत में परिवर्तित कर देती है। "समूह में ही अच्छे कामों का नाश होता है और बुरे कामों का भी। कितने मनुष्य तो घर से रुपए लाए। सोने की अंगूठियो, ताबीजों और कंठों का ढेर लग गया, जो गुंडों की कीर्ति को उज्जवल कर रहा था। दस-बीस गुंडे तो प्रेमा के चरण छूकर घर गए। वे इतने प्रसन्न थे, मानों तीर्थ करके लौटे हों| सभा विसर्जित हुई तो अमृतराय ने प्रेमा से कहा – यह तुमने क्या अनर्थ कर डाला, प्रेमा? दाननाथ तुम्हें मार ही डालेगा।" [5]उधर पूर्णा का कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा के साथ बातचीत में अच्छा समय व्यतीत होने लगता है किन्तु कमलाप्रसाद की नीचता भरी हरकतों से परेशान होकर एक दिन वह उनका घर छोड़ने का मन बना लेती है। इसी बीच कमलाप्रसाद प्रेमा के खत एवं उससे मिलाने का झूठा बहाना बनाकर, पूर्णा को अपने साथ तांगे में बिठाकर, उसी दिन एक निर्जन बगीचे में ले

जाता है तथा उसके साथ जबरदस्ती करने की कोशिश करता है।"पूर्णा ने कमला की ओर आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा- कमला बाबू मैं हाथ जोड़कर कहती हूँ, मुझे तुम यहाँ से जाने दो, नहीं तो अच्छा न होगा। सोचो अभी एक मिनट पहले तुम मुझसे कैसी बातें कर रहे थे? क्या तुम इतने निर्लज्ज हो कि मुझ पर बलात्कार करने के लिए भी तैयार हो? लेकिन तुम धोखे में हो। मैं अपना धर्म छोड़ने के पहले या तो अपने प्राण दे दूंगी या तुम्हारे प्राण ले लूँगी।" [6]पूर्ण हिम्मत करके वहाँ पड़ी एक कुर्सी को कमलाप्रसाद के मुहँ पर मारकर, उसके चंगुल से स्वयं को बचाती है। तत्पश्चात एक बूढ़े राहगीर की प्रेरणा से वह अमृतराय द्वारा विधवा स्त्रियों के आश्रय हेतु बनाए गए वनिता आश्रम में शरण लेती है| इस घटना की खबर पूरे शहर में आग की भाँति फ़ैल जाती है। अब दाननाथ को भी अपने किए गए कार्यों पर पश्चाताप होने लगता है। वनिता आश्रम पहुँचकर वह अमृतराय के समक्ष अपनी भूल पर पछतावा व्यक्त करता है। " लेकिन न जाने क्यों शादी होते ही मैं शक्की हो गया। मुझे बात-बात पर सन्देह होता था कि प्रेमा मन में मेरी उपेक्षा करती है। सच पूछो तो मैंने उसको जलाने और रुलाने के लिए तुम्हारी निन्दा शुरू की।" [7]वनिता आश्रम में अमृतराय के साथ घूमने के दौरान विधवा स्त्रियों को विभिन्न कार्य-व्यापार करते देखकर तथा एक बगीचे में पूर्णा को कार्य में मग्न एवं भक्ति से परिपूर्ण देखकर दाननाथ को असीम आनन्द प्राप्त होता है। वह अमृतराय के नेक कार्यों में बाधा डालने पर, स्वयं को दोषी समझते हुए, उससे क्षमा याचना भी करता है। इस कथा में प्रेमचंद जी ने विधवा-जीवन की समस्याओं के प्रकटीकरण के साथ-साथ वैधव्य जीवन का समाधान भी प्रस्तुत किया है। विधवा-जीवन को अभिषाप मानने वाली स्त्रियों को संदेश दिया है कि समाज में वनिता आश्रम स्थापित करने वाले अमृतराय जैसे व्यक्ति भी मौजूद हैं जिसके माध्यम से वह भी सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकती है।

****

संदर्भ

1.प्रेमचंद, प्रतिज्ञा, अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- 2012, पृ०स०-7
2.वही, पृ० स०- 11
3.वही, पृ० स०- 15
4.वहीं, ० स०- 36-37
5.वही, पृ० स०- 71-72
6.वही, पृ० स०- 94
7.वही, पृ० स०- 111-112

कंजर समाज और महिला सशक्तीकरण का मजबूत दस्तावेज है 'रेत' उपन्यास

कनकलता श्रीवास्तव
शोधार्थी,हिंदी विभाग
लॉयला कॉलेज, चेन्नई-600034मो.8939307725

शोध सारांश- प्राचीन भारतीय समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान था। वैदिक काल में स्त्रियों का काफी सम्मान था। अथर्ववेद में स्त्री को घर की सम्राज्ञी बताया गया है- **"नववधू तू जिस घर में जा रही है वहां की सम्राज्ञी है। तेरे सास, ससुर, देवर व अन्य व्यक्ति तुझे सम्राज्ञी समझते हुए आनंदित होंगे।"**[1] इस समय की विदुषी महिलाओं में गार्गी, सूर्या, अपाला आदि का नाम आज भी प्रसिद्ध है। तत्कालीन महिलाओं की सम्मानजनक स्थित का उल्लेख करते हुए लिखा है कि **"वेदों में स्त्रियों का उल्लेख सम्मानजनक ढंग से किया गया है। ऋगवेद की ऋचाओं में लगभग 414 ऋषियों के नाम मिलते हैं, जिनमें 30 नाम महिलाओं के हैं। स्त्रियाँ वेद शिक्षित तथा युद्धकला में निपुण हुआ करती थीं।"**[2] इसके बाद मनुस्मृति में स्त्री को पूज्यनीय बताते हुए लिखा है कि **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"3** हालांकि समय बदलने के साथ समाज में नारी की स्थिति दयनीय होती चली गई। भले ही छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने इसे श्रद्धा का पर्याय बताते हुए लिखा है **"नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।"**[4] लेकिन द्विवेदीयुगीन कवि मैथिलीशरण गुप्त औरत को अबला मानकर यशोधरा में लिखे हैं कि **"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी।"**[5] धीरे-धीरे औरत की स्थिति बद से बदतर होती गई। मौजूदा दौर में नारी का जीवन कांटों भरा है। खासतौर पर जनजातीय महिला का। भगवानदास मोरवाल का रेत उपन्यास अनेक यातनाओं को सहने के बावज़ूद अपने समाज की संस्कृति को ज़िंदा और बरकरार रखने वाली कंजर समाज के नारी के संघर्ष और सफलता की कहानी है। सभ्य समाज और प्रशासन की दोहरी मार झेलते हुए उपन्यास की नायिका रुक्मिणी के धंधा करने वाली बुआ से लेकर विधायक और मंत्री बनने तक की संघर्षमय-यात्रा की यह गाथा कंजर समाज की महिलाओं के संघर्ष से सफलता तक की कहानी बयां करती है।

बीज शब्द- रेत, कंजर समाज, नारी, संघर्ष, सफलता, मत्था ढकाई आदि।

मूल शोध- कथा साहित्य में उपन्यास विधा निरंतर प्रगति करते हुए आज यथार्थ के धरातल पर पहुच गई है। पिछले कुछ दशकों से इसने हाशिए का जीने वालों के संघर्ष से लेकर सफलता तक को यथार्थ रूप में उजागर करना शुरू कर दिया है। आज भारतीय संविधान के तहत मान्यता प्राप्त जनजातीय समाज की सभ्यता संस्कृति, परंपरा और धारणा आदि को केन्द्र में रखकर कथाएँ कही जा रही हैं। जनजातीय जीवन पर भगवानदास मोरवाल का रेत उपन्यास अपने आप में एक नायाब उपन्यास है। भगवानदास मोरवाल का यह उपन्यास राजस्थान एवं हरियाणा के सीमावर्ती इलाके में बसने वाले कंजर आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। इसे रेखांकित करते विकिपिडिया पर लिखा गया है कि **"हिन्दी कथा में अपनी अलग और देशज छवि बनाए और बचाए रखने वाले चर्चित लेखक भगवानदास मोरवाल के इस नये उपन्यास के केन्द्र में है- माना गुरू और माँ नलिन्या की संतान कंजर और उसका जीवन। कंजर यानी काननचर अर्थात जंगल में घूमने वाला ।"**[6] उपन्यास कंजर आदिवासी महिलाओं के सामाजिक ताने-बाने का मजबूत ढ़ाचा प्रस्तुत करता है। इसमें कमला सदन की सबसे खूबसूरत महिला रूक्मिणी

कंजर की कथा को लेखक ने खास तौर पर अपने औपन्यासिक फलक पर उकेरने का प्रयास किया है। यह समाज खुलकर वेश्यावृत्ति का धंधा करता है। यही इनकी रोजी-रोजगार का साधन है, परंतु यह धंधा करना इनके लिए कभी भी आसान नहीं रहा है। इस समाज की स्त्रियां सबसे ज्यादा त्रासदी का शिकार होती हैं। तात्कालिक प्रशासन इनके पुरुषों को छोटे-मोटे अपराधों में फंसा कर जेल में डाल देता है तथा उनकी रिहाई के बदले कंजर आदिवासी महिलाओं शारीरिर शोषण करता है। सरकार इनके ऊपर पाबंदियाँ लगा रखी है। बिना नजदीकी थाना को सूचना दिए समाज के लोग अपने गांव से बाहर तक नहीं जा सकते। रोज थाने में हाजिरी लगानी पड़ती है। इस व्यवस्था से चिढ़कर कंजर आदिवासी महिला कहती है कि **"इसका मतलब है रजिस्ट्री का टंटा अभी चलता रहेगा। अपने मर्दों को हवालात से छुड़वाने के लिए जमानत के नाम पे दरोगांओं के बगल में सोना पड़ेगा?"**[7]

आए दिन इस समाज की महिलाओं पर गाज गिरती रहती है। सभ्य कहा जाने वाला समाज इनको महज भोग-विलास की वस्तु समझता है। प्रसासन से लेकर धनाढ्य वर्ग तक, नेता से लेकर मंत्री तक इनको भोगना चाहते हैं। इस नरक से मुक्ति पाने के लिए समाज की महिलाएं हर जगह गुहार लगाती हैं, लेकिन इनका जीवन और संघर्षमय और कष्टकारी होता चला जाता है। इस इलाके में जो भी थानेदार आता है वह इनका भरपूर शोषण करता है। समाज में एक धारणा बनी हुई है कंजर मतलब अपराधी और धंधा करने वाला समाज। इसी कारण इनके उपर अत्याचार और बढ़ता चला जाता है। लेखक ने इसका बखूबी वर्णन करते हुए लिखा है कि **"धर्मपुर थाने में केहर सिंह थानेदार का नहीं, साक्षात यमराज के प्रतिरूप में तबादला होकर आया है। इतनी पाबंदी तो यह अंग्रेजी अफसर भी नहीं लगा रहे हैं, जिन्होंने कानून बनाया है।"**[8]

अपने ही देश में अपने ही लोगों के बीच यह कंजर आदिवासी समाज गुलामी भरा जीवन जीने के लिए मजबूर है। जितना शोषण एवं अत्याचार ब्रिटिश हुकूमत ने इन आदिवासी महिलाओं पर नहीं किया उससे ज्यादा शोषण भारतीय थानेदारों द्वारा किया जा रहा है। उपन्यास के फलक पर लेखक ने इन आदिवासी महिलाओं की त्रासदी को उन्हीं के मुँह से उजागर करवाया है **"कस्तूरी बुआ तो सुनते ही लावा सी फूट पड़ी "यह देसी फिरंगी हमें परेड के लिए नहीं, हमारी छातियां नापने के लिए बुला रहा हैं।"**[9]

कंजर आदिवासी समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज में दो प्रकार की महिलाएँ हैं एक बुआ जो धंधा करती है और दूसरी भाभी जो ब्याह करके घर बसाती है। इस भाभी जैसी स्त्रियों की बोली लगती है। उसके रूप एवं सुंदरता के हिसाब से कीमत चुकता करके ब्याह कर लिया जाता है। यह महिला पूरे घर परिवार की चाकरी करती है। जो स्त्री खिलावड़ी या बुआ बन जाती है वह शादी नहीं कर सकती इस संदर्भ में उपन्यास की प्रमुख पात्र रुक्मिणी नरेट वैद्यजी से कहती है कि **"घर बसाना इतना आसान नहीं है वैद्य जी। और जब घर ही बसाना था तो क्यों बनी खिलावड़ी? ब्याह रचा के अपने संतो भाभी की तरह पूरे घर की चाकरी ना कर रही होती?"**[10] इस समाज का पुरूष कोई काम धंधा नहीं करता है। दिनभर दारू के नशे में धुत रहता है। घर परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी महिलाओं पर ही होती है। रूकमिणी इस कंजर समाज की प्रगतिवादी सोच की महिला है। इनके समाज में धंधा करने से पहले मत्था ढकाई की रस्म की जाती है। इस रस्म में संभ्रांत परिवार का कोई व्यक्ति मोटी रकम देकर व्याह जैसा संस्कार पूर्ण करता है। मत्था ढकाई के बाद ही कुंवारी लड़कियाँ धंधे में उतर पाती है। उनको सामाजिक मान्यता मिल जाती है। मत्था ढकाई करने वाला पुरुष अपनी खिलावड़ी के पास जब चाहे बिना पैसे दिए रात बिता सकता है। उस व्यक्ति का जमाई की तरह मान किया जाता है। इस प्रथा का विरोध करते हुए रुक्मिणी कंजर कहती है कि **"वैद्यजी रुक्मिणी नहीं पड़ती इस झमेले में। अपना तो साफ कहना है कि ग्राहक को ग्राहक ही समझना चाहिए। मैं नहीं पालती इस दामाद-जमाई का टंटा। जिसे शौक है पाले। अरे यह क्या बात हुई कि एक बार मत्था ढकाई क्या करें, उम्र भर उसकी गुलाम हो गई। .....और वैद्यजी, अगर मत्था ढकाई की उसने रकम दी है तो बदले में मैंने भी उसे अपनी आबरू हवाले की है। किसी ने किसी पर एहसान नहीं किया।"**[11] वैसे तो सभ्य समाज के लोग आए दिन अपनी हवस बुझाने के लिए इनकी बस्तियों में पड़े रहते हैं लेकिन अपने घर के आस-पास कंजर आदिवासी महिलाओं को भटकने देना नहीं चाहते। कंजर आदिवासी समाज में मान प्रतिष्ठा पाने के लिए लालायित रहता है। पैसे-रुपए के बल पर सभ्य समाज की बस्तियों के आस-पास जब यह बसना चाहता है तब सभ्य समाज इनको मुख्यधारा से जुड़ने से रोकता है। उनका कहना है कि कंजर सभ्य समाज की बस्तियों के पास रहेंगे तो उनकी बहन-बेटियों पर बुरा असर पड़ेगा। कंजर आदिवासी समाज गाजूकी नामक बस्ती में अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ते हुए जीवन-यापन करता है। गाजूकी तिराहे पर सभ्य समाज की बस्तियां हैं। वहीं कंजर आदिवासी समाज जमीन खरीद कर घर बना कर दुकान-दौरी डालकर जीवन बिताना चाहता है। इस पर एतराज़ जताते हुए सभ्य समाज के लोग पुलिस बुला लेते हैं। यह देखकर कंजर आदिवासी समाज की मुखिया कमला कहती है कि **"असल बात वो नहीं है दरोगा जी कुछ और है.... सुनोगे?.....असल बात यह है दरोगा जी की तिवारे पर आते हुए इन्हें लगता है डर, कि कहीं इनकी बहू बेटियाँ, जिन पर बुरा असर पड़ने की दुहाई दे रहे हैं, देख ना ले। किसी दिन वह इन्हें रंगे हाथ पकड़ ना ले।"**[12]

कंजर समाज से होने के बावजूद रुक्मिणी का उठना बैठना बड़े लोगों के बीच में है। उसकी दोस्त सावित्री मल्होत्रा राजनीतिक पार्टियों से जुड़ी हुई है। वह रुक्मिणी को एक गुरु मंत्र देती है कि अपने रूप और

सौंदर्य के बल पर बड़ी से बड़ी ताकत हासिल की जा सकती है। वह स्वयं अपने पति और बच्चों को छोड़कर मुरली नामक व्यक्ति की रखैल है। जो काम कंजर अपनी आर्थिक जरूरत के लिए करते हैं वही काम सावित्री बाई अपने को समाज में ऊँचा दिखाने के लिए करती है। वह भी कंजर समाज से उतनी ही नफरत करती है लेकिन कंजर समाज के पास वोट बैलेंस है। इसके लालच में कंजर समाज की सबसे ताकरवर एवं सुंदर हुस्न वाली महिला रुक्मिणी से जुड़ाव रखती है। वह रुक्मिणी को समझाते हुए कहती है कि **"हमारी सबसे बड़ी अमानत हमारी यह देंह ही तो है। सोच! हमारे पास यह नहीं होती, तो क्या है हमारे पास? अपनी देह की तू खुद मुख्तार है इससे आगे मैं क्या कर सकती हूँ।पर बाई जी इसी देह से तो मैं पीछा छुड़ाना चाहती हूं।"**[13] सावित्री मलहोत्रा का गुरू मत्र पाते ही रुक्मिणी की तरक्की होनी शुरू हो जाती है। रुक्मिणी कंजर ना केवल अपना जीवन सुधारती है बल्कि अपने समाज की महिलाओं का भी जीवन सुधारने में सफल होती है **"जिला जनजाति महिला प्रकोष्ठ की प्रमुख बनते ही रुक्मणी ने गाजुकी की काया पलट दी। जिन रास्तों से गुजरते हुए मुँह पर डाटा लगाना पड़ता था, इसमें ईटों के खड़ंजे बिछवा दिए गए।"**[14]

राजनीत की बागडोर हाथ आते ही रुक्मिणी कंजर अपने क्षेत्र की ना केवल विधायक बनती है बल्कि उप मंत्री भी बना दी जाती है। राज्यपाल के साथ खड़ी होकर रुक्मिणी कंजर अपने पद की शपथ लेती है **"मैं रुकमणी कंजर, सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूँगी तथा भारत की प्रभुता और अखंडता और अछुण्ण रखूँगी। मैं रुक्मिणी राज्य के मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों का श्रद्धा पूर्वक और शुद्ध अंत:करण से निर्वहन करूँगी तथा मैं भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना सभी प्रकार के लोगों के प्रति संविधान और विधि के अनुसार न्याय करूँगी।"**[15]

रूक्मिणी कंजर अपने हुनर का प्रयोग करना जानती है। वह खेलावड़ी है नेताओं, पुलिसकर्मियों को कैसे चकमा देना है वह बखूबी जानती है। वह देखती है कि पुरूष समाज पराई नारी की देंह को भोगने के लिए कितना मतवाला है वह उसी का फायदा उठाती है अपने रूप सौंदर्य के बल पर भगवा पार्टी का एम.एल.ए. का टिकट अपने नाम करवाती है। वह अपनी इस सफलता को अपने मित्र वैद्यजी से कहती है कि **"वैद्यजी अब जाकर पता चला है कि ताकत चाहे दौलत की हो या रूप और देह की वह कितनी बड़ी होती है। अगर इसमें से एक भी आपके पास है तो समझो आप से बड़ा ताकतवर कोई नहीं है..... और अगर सारी है तो कहना ही क्या..... मेरे पास आज तीनों है।"**[16] इस प्रकार भगवानदास मोरवाल इस उपन्यास की रचना करके समाज में कंजर आदिवासी समाज के महिलाओं के जीवन संघर्ष से अवगत तो कराया ही है साथ ही साथ इस आदिवासी समाज के मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया है। कंजर आदिवासी समाज के तमाम रीति-रिवाज एवं सभ्यता-संस्कृति को लेखक बड़े ही अन्वेषण पूर्वक उपन्यास के फलक पर उतारते हुए चले गए हैं। इस उपन्यास की कथा ब्रिटिश काल से आरंभ होकर आधुनिक भारत तक आती है जिसमें कंजर आदिवासी महिलाएँ निरंतर संघर्ष करते हुए चली आ रही हैं। शिक्षा एवं संविधान की ताकत आज इन महिलाओं को इनके वेश्यावृत्ति जैसे नारकीय धंधे से मुक्ति दिलाने का काम किया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अथर्ववेद 14/14
2. भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति|प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति | Women In History in Hindi - GK in Hindi | MP GK | GK Quiz| MPPSC | CTET | Online Gk | Hindi Grammar (mpgkpdf.com)
3. मनुस्मृति 3/56 (पंडित गोपालदास शास्त्री) पृष्ठ संख्या 76
4. जयशंकर प्रसाद, कामायनी (लज्जा सर्ग), पृष्ठ संख्या 106
5. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृष्ठ संख्या 69
6. https://hi.m.wikipedia.org
7. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 41
8. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 52
9. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 52
10. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 97
11. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 33
12. भगवानदास मोरवाल, रेत, उपन्यास, पृष्ठ संख्या 147
13. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 199
14. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 211
15. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 316
16. भगवानदास मोरवाल, रेत उपन्यास, पृष्ठ संख्या 323

दलित स्त्री चेतना को अभिव्यक्त करती सुशीला टाकभौरे की कविताएं

हरेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक हिन्दी विभाग
एम0 एल0 आर्य कॉलेज, कसबा, पूर्णियाँ

सारांश- हिन्दी साहित्य में दलित कविता समकालीन दौर की सबसे चर्चित विधा है। दलित कविता में एक ओर परम्परागत रूढ़ियों का विरोध किया गया है, तो वहीं दूसरी ओर इन कविताओं में शोषण-उत्पीड़न से मुक्ति के स्वर भी अंतनिर्हित है। दलित कविता मानवीय मूल्यों की पक्षधर है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक दर्शन से प्रभावित दलित रचनाकार इस साहित्य को मुखर स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। दलित कविता स्वप्न देखने वाले सपनों में विश्वास नहीं करती अपितु वह एक अच्छे भविष्य के निर्माण की ओर अग्रसर है। दलित कविता अपने साथ संघर्ष और विरोध दोनों स्वर को साथ लेकर चलती है वह मुख्य रूप से संवाद और क्रांतिदर्शिता के साथ आगे बढ़ कर मुखरित हो रही है। दलित कविता के इसी महत्व पर प्रकाश डालते हुए दलित चिंतक 'अरूष' लिखते हैं ''दलित काव्य एक प्रकार से क्रिटिकल सोसायटी का क्रिटिक बनकर उभरता है जो जीवित संघर्षो के दौरान अवमुक्त अनुभवों और बौद्धिक तर्कशीलता के संयोग से विकसित होता है इसके आशय से वह ऊर्जा निकलती है जो अनुभवों को व्यक्त करने की नैतिकता और साहस को पोषण देती है।''[1]

हिन्दी कविता में दलित स्त्री के स्वर को सामने आने में एक लम्बा समय लगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्राचीन काल से ही स्त्रियों को स्त्री और दलित स्त्री के नाम पर भारतीय पुरुषसत्तात्मक समाज द्वारा बनायी गयी व्यवस्था के आधार पर घर की चारदीवारी में रखा गया। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर का दलित जागरण आन्दोलन हिन्दी प्रदेशों में लगभग 1980 के दशक के बाद प्रारम्भ हुआ। हिन्दी साहित्य में 20वीं सदी के अंतिम दशक में दलित स्त्री कविता का प्रारम्भ हुआ। 20 सदी के अंत में प्रारम्भ हुआ दलित स्त्री विषयक कविता का स्वर 21वीं सदी में अनवरत रूप से बढ़ता गया। जिनमें प्रमुख दलित कवियित्री इस प्रकार हैं। सुशीला टाकभौरे, कौशल्या वैजयन्ती, कावेरी, नरेश कुमारी, रजतरानी मीनू आदि। समकालीन हिन्दी दलित कवयित्री में सुशीला टाकभौरे का नाम अग्रणी है इन्होंने दलित और स्त्री समाज को अपने लेखन का केंद्र बनाया। अपने लेखन के सन्दर्भ में लेखिका कहती हैं ''मैं अपने लिए नहीं बल्कि सभी के लिए लिखती हूँ। मेरा लेखन मेरी जरूरत है, यह समाज ऋण चुकाने का जरिया है मेरे लेखन का आधार जातिगत अपमान की कचोट और उत्पीड़न की वेदना है। मेरा लेखन दलित विमर्श के साथ स्त्री शोषण की स्थिति को बताने और उससे मुक्ति पाने का आह्वान है।''[2] इससे स्पष्ट है कि कवयित्री अपनी कविताओं में दलित और स्त्री की स्थिति को लेकर चिंतित हैं।

सुशीला टाकभौरे ने साहित्य की सभी विधाओं में साहित्य सृजन किया है। इनका प्रथम काव्य संग्रह में स्वाति बूंद खारे मोती सन् 1993 में प्रकाशित हुआ, इसमें कवयित्री ने स्त्री जीवन के अनुभवों का यथार्थ चित्रण किया है। वर्ष 1994 में सुशीला टाकभौरे का दूसरा काव्यसंग्रह, 'यह तुम भी जानो, सन् 1995 में तीसरा काव्य संग्रह 'तुमने उसे कब पहचाना' और सन् 2013 में 'हमारे हिस्से का सूरज' चौथा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। कवयित्री अपनी कविताओं में दलित स्त्री के आवरण में उन सभी स्त्रियों को अपने लेखन का केंद्र बनाया जो समाज में दलित वर्ग विशेष से होने के साथ ही पुरुषसत्तात्मक बेड़ियों में जकड़ी हुई हैं। वे स्त्रियां चाहे किसी भी जाति वर्ग की हों। सुशीला टाकभौरे के काव्य सृजन के दो प्रमुख दृष्टिकोण हैं जिसके आधार पर इन्होंने काव्य सृजन किया। प्रथम दृष्टिकोण के अंतर्गत इन्होंने सदियों से पितृसत्ता की बेड़ियों में जकड़ी हुई स्त्री को विद्रोह करती हुई दलित स्त्री के रूप में चित्रित किया। द्वितीय दृष्टिकोण के अंतर्गत कवयित्री ने वर्णव्यवस्था आधारित दलित वर्ग विशेष से होने के कारण दलित स्त्री का सामाजिक विदूरपताओं के खिलाफ उसके प्रतिरोध को व्यक्त किया है इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्होंनें अपनी कविता में दलित स्त्री को असहाय, बेबस स्त्री के रूप में नहीं चित्रित किया है बल्कि लेखिका ने स्त्री को सदियों से जकड़ी हुई बेड़ियों को काटकर चेतना सम्पन्न प्रगतिशील दलित स्त्री के रूप में चित्रित किया है। इनकी कविताएं स्त्रियों के सामाजिक न्याय की गुहार के साथ नारी आंदोलनधर्मिता से जुड़ी हैं।

बीज शब्द-मानवीयमूल्य, बौद्विकता, तर्कशीलता, पितृसत्ता, क्रिटिकल सोसायटी, वर्णव्यवस्था, स्मृतिबोध, मापदण्ड, विषमता, मानवतावाद, स्वाभिमान।

मूल आलेख-सुशीला टाकभौरे का काव्य रचना का समय उस दौर का है, जब हिन्दी साहित्य जगत में स्त्री-विमर्श में देह मुक्ति पाने का स्वर चारो तरफ गूँज रहा था, किन्तु स्त्री को दासी बनाने वाले धर्मशास्त्रों के विरोध में कोई स्वर नहीं था। ऐसे समय में इस स्वर को दलित कविता के द्वारा सर्वप्रथम कवयित्री सुशीला टाकभौरे ने उठाया। ''अनुत्तरित प्रश्न'' कविता में सुशीला टाकभौरे ने स्त्री विरूद्ध धर्मशास्त्रों को ध्वस्त करने का स्वर उठाया है-

अगर बन जांऊ मैं/सनातन परम्परा को तोड़ने हेतु
तुम्हारे लिए अभिशाप/गहरे कुंए तक पहुंचा दूं
तुम्हारे चिंतन के आधार ग्रन्थ।[3]

दलित कविता अनुभूति को यथार्थ धरातल पर उकेरती हुई चलती है। उसमें कल्पना का समावेश नहीं होता है। वह संघर्ष और विरोध को साथ समाहित कर आगे बढ़ती है। दलित महिला साहित्यकार सुशीला टाकभौरे ने सर्वप्रथम अपने जीवन चरित्र के माध्यम से दलित स्त्री चेतना को अभिव्यक्त किया है संघर्ष के पथ पर निरंतर आगे बढ़ती हुई समाज के झंझावतों से ऊपर उठकर उन्होंने वर्तमान समय में अपनी प्रखर

लेखनी के द्वारा दलित स्त्रियों को सशक्त करके उनमें शक्ति स्त्रोत का भण्डार कर रही हैं। स्त्री किसी भी समाज की हो सभी की समस्याएं लगभग एक समान होती है किन्तु वर्णव्यवस्था आधारित दलित स्त्री की स्थिति स्त्री के साथ दलित होने के कारण अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक दयनीय होती है। सुशीला टाकभौरे की कविताएं स्मृतिभाव से नहीं अपितु स्मृतिबोध से जुड़ी हैं। उनकी कविताएं भारतीय समाज में स्त्री जाति के लिए बनाएं गए मापदण्डों का खुलकर विरोध करती हैं। अपनी कविता के विषय में कवयित्री लिखती हैं-

मेरी कविता कल्पना नहीं/प्रवंचना नहीं
झूठे ज्ञान का प्रदर्शन नहीं/सत्य के धरातल पर
कठोर बात है।/हृदय का आलोऽन
पीड़ा का क्रन्दन/दुनिया का हाहाकार
अन्याय का संहार/ मेरी कविता है।[4]

लेखिका स्वयं दलित वर्ग की हैं उन्होंने दलित एवं स्त्री दोनों का संन्ताप झेला है। वे अपना प्रेरणा स्रोत डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को मानती हैं। वह समाज के विदूरपताओं से ऊपर उठकर अपने महापुरुषों द्वारा बताए गए रास्तों 'शिक्षित बनों, संगठित रहो, संघर्ष करो' पर चलकर भारतीय समाज के अमर्यादित स्वरूप को समाज के समक्ष रखकर स्त्री चेतना के बीज को अपनी लेखनी के द्वारा पल्लवित कर रही हैं। दलित स्त्रियों के साथ वर्तमान समय में दिन-प्रतिदिन अमानवीय घटनाएं घटित हो रही हैं। वर्तमान समय में विश्व जगत में स्त्रियां ऊँची-उड़ानों को छू रही है। किन्तु हमारे देश के इतिहास के पन्नों में दलित स्त्री शोषण की घटनाएं प्रतिदिन दर्ज हो रही हैं। ऐसे देश में दलित स्त्रियों की स्थिति को लेकर लेखिका चिंतित हैं। वह समस्त समाज के समक्ष 'इतिहास के पन्नों पर उभरे काले धब्बे' कविता के द्वारा दलित स्त्री की स्थिति को लेकर प्रश्न करती हैं। यथा-

यह है स्त्रीकाल/ स्त्री शक्ति का काल
स्त्री सबलता छू रही हैं/ चाँद और सितारों को
स्त्री विश्व में/ कहाँ है मेरे देश की दलित स्त्री
हिंसा उत्पीड़न बलात्कार से पीड़ित
शोषित कमजोर, इंसाफ को तरसती।[5]

हमारे देश की सरकारें दलित स्त्रियों के उत्थान के लिए दिन-प्रतिदिन नये-नये दावे करती हैं। मंचो से घोषणाएं होती हैं लेकिन ये घोषणाएं योजनाएं सत्य नहीं होती हैं। सत्य है तो केवल दलित स्त्रियों के साथ होने वाला शोषण, बलात्कार। लेखिका भारत जैसे विकासशील देश की सरकार की ऐसी घोषणाओं और योजनाओं को अपनी कविता में शब्दबद्ध करने के साथ ही इन घोषणाओं के विरूद्ध सामाजिक ढाँचे को बदलने की मांग करती हैं यथा-

सारे दावे झूठे हैं/ अधूरी हैं योजनाएं, नाकेबन्दी भी
सच है केवल घटनाएं/घटनाओं को रोकना है तो
करोड़ो आंखो से देखो/करोड़ो कानों से सुनकर
घटनाएं घटती हैं/किसी निरीह महिला से
बलात्कार, दलित शोषण, मारपीट हत्याकाण्ड की
बदलना चाहते हो, तो बदल दो
सामाजिक ढांचा/विषमता, वर्चस्व की परम्परांए।[6]

कवयित्री अपनी कविताओं के द्वारा दलित स्त्रियों को भारतीय पुरुषत्ता एवं वर्णाश्रम व्यवस्था की मानसिक गुलामी के आवरण से बाहर निकलकर अपनी शक्तियों को पहचानने के लिए प्रेरित करती हैं। जो दलित स्त्रियां आज भी स्वयं को लाचार, बेबस, निम्न समझती हैं। लेखिका ऐसी स्त्रियों को अज्ञानता के आवरण से बाहर निकलने का संदेश देती हैं क्योंकि उनकी स्थिति में परिवर्तन तभी संभव है जब वह कुण्ठा, भय, अज्ञानता, मनुवादी ढांचे से बाहर निकलेंगी यथा-

संभव तभी है/छोड़ दे यदि कुण्ठा निराशा
मन का भय, अज्ञानता/विकलांग मानसिकता की
बैसाखियां/खड़ी होकर अपने पैरों पर
तौलकर अपनी शक्तियों को/उल्लास के साथ
बढ़ सके आगे यदि तो/पा सकती है
अपनी मंजिल, पार कर सकती है/सब दूरिया।[7]

इन्होंने कविताओं में भारतीय स्त्री के बदलते हुए स्वरूप का पर्दापण समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। भारतीय स्त्री के स्वरूप में इस बदलाव के कारण को लेखिका ने स्पष्ट किया है। भारतीय संविधान जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक को अधिकार प्राप्त है। इसी संविधान ने स्त्रियों को भी अधिकार प्रदान किये हैं जिसे जानकर स्त्रियाँ भी अपने अधिकारों के प्रति सशक्त हो चुकी हैं। आज की स्त्रियों के पलकों में आंसू नहीं है। बल्कि स्त्रियों के लिए बनायी गयी भारतीय सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ उनके भीतर विद्रोह का स्वर अन्तर्निहित हैं। लेखिका अपनी कविताओं में रागिनी, कनक, प्रेम की बात करती हुई स्त्री का चित्रण नहीं किया अपितु वे डॉ0 बी0 आर अम्बेडकर द्वारा प्रदत्त संवैधानिक अधिकारों को जानकर अपने अधिकारों के लिए प्रयत्नशील स्त्री का चित्रण करती है-

लज्जा नहीं, श्रद्धा नहीं/पलकों में अश्रुधारा नहीं
गाती नहीं है रागिनी/न कनक है, न कामिनी
न प्रेम की दो बात है/शिकवा नहीं, न जज्बात है
अधिकार की ये पुकार है।[8]

स्त्री चाहे वह सवर्ण हो या दलित समाज की, दोनों वर्ग की स्त्रियां लिंग भेद का शिकार है यही लिंग भेद समस्त स्त्री जाति को एक स्थान पर ला खड़ा करता है। आज की स्त्री सदियों से निरीह, उपेक्षित शोषित जीवन को त्यागकर पुरुषत्तात्मक समाज के समक्ष अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने लगी है। समस्त स्त्री जाति में आने वाली चेतना के इस विकास को लेखिका ने अपनी कविता में स्पष्ट रूप से शब्दबद्ध किया है-

मेरा उपयोग/मेरा उपभोग
नहीं सह सकती/सदियों से शोषित पीड़ित
अब नहीं रह सकती मैं
मेरा इतिहास है, स्वाभिमान है, गौरव है।[9]

सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में दलित स्त्रियों को सामाजिक प्रवंचनाओं से ऊपर उठकर अपने अधिकारों एवं सामाजिक समानता के लिए प्रयत्नशील स्त्री के रूप में चित्रित किया है आज की दलित स्त्री प्रचलित परिपाटी से ऊपर उठकर समाज में अपना अस्तित्व स्थापित करना चाहती है। उसमें चेतना, अदम्य साहस का प्रवाह विद्यमान है। वह विषमताओं का खुलकर विरोध करती है।

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के विचारों से प्रेरित होकर लेखिका दलित स्त्री का प्रतिनिधित्व करते हुए समाज में समस्त दलित स्त्री के लिए समता और अधिकार की बात करती हैं। आज की दलित स्त्रियां मनुवादी परम्पराओं को त्यागकर मानवतावादी धर्म की पोषक हैं यथा-

कहती है वह/भारत के संविधान की बात
दलित स्त्रियों के/समता और सम्मान की बात
करती है धर्म-समाज के/विषमता का विरोध
डॉ0 अम्बेडकर के विचारों की/समर्थक वह
मानवतावादी धर्म की अनुयायी है।[10]

दलित स्त्री की वर्तमान स्थिति का वर्णन करती हुई लेखिका कहती हैं कि आज की दलित स्त्री बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर द्वारा प्रदत्त अधिकारों जो जानकर अपनी मुक्ति का रास्ता जान गयी है जो सदियों से बन्द था। आज की दलित स्त्री सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तीनों क्षेत्रों में सवर्णों द्वारा निर्धारित किए गए मापदण्डों को तोड़कर अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु आगे बढ़ रही है। वे अपने सुनहरे भविष्य का निर्माण देख अपने महापुरुषों द्वारा बताए गए रास्तों पर चलने की दिशा में अग्रसर हो रही हैं-

खुल गये है दरवाजे/सदियों से बन्द
विषमता, शोषण के अंधेरे में थे हम
देख ली है रोशनी हमने/अब न होंगे फिर ये दरवाजे बन्द
राह दिखा रहे है, हमारे अपने हमदर्द
दिलों पर देकर दस्तक/बढ़ चला है कारवां
क्रांति की दिशा में।[11]

दलित स्त्रियों और सवर्ण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में मुख्य भेद यह कि दलित स्त्री, स्त्री होने के साथ ही वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर दलित होने के कारण सवर्ण स्त्री से कहीं अधिक शोषित है। भारतीय समाज में स्त्री जाति की समस्याएं लगभग एक जैसी ही है। प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में स्त्री जाति को दलितों में भी दलित माना गया है किन्तु आज भी सवर्ण स्त्रियां, दलित स्त्रियों से अपनी श्रेष्ठता आंकती है। यद्यपि वह दलित स्त्रियों से मित्रता करती हैं तो उसमें भी किसी न किसी प्रकार का स्वार्थ निहित होता है। उनके विचारों में ऊँच-नीच, जातिगत भेदभाव की भावना निहित होती है। वर्तमान समय में दलित स्त्रियां सवर्ण स्त्रियों के इस व्यवहार से अवगत हो रही हैं। उन्हें भी उचित-अनुचित का अन्तर समझ आने लगा है। वह भी अब मित्रता करने में सावधानी बरत रही हैं। लेखिका दलित स्त्री के भीतर आ रही चेतना को इस प्रकार प्रस्तुत किया है यथा-

अब समझ रही हूँ मैं/समता-मित्रता की उम्मीद
इस तरह बेकार है/मुक्त होना है मुझे संकीर्णता से
करना है हर बात में बराबरी/जरूरी है अब नया तरीका।[12]

दलित स्त्रियां सवर्ण पुरुषसत्ता के साथ दलित पुरुसत्ता का भी शिकार है घर की चारदीवारी के अन्दर वह दलित पुरूष के शोषण का कम शिकार नहीं है। दलित स्त्री का जीवन स्त्री होने के साथ दलित स्त्री, सवर्ण पुरूषसत्ता, दलित पुरूषसत्ता आदि दोहरेतिहरे शोषण में जकड़ा है। लेखिका अपनी कविताओं में स्त्री-पुरूष समानता की बात करती है। वह कहती हैं कि आज की स्त्री पुरूष को नीचा दिखाकर नहीं अपितु उसकी सहगामिनी बनकर जीवनपथ पर अग्रसर होना चाहती है। सुशीला टाकभौरे की कविताओं में चित्रित दलित स्त्री प्रचलित परिपाटी एवं पारंपरिक संस्कार को छोड़कर सामाजिक बदलाव चाहती है। इसके लिए वह पुरूष जाति में बदलाव चाहती हैं वह कहती हैं-

करती हूँ तुमसे आशा/लौटा दो मेरा विश्वास
सहृदय मित्र बनकर मेरे/चलने दो मुझको भी साथ
बन जाओ ज्योतिराव फुले/मैं सावित्री सी बनकर
अर्पित कर दूँगी जीवन।[13]

लेखिका दलित समाज से हैं। दलित और स्त्री दोनों के संताप के यथार्थ अनुभव को अपनी कविताओं में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है। वह अपने जीवन संघर्ष को दलित स्त्री कविता के पटल पर यथार्थ रूप से रखकर समस्त दलित स्त्री समाज को भविष्य में नयी दिशा प्रदान करने का सफल प्रयास किया है वह कहती हैं-

एक परिवेश की पुत्री हूँ/जो पाया है वही दूँगी
लौटा दूँगी वह सब/जो मिलता रहा अब तक
वर्तमान की पीढ़ी को मैं/भविष्य की दिशा देना चाहती हूँ
प्राची की ओर/जहाँ सूरज उगता है।[14]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में दलित स्त्री को परम्परावादी रूढ़ियों, मनुवादी मानसिकता के आवरण को तोड़कर प्रगतिशील स्त्री के रूप में चित्रित किया है। जो प्रदत्त संवैधानिक मूल्यों के द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर है। लेखिका ने दलित स्त्री को अमर्यादित सामाजिक ढाँचे से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर बनने की दिशा में आगे बढ़ने की दिशा प्रदान किया है। क्योंकि स्त्री के लिए आर्थिक स्वावलंबन वर्तमान समय में अत्यन्त आवश्यक है। आर्थिक स्वावलम्बन स्त्री की मानसिक स्वाधीनता से जुड़ा है। स्त्री जीवन में आर्थिक स्वावलम्बन के महत्व को लेखिका ने 'अपनी बात' कविता में इस प्रकार प्रस्तुत किया है- ''अज्ञानता और अशिक्षा के क्षेत्र में नारी जागरण संबधित राष्ट्रीय स्तर के प्रयत्न किए जा रहे है। आर्थिक स्वावलम्बन भी आज के युग में नारी के लिए आवश्यक बनता जा रहा है जब तक स्त्री आर्थिक और मानसिक रूप से स्वयं को सक्षम नहीं मानती, वह पराधीन ही रहेगी। आत्मविश्वास और आंतरिक प्रेरणा से जब वह जागेगी, तभी वह अपने आपको पूर्ण व स्वाधीन मान पायेगी।''[15] कवयित्री ने अपनी कविताओं में दलित स्त्री को बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर द्वारा प्रदत्त अधिकारों से जागरूक होकर सवर्ण समाज से और दलित पुरूष से स्वतन्त्रता एवं समानता के लिए संवाद करती हुई स्त्री के रूप में वर्णित किया है- इनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी कविताओं में वर्णित दलित स्त्री को संवैधानिक मूल्यों पर चलकर स्वयंपूर्ण बनने की शिक्षा देती हैं। लेखिका अपने साक्षात्कार में दलित स्त्री कविता के सन्दर्भ में कहती हैं- ''ये कविताएं नारी की वर्तमान दलित स्थिति का स्पष्ट चित्रण करती है साथ ही उसे स्वयं पूर्ण बनने का आह्वान करती है।''[16]

****

सन्दर्भ सूची-

1.रंजणगि, डॉ0 शिवगंगा, डॉ0 सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित नारीसंवेदना, उत्कर्ष पब्लिसर्श, एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2020, पृ0सं0 127
2.एन गोहिल, डॉ0 महेद्र कुमार, दलित विमर्श और सुशीला टाकभौरे का साहित्य, उत्कर्ष पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण-2021, पृ0सं0 25
3.पात्रो, जितेन्द्र, काव्यरंग, सुशीला टाकभौरे की सम्पूर्ण कविताएं, प्रलेक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021
4.वही पृ0सं0 25
5.वही पृ0सं0 198
6.वही पृ0सं0 245
7.वही पृ0सं0 208
8.वही पृ0सं0 158
9.वही पृ0सं0 66
10.वही पृ0सं0 210
11.वही पृ0सं0 33
12.वही पृ0सं0 229
13.वही पृ0सं0 142
14.वही पृ0सं0 149
15.एन गोहिल, डॉ0 महेन्द्र कुमार, दलित विमर्श और सुशीला टाकभौरे का साहित्य, उत्कर्ष पब्लिशर्स, कानपुर, प्रथम संस्करण 2021, पृ0सं0 26
16.टाकभौरे, सुशीला, मेरे साक्षात्कार, शिल्पायन एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2016

आंबेडकर की भारतीय-संस्कृति

प्रो. कन्हैया त्रिपाठी

भारत एक सांस्कृतिक देश है और यहाँ की सांस्कृतिक चेतना विश्व में सराहना प्राप्त करती रही है. डॉ. आंबेडकर उस समय जन्म लेते हैं जब भारत औपनिवेशिक सभ्यता के अधीन था, जिसका संपूर्ण झुकाव भारत की तासीर ख़त्म करके एक ऐसी हिंसक सभ्यता की स्थापना करने के लिए था, जो उसके लिए हमेशा उपनिवेश कायम रखने के लिए उसको टूल्स के रूप में मिले. लेकिन हम जानते हैं की भारत में विद्रोह उपनिवेश के खिलाफ़ 1857 में पनप चुका था और अब स्वाधीनता आन्दोलन अपने उत्स की ओर बढ़ने लगा था. डॉ. आंबेडकर उस सभ्यता में अपनी पढ़ाई-लिखाई किए और अपने उद्देश्यों को सबसे अलहदा रखकर अपनी एक अलग दृष्टि से भारत को देखे.

समय हमेशा अपना हस्तक्षेप करता है. व्यक्ति और विचारों का इससे प्रभावित होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है. डॉ. आंबेडकर ने जिस भारत को जिया उसमें औपनिवेशिक सभ्यता थी लेकिन उन्हें उस औपनिवेशिक सभ्यता से ज्यादा कष्ट नहीं था जितना भारत की अपनी सभ्यता में विद्यमान बुराइयों से था. भारत के आधुनिक चिंतकों में बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर का नाम बहुत आदर से लिया जाता है. डॉ. आंबेडकर अपने समय के राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, लेखक, अर्थशास्त्री, न्यायविद्, बहु-भाषाविद्, धर्म-दर्शन के विद्वान और एक समाज सुधारक थे. उनका इतने बड़े पैमाने पर अध्ययन और चिंतन उनको औरों से भिन्न करता है. वह भाषा, राष्ट्र, लोक और राज्य सबपर चिंता करते हैं और साथ ही समता व समानता की भी बात करते हैं. राष्ट्र के बारे में डॉ. आंबेडकर का विचार बहुत स्पष्ट था कि कोई भी राष्ट्र तब तक मजबूत नहीं हो सकता जब तक कि वह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और अभिव्यक्ति रूप से एक न हो.

भारत की विद्रूप संस्कृति के प्रति प्रतिरोध

बाबासाहेब ने अपना जीवन समाज से छूआछूत व अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए समर्पित किया और वह जीवन भर कहते रहे कि अस्पृश्यता को हटाए बिना राष्ट्र की प्रगति नहीं हो सकती. वह समग्रता में जाति व्यवस्था का उन्मूलन चाहते थे और हिंदू दार्शनिक परंपराओं का अध्ययन जब उन्होंने किया तो उनका विचार और दृढ़ हो गया. उनके लिए छुआछूत या अस्पृश्यता गुलामी की प्रतीक रही. अछूत समाज को हिंदू जातियों द्वारा गुलाम बनाया जाना उन्हें रास नहीं आता था. उन्होंने यह बार-बार अभिव्यक्त किया कि अछूतों की मुक्ति पूरे हिंदू समाज को मुक्ति की ओर ले जाती है. वे इस बात से आहत थे कि, 'भारतीय समाज का ताना-बाना अभी जाति-व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण अभी भी जाति के आधार पर होता है. प्रत्येक हिंदू (यहाँ इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जा रहा है) जाति में जन्म लेता है, उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक जीवन का निर्धारण करती है. यह स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है.'[1] यह उनकी प्रतिरोध की चेतना थी. यह उनका बार-बार विरोध था उस व्यवस्था से जो औपनिवेशिक सभ्यता से नहीं आई थी अपितु उसका उदय इसी भारत भूमि से हुआ था. डॉ. आंबेडकर की मानवतावादी सोच और अन्तश्चेतना इसका प्रतिरोध न करे तो क्या करे क्योंकि उन्होंने जब-जब इस पर विचार किया, उन्हें कहीं से उचित नहीं लगी. डॉ. आंबेडकर के वैचारिक बिंब में बहुत सी बातें एकदम स्पष्ट थीं. वह सीधा बोलते थे और स्पष्टवादी थे तो अपनी बात कहने से पीछे नहीं हटते थे. उन्होंने एक बार कहा था, 'जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सके जो उन्हे करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी. अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा.'[2] दूसरी बात उन्होंने कही, जाति प्रथा को बनाए रखने वालों को प्रोत्साहित करना भारत में प्रजातंत्र का प्रोत्साहन न होकर उसके प्रजातंत्र को एक बड़े खतरे में झोंकना होगा.'[3] प्रायः जिस भ्रम में आमजन हो जाते हैं. स्वघोषित शिक्षित लोग भी ज्ञान बघारते हैं और भ्रम को कायम रखने की कोशिश करते हैं, उससे बाबासाहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर का विचार कभी मेल नहीं खाता इसलिए उन्होंने उन चीजों पर कटाक्ष किया. बाबासाहेब ने जितना दलित व दमित समाज जको समझा, वह उसी चेतना के साथ स्त्री समाज की चिंता करते हैं. उन्होंने रूढ़िवादिता, आडंबर और समाज की भेदभाव की रणनीति का खंडन किया, उसे नकारा, अपना विरोध दर्ज किया. इतना ही नहीं, उन्होंने स्त्रियों को उद्वेलित किया और उनके प्रतिरोध में आने पर उन्हीं को श्रेय देने का भी उद्घाटन किया. जनता में उनके द्वारा 1931 में दिया गया वक्तव्य कुछ ओस प्रकार रेखांकित हुआ है. 'डॉ. अम्बेडकर ने एक उत्तेजक भाषण से दलित वर्ग की महिलाओं का संबोधन किया. उन्होंने आवाहन करते हुए कहा-अगर आप अपनी दासता को जड़ से समाप्त करने के लिए परेशानियां तथा कठिनाइयों को झेलने के लिये तत्पर हैं और अगर यह कठिन कार्य करने में मैं सफल हो जांऊ तो इसका श्रेय आप लोगों को होगा.'[4] जब गोलमेज सम्मलेन में बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर ने अपना पक्ष रखा तो उन पर अनेक वैचारिक प्रहार हुए. तत्कालीन बुद्धिजीवी जो गाँधी जी से कुछ ज्यादा ही जुड़े थे, वे डॉ. आंबेडकर को बहुत बुरा समझने लगे. लेकिन भारत की विद्रूप संस्कृति का जो चेहरा डॉ. आंबेडकर को दिखा था, जिसके खिलाफ़ वह अपना प्रतिरोध दर्ज कर रहे थे, उससे वह आश्वस्त थे कि वे जो कर रहे हैं, ठीक कह रहे हैं, ठीक कर रहे हैं. उन्होंने एक बार कहा, 'मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि हिन्दुओं की आने वाली पीढ़ियां जब गोलमेज अधिवेशन का इतिहास पढेंगी तो वे मेरी सेवाओं को सराहेंगी'[5] यह बात उन्होंने जनवरी 1932 में उनके समर्थन में प्रतिरोध की संस्कृति के समर्थक और बाबासाहेब के विश्वासु 114 संगठन जब एकत्रित हुए थे तो कही थी. 30 जनवरी 1932 का जनता पत्र पढ़ें तो पता चलता है कि उन्होंने भेद खोला कि कैसे वे लन्दन में गांधी से चार या पांच बार मिले, कैसे गांधी बड़े रहस्यमय ढंग से पवित्र कुरान पुस्तक हाथ में लिए आगा खां से मिले व दलित वर्ग को समर्थन वापस लेने को कहा और कैसे आगा खां ने ऐसा करने से इन्कार किया. अन्त में उन्होंने अपने समर्थकों से अनुरोध किया कि वे उन्हें खुद को पूज्य न बनाएं, क्योंकि वे स्वयं पूज्य बनाने के क्रम से घृणा करते हैं.[6] डॉ. आंबेडकर ने इस पोल खोलने के क्रम में दो बैटन पर ध्यान केन्द्रित किया है. एक, गाँधी जी ने क्या उनके साथ किया और दूसरी बात, कि वह खुद को पूज्य बनाने से घृणा करते हैं. यद्यपि डॉ. आंबेडकर के मन मुताबिक आज डॉ. आंबेडकर के विचारों को आत्मसात करने की जगह पूज्य बनने का रिवाज ज्यादा प्रचलित हो गया है. ऐसा वह इसलिए कहते थे क्योंकि पूज्य होने/बनने के क्रम में एक ऊंचा होता है एक नीचा. एक पूज्यनीय हो जाता है दूसरा दास. इसी से तो वह घृणा करते थे. भारतीय मानस में निःसंदेह पूजने की प्रक्रिया से सामंतवादी सोच उपजी होगी. डॉ. आंबेडकर इस विद्रूपता को समाप्त करके समान स्थान सबका हो, इस बात का सम्मान करते थे. इसीलिए हमें पुनश्च समझना होगा कि उन्होंने कहा समर्थकों से अनुरोध किया कि

वे उन्हें खुद को पूज्य न बनाएं, क्योंकि वे स्वयं पूज्य बनाने के क्रम से घृणा करते हैं. बाबासाहेब के बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे बार-बार ईश्वर के प्रति आसक्ति को भी नकारते थे. डॉ.आंबेडकर वांगमय का अवलोकन करें, लिखा है कि उन्होंने कहा, 'नवयुग ने आपको जो राजनीतिक अधिकार उपलब्ध कराये हैं उनकी उपेक्षा मत करो. आपका पूरा समाज अब तक पैरों तले रौंदा जा रहा था क्योंकि आपके मन तथा मस्तिष्क मे बेबसी भरी थी. मैं यह भी कहूंगा कि नेता पूजा के विचार, नेता पूजा तथा कर्तव्य की अनदेखी ने हिन्दू समाज का विनाश किया है तथा हमारे देश के पिछड़ने के कारण बनें है.' उन्होंने बताया, 'दूसरे देशों में राष्ट्रीय विपत्ति तथा संकट के समय लोग एकजुट होकर खतरे को टालने के लिए सक्रिय हो जाते हैं और शांति तथा संपन्नता प्राप्त करते है. इसके विपरीत हमारा धर्म हमारे कानों में बार-बार 'मनुष्य कुछ नहीं करता' का राग अलापता रहता है और मनुष्य को निष्क्रिय कर देता है. वह एक बेबस लकड़ी के लट्ठे के समान है. किसी भी राष्ट्रीय संकट के समय ईश्वर के अवतरित होने तथा संकट से उभारने की आशा रखी जाती है. सारांश में, शत्रुओं से एकजुट होकर निपटने के बजाय वे इस काम को करने के लिए अवतार लेने की प्रतीक्षा करते रहते हैं.7 उन्होंने आगे कहा, ''इस दासता का उन्मूलन आपको स्वयं ही करना है। इसके लिए ईश्वर या किसी दैविक शक्ति पर निर्भर न रहें.'[8]

डॉ.आंबेडकर ने हिन्दुओं के भेदभाव वाली भारतीय संस्कृति को भी विद्रूप बताया. वह इसे समझ नहीं पाते थे कि हमारे समाज के लिए यह धरणा पनपी, तो इतनी क्रूर कैसे हो सकती है. एक बार बाबासाहेब ने कहा था, 'हिन्दुओं को उन अत्याचारियों की श्रेणी में रखा जा सकता है जिनकी करनी व कथनी में उत्तर व दक्षिण ध्रुवों की दूरी है. उनके मुंह में राम है तो बगल में छुरी. वे संतों की वाणी बोलते हैं परन्तु उनके कृत्य कसाइयों वाले हैं. वे ईश्वर को सर्वव्यापक मानने का ढोंग करते हैं परन्तु मनुष्यों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार करते हैं उनके संग मत रहो. वे जो चींटियों को तो शक्कर खिलाते हैं परन्तु मनुष्यों को पीने के पानी पर प्रतिबन्ध लगा कर मारते हैं उनसे संपर्क मत करो. आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि इनकी संगत का आप पर क्या दुष्प्रभाव पड़ा है. आपने अपना सम्मान खो दिया है आपने अपना स्तर गंवा दिया है.'[9] इस दर्जे की बाबासाहेब की बात और गुस्सा, जिसके बारे में सोचकर कोई क्रोधित हो सकता है, उन्हें भला-बुरा कह सकता है लेकिन डॉ. आंबेडकर सत्य को जानते थे और उस सत्य को जेहन में रखकर, छुपकर-छुपाकर अपने आत्मा की आवाज़ को नहीं मार सकते थे. वे पुनः कहते हैं, 'अगर वे तुम्हें समानता का स्तर दें तो उन्हें यह डर है कि हिन्दू उन्हें भी निम्न स्तर का मानेंगे. यदि आपको इस लज्जाजनक दशा से मुक्ति पानी है यदि आपको अपने पर लगे कलंक को दूर करना है और इस मूल्यवान जीवन को शोभामित करना है तो उसका केवल एक मार्ग है कि हिन्दू धर्म तथा हिन्दू समाज को व्यर्थ समझकर त्याग दो'[10] शायद यही वजहे रही कि उन्होंने खुद अपने अंतिम दिनों में हिंदू संस्कृति से स्वयं को अलग कर लिया और वे बौद्ध बन गए.

बाबासाहेब का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव -डॉ. आंबेडकर का हिन्दुओं के प्रति कोई द्वेष नहीं था. वे हिंदू धर्म की व्याप्त रुढियों और व्यवस्थाओं से ज्यादा दुखी थे. उन्होंने यह माना कि हिन्दू व्यवस्था ऐसी है जो उन्हें सम्मानपूर्वक जीने से रोकती है. उनके अपने लोगों को दास, अस्पृश्य या नीच या अधम के अतिरिक्त कुछ नहीं मानती है. फलतः बाबासाहेब डॉ, आंबेडकर ने दीक्षाभूमि नागपुर में अपने अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली. उन्होंने हिन्दू धर्म का परित्याग कर दिया. उन्होंने हिंदू धर्म को आइना दिखा दिया कि उनमें इतनी शक्ति नहीं है कि वे उन्हें इस धर्म में आजीवन रोक सकें. उन्होंने कहा, 'जब तक हम हिंदू धर्म के अनुयायी हैं और वह धर्म एक मनुष्य से गंदगी के जैसा व्यवहार करने की सीख देता है, भेदभावपूर्ण बोध हमारे मस्तिष्क में गहरा पैठा है. इसे गिराया नहीं जा सकता अछूतों में आपसी अस्पृश्यता तथा जाति उन्मूलन के लिए, धर्म परिवर्तन ही विष कम करने की उपयुक्त दवा है.'[11] बात फेडरेशन 15 फरवरी 1953 की है नई दिल्ली में एक स्वागत भोज का आयोजन हुआ. विश्व बौद्ध सम्मेलन के महासचिव ने यह राजभोज आयोजित किया था. यह आयोजन 'इन्डो-जापानी कल्चरल एसोसिएशन' जापान के उपाध्यक्ष श्री एम.आर. मूर्ति के सम्मान में किया गया था. डॉ. आंबेडकर भी वहां मौजूद थे. उन्होंने अपने एक संबोधन में कहा, 'विश्व की जो मौजूदा स्थिति है, उसका जहां तक मैं अध्ययन कर पाया हूं उसके आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि संघर्ष का स्वरूप चाहे कुछ भी हो किंतु यह अंततः बुद्ध और मार्क्स के विचारों के बीच होगा.' 'उन्होंने कहा कि, इसी अधिवेशन से मैं जापान, चीन व अन्य पूर्वी देशों की ओर आकृष्ट हुआ हूं.' डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि पूरब, पश्चिम से पहले से ही अधिक महत्वपूर्ण बन गया है, लेकिन मुझे संदेह है कि यदि बुद्ध के उपदेशों को आत्मसात नहीं किया गया तो, एशिया में यूरोप के संघर्ष का इतिहास दुहराया जाएगा. बौद्ध धर्म के अलावा जो धर्म है उन्होंने आत्माओं, कर्मकांडों की समस्याओं पर केंद्रित होकर मनुष्य को भुला दिया है. डॉ. अम्बेडकर ने बताया कि केवल बुद्ध ही ऐसे थे जिनसे आत्मा के बारे में बार-बार पूछने पर वे कहते थे, ''ये सारे तर्क बेकार हैं. आत्माओं का अस्तित्व कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता है. मेरा ध्यान सिर्फ मनुष्यों पर केंद्रित है. मैं मनुष्यों के बीच नैतिक सदव्यवहार को प्रतिष्ठित करना चाहता हूं.'[12] एक विचारवान व्यक्तित्व की यह चिंता और चैतन्यता निःसंदेह भारत में बौद्ध धर्म के प्रति उसकी अपनी निजी राय में जो बारीक सोच थी, उसे दर्शाती है. इसके पीछे वे सारे तर्क बौने पड़ जाते हैं जिसे लोग मिटाकर किसी विशेष धर्म की प्रशंसा करने लग जाते हैं. देखें तो बौद्ध धर्म भी भारत की ही उपज है. यहीं जन्मा, यहीं से कोपलें उसकी खिलीं, यहीं से एशिया सुदूर क्षेत्र में फैला लेकिन उसमें जो एकीकरण की ताकत थी, उसे बाबासाहेब ने महसूस की और वे निःसंकोच जगह-जगह कहते भी रहे. इससे यह भी हमें देखने को मिलता है कि हिन्दू धर्म की कोख से ही बौद्ध धर्म जो निकला उसमें रेसनैलिटी थी. उसने किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष को नहीं देखा अपितु सबके लिए समान सम्मान का अवसर दिया इसलिए उसे लोग पसंद किए, बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर उनमें से एक थे.

आंबेडकर और गाँधी के बीच मतभेद के जो प्रमुख कारण थे उसमें आंबेडकर के अनुसार तार्किक पैमाने पर दोनों की मतैक्यता कभी बन नहीं पा रही थी. गाँधी उन्हें रास नहीं आते थे. कांग्रेस वही कहती थी जो गाँधी चाहते थे. उनकी भारतीयता और भारतीय संस्कृति कुछ और थी, जबकि आंबेडकर को पड़ते हुए ऐसा लगता है कि गाँधी ढुलमुल थे. पाकिस्तान के मुद्दे पर भी आंबेडकर के अनुसार कोई सही निर्णय पर गाँधी कभी नहीं पहुँच पाए. इस सच बोलने का असर कुछ इस प्रकार होता था कि आंबेडकर बार-बार बहिस्कृत भी किये जाते रहे. आंबेडकर ने 11 जनवरी, 1950 को अर्थात् बुधवार की शाम नरेपार्क परेल में बंबई अनुसूचित जाति फेडरेशन की एक सभा में कही थी, 'चूँकि हम सभी चुनावों में कांग्रेस से लड़ रहे हैं इसलिए कांग्रेसी मुझ से इतने नाराज हैं कि उनमें से कुछ तो खुलेआम कहते हैं कि वे किसी को भी संविधान सभा में देख लेंगे लेकिन, मुझे नहीं. वास्तव में, चूँकि हमारी पार्टी की सदस्य संख्या पर्याप्त नहीं थी इसलिए मुझे संविधान सभा में बंगाल से चुनाव लड़ना पड़.....मैंने संविधान सभा में ही प्रवेश नहीं किया था बल्कि बाद में मुझे संविधान के प्रारुपण का अद्वितीय सम्मान भी सौंपा गया था. यह सम्मान मैं अपने लिए उतना नहीं मानता, जितना पार्टी के लिए. हमें अंग्रेजों और मुसलमानों की कठपुतली कहा गया था. लेकिन हमें अंग्रेजों से सौदेबाजी करनी थी, क्योंकि हम स्वतंत्र नहीं थे और अपने हितों की रक्षा करने के लिए

बाध्य थे.'13 उन दिनों डॉ. अंबेडकर कानून मंत्री थे. बतौर कानून मंत्री वह सभा को संबोधित कर रहे थे. उन्होंने कहा कि संविधन प्रारूपण समिति के अध्यक्ष के रूप में उनका चुनाव स्वयं उनके लिए ही अद्वितीय सम्मान नहीं है, बल्कि फेडरेशन को एक राजनीतिक शक्ति के रुप में भी माना गया है....उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उन्हें देश का संविधान बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा जाएगा.'14 डॉ. आंबेडकर कभी भी रहस्य बनाकर किसी भी बात को नहीं रखते थे. उनके साथ कौन था, उनको कौन पसंद करता था और कौन नहीं, इसे वह बहुत ही सहज बोलते हैं. यह भ्रम प्रायः लोगों में बना रहा है कि वह संपूर्ण संविधान के निर्माता बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर थे, इसे उन्होंने स्पष्ट भी किया कि नहीं वह प्रारूपण समिति के सदस्य थे, वह भी एक धड़ा ऐसा भी था जो डॉ. आंबेडकर को नहीं पसंद करता था और उन्हें डॉ. आंबेडकर कभी फूटी आँखों से भी सुहाते नहीं थे. स्पष्ट शब्दों में डॉ. आंबेडकर ने इसीलिए कहा कि उन्हें कभी भरोसा नहीं होता कि उनको प्रारूपण समिति की जिम्मेदारी दी जाएगी और वे इसके लिए कार्य करेंगे.

डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक स्तर पर भारतीय संस्कृति को समझा, राजनितिक स्तर पर समझा, व्यावहारिक स्तर पर समझा और उन्होंने संत समाज की दुर्दशा पर भी विचार किया. उन्होंने कहा, आज कई अस्पृश्य संतों के पास ऐसे कई हस्तलिखित पुरातन ग्रंथ हैं, जैसे हिंदू धर्माभिमानियों के पास भी नहीं होंगे. संत समाज ने अस्पृश्यों को जो ज्ञान दिया है, उसके लिए हमें उनका ऋणी रहना चाहिए. आज संत समाज की स्थिति क्या है? जिन लोगों ने संतत्व स्वीकारा, उससे उन्हें खुद को क्या फायदा हुआ? उन्होंने आज तक क्या कमाया? अपनी ईश्वर भक्ति और ज्ञानप्राप्ति से क्या उनकी अस्पृश्यता खत्म, नष्ट हुई? उन पर लगा अस्पृश्यता का ठप्पा कभी भी धुला नहीं. महार संत, महार ही रहा. महार संत भले कितना ही विद्वान क्यों न हो, वह ब्राह्मण का गुरु नहीं बन सकता, इस तरह के वचन हिंदू धर्म के दिग्गजों ने लिख रखे हैं!15 यह भारतीय संस्कृति उन्हें बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी. भारत की यह कालिख थी उनके लिए. भारत के लिए ऐसे सामाजिक परिवेश उन्हें रोग के रूप में दीखते थे.

कैसी थी डॉ. आंबेडकर की भारतीय संस्कृति?

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों को देखें. डॉ. आंबेडकर के तर्क की कसौटी पर उसे कसकर देखें तो तो बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की मनोभावनाओं को समझना बहुत आसान लगता है. यह पूर्णतया उस दृष्टि का विवेचन नहीं होगा लेकिन सच्चे मायने में देखा जाए तो बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के विचार एक ऐसी प्रवाहमान नदी की भांति थे जो अपने धर में भी सामान प्रवाह रखती है. उनके विचार में सूर्य की रश्मियाँ थीं जो कदाचित बिना भेदभाव के सबको सामान ऊष्मा और अपना सर्वस्व देती हैं. डॉ. आंबेडकर भेदभाव को किसी भी स्तर से पसंद नहीं थे. उन्हें हर व्यक्ति में सहर व्यक्ति के प्रति समान आदर और करुणा की रसधार पसंद थी. ऊँच-नीच के प्रश्न को वह पूरी तरह से मिटा देने के पक्षधर थे. वह अपने साथ हुए भेदभाव को इसीलिए रेखानिक करते हैं उतनी ही बारीकी से और भारतीय संस्कृति में होने वाले भेदभाव को भी उसी आक्रोश के साथ स्पष्टता से रखते हैं. आंबेडकर की भारतीय संस्कृति को समझने के लिए हमें निःसंदेह भारतीय परिवेश में छुपे उन विकृतियों को समझना होगा जो डॉ. आंबेडकर को पसंद नहीं थीं. विडंबना यही है कि आज भी हमारा देश डॉ. आंबेडकर के इतने बड़े आह्वान के बाद भी अपनी विकृतियों को समाप्त करने की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठा पाया. जहाँ उठाया भी, वहां या तो विरोध का सामना करना पड़ा या उदार होकर कुछ सहना ही पड़ा.

****

सन्दर्भ:-

1.https://hindisamay.com/content/7755/1/विमर्श-अस्पृश्यता%20-%20उसका%20स्रोत-भीमराव%20आंबेडकर-विमर्श.cspx

2.बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-35,डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली-1, संस्करण: अगस्त 2020, पृष्ठ-IX

3.वही, खंड 37, पृष्ठ-IX

4.वही या द्रष्टव्य: जनता 17 अगस्त, 1931

5.बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-37, डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली-1, संस्करण: अगस्त 2020, पृष्ठ-71

6.वही या द्रष्टव्य:30 जनवरी 1932 का जनता

7.बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-37, डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नई दिल्ली-1, संस्करण: अगस्त 2020, पृष्ठ-85-86

8.वही

9.वही, पृष्ठ-119

10.वही

11.वही, पृष्ठ 124

12.बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-37, पृष्ठ 446 (द्रष्टव्य: खैर मोडे, वाल्यूम 2, पृष्ठ 63-6)

13. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-37, पृष्ठ 376-377

14. वही

15. बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-38, पृष्ठ 509

नये संविधान की मांग आखिर क्यों?

- राम पुनियानी

डॉ. बिबेक देबरॉय, प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की आर्थिक सलाहकार परिषद् के मुखिया है. जाहिर है कि वे सत्ता के केंद्र के बहुत नज़दीक हैं – शाब्दिक और लाक्षणिक दोनों अर्थों में. हाल में (15 अगस्त, 2023), उनका लेख देश के एक शीर्ष समाचारपत्र में प्रकाशित हुआ. इसमें उन्होंने देश के वर्तमान संविधान के बने रहने पर प्रश्न उठाया. उनके अनुसार, आज का संविधान वह संविधान नहीं है जिसे हमने स्वाधीनता के समय अपनाया था क्योंकि उसमें अनेक संशोधन हो चुके है. उनका यह कहना है कि चूँकि कार्यपालिका संविधान के मूलभूत ढांचे में कोई बदलाव कर सकती और चूँकि संविधान अब बहुत पुराना हो गया है, इसलिए हमें नया संविधान बनाना चाहिए. वे यह भी कहते हैं कि यह संविधान औपनिवेशिक विरासत है और वे इसके कई प्रावधानों पर प्रश्न उठाते हैं जिनमें समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, समानता और स्वतंत्रता जैसे मूल्यों की स्थापना और संरक्षण से जुड़े प्रावधान शामिल हैं. प्रधानमत्री कार्यालय (पीएमओ) ने देबरॉय की राय से आधिकारिक रूप से अपने को अलग कर लिया है परन्तु भारतीय संविधान की उपयोगिता को शंका के घेरे में डालने और उसका विरोध करने का उद्देश्य पूरा हो गया है.

इसके पहले से भी दक्षिणपंथी चिन्तक और नेता यह कहते आये हैं कि भारत का संविधान गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 पर आधारित है, औपनिवेशिक विरासत है और भारतीय मूल्यों को प्रतिबिंबित नहीं करता. सच तो यह है कि दक्षिणपंथी हिन्दू राष्ट्रवादियों को यह संविधान कभी नहीं भाया. यह संविधान गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया एक्ट 1935 की तर्ज पर नहीं बना है. यह संविधान की मसविदा समिति के अध्यक्ष डॉ बी.आर. अम्बेडकर ने नेतृत्व में करीब तीन वर्ष तक चली लम्बी बहसों और कठिन श्रम का नतीजा है. संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद और उसके अधिकांश सदस्य भारत के औपनिवेशिकता विरोधी संघर्ष में रचे-बसे थे. और इसी संघर्ष ने भारत के एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया के शुभारम्भ में महती भूमिका निभाई थी.

बहुलतावादी और समावेशी भारत के पैरोकारों के विपरीत, धार्मिक राष्ट्रवादियों ने इस संघर्ष से दूरी बनाए रखी और उन्होंने उन मूल्यों का भी विरोध किया जो इस संघर्ष से उपजे थे. सन 1949 के 30 नवम्बर को संविधान सभा ने संविधान को पारित किया. इसकी तीन दिन बाद, आरएसएस के मुखपत्र 'द आर्गेनाइजर' ने उसे ख़ारिज करते हुए 'मनुस्मृति' को संविधान की तौर पर अपनाए जाने की वकालत करते हुए एक सम्पादकीय लिखा. इसमें कहा गया था, " किन्तु हमारे संविधान में प्राचीन भारत में हुए अनूठे संवैधानिक विकास का कोई उल्लेख नहीं हैं. मनु द्वारा विरचित नियमों का रचनाकाल स्पार्टा और पर्शिया में रचे गए संविधानों से कहीं पहले का है. आज भी मनुस्मृति में प्रतिपादित नियम पूरे विश्व में प्रशंसा पा रहे हैं और इनका सहज अनुपालन किया जा रहा है. किंतु हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए यह सब अर्थहीन है".

हिन्दू दक्षिणपंथ के उभार के साथ संविधान का विरोध बढ़ने लगा. अटलबिहारी वाजपेयी की सरकार के 1998 में सत्ता में आने के बाद संविधान की 'समीक्षा' के लिए वैंकटचलैया आयोग का गठन किया गया. परंतु इस आयोग का इतना कड़ा विरोध हुआ कि सरकार को उसपर अमल करने का इरादा त्यागना पड़ा.

संविधान के प्रति विरोध अलग-अलग तरीकों और मंचों से किया जाता रहा है. के. सुदर्शन ने आरएसएस का मुखिया बनने के बाद घोषणा की कि भारतीय संविधान पश्चिमी मूल्यों पर आधारित है और इसके स्थान पर भारतीय पवित्र पुस्तकों, जिनमें मनुस्मृति भी शामिल है, पर आधारित संविधान बनाया जाना चाहिए. उन्होंने कहा ''हमें नया संविधान बनाने में सकुचाना नहीं चाहिए क्योंकि हम इसे पहले ही सौ से अधिक बार संशोधित कर चुके हैं". उन्होंने यह भी कहा कि फ्रांस अपने संविधान का अब तक चार बार पुनरीक्षिण कर चुका है. उन्होंने कहा कि संविधान कोई पवित्र ग्रंथ नहीं है बल्कि वह हमारे देश के समक्ष उपस्थित अधिकांश समस्याओं की जड़ है.

समय-समय पर भगवा ब्रिगेड के अलग-अलग सदस्य इसी तरह की बातें कहते रहे हैं. हाल में जब विपक्ष ने इंडिया नाम से एक गठबंधन बनाया तब इस समूह के कई नेताओं ने इस आधार पर इसका विरोध किया कि भारत को इंडिया का नाम अंग्रेजों ने दिया था. भाजपा के एक राज्यसभा सदस्य नरेश बंसल ने तो संविधान में इस शब्द के उपयोग पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा कि यह शब्द भारत की गुलामी का प्रतीक है. संघ के महासचिव दत्तात्रेय होसबोले का मानना है कि भारतीयों के दिलोदिमाग को औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त करना आवश्यक है. ''हमारे देश में यूरोपीय विचारों, प्रणालियों, आचरण और विश्वदृष्टि का कई दशकों से बोलबाला रहा है. स्वतंत्र भारत इनसे मुक्ति नहीं पा सका है."

देबराय और संघ परिवार संविधान के विरोध के मुद्दे पर एकमत हैं. जहां संघ परिवार संविधान के 'पश्चिमी चरित्र' पर प्रश्न उठाता रहा है वहीं देबराय इससे भी आगे बढ़कर स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद आदि जैसे मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगा रहे हैं. इससे यह साफ है कि संघ परिवार को असली परेशानी किससे है. भारतीय संविधान के औपनिवेशिक चरित्र की दुहाई देना ठीक वैसा ही है जैसे पश्चिम एशियाई देशों में मुस्लिम ब्रदरहुड जैसी संस्थाएं स्वतंत्रता और समानता के मूल्यों का इस आधार पर विरोध कर

रही हैं कि वे पश्चिमी हैं. देबराय और उनके जैसे अन्य लोग इस बात से दुःखी हैं कि हमारा संविधान विभिन्न जातियों, धर्मों और दोनों लिंगों के लोगों को समानता देता है.

संघ परिवार मनुस्मृति के युग को भारत का स्वर्णकाल बताता है क्योंकि उस काल में लैंगिक और जातिगत पदक्रम को धार्मिक और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त थी. इसमें कोई संदेह नहीं कि औपनिवेशिक शासन में हमारे समाज के ढ़ांचे में व्यापक परिवर्तन हुए और लैंगिक व जातिगत पदक्रम की समाज पर पकड़ कमजोर हुई. यही वह वक्त था जब श्रमिकों ने अपने संगठन बनाए (नारायण मेघाजी लोखंडे, कामरेड सिंगारवेल्लू). इसी दौर में भगतसिंह जैसे नेताओं ने शासक वर्ग द्वारा आम लोगों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई और यह साफ कर दिया कि इस शोषण को हमें खत्म करना होगा. औपनिवेशिक शासनकाल को हम केवल स्याह-सफेद के चश्मे से नहीं देख सकते. इससे देश का कुछ भला भी हुआ और कुछ बुरा भी. औपनिवेशिक ताकतों ने निःसंदेह देश को जमकर लूटा परंतु उन्होंने ऐसी संस्थाएं भी खोलीं जो महिलाओं और पुरूषों को समान अधिकार देतीं थीं. संघ परिवार और प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार वर्तमान संविधान के स्थान पर नए संविधान के निर्माण के पक्ष में भले ही अनेक तर्क दे रहे हों परंतु उन्हें सबसे अधिक परेशानी समानता के मूल्य से है जिसके पैरोकारों में भगतसिंह और अंबेडकर जैसी विभूतियां थीं और जो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के मार्गदर्शक सिद्धांतों में से एक था.

सन् 1990 तक भारत ने समानता की स्थापना के लिए संघर्ष किया. इस संघर्ष की धुरी था हमारा संविधान और इसमें मददगार थीं नेहरू की देश को आधुनिक बनाने की नीतियां. अब हम रिवर्स गेयर में चल रहे हैं. मंदिर और गाय राजनीति के केन्द्रक बन गए हैं और सभ्यतागत मूल्यों के नाम पर ब्राम्हणवादी मूल्यों को देश पर लादा जा रहा है. इससे हम वह सब खो बैठेंगे जो हमने दुनिया के सबसे बड़े जनांदोलन अर्थात भारत के स्वाधीनता आंदोलन से हासिल किया था.

संविधान का विरोध दरअसल देश को उस युग में वापिस ढकेलने की कवायद है जिसमें जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर असमानता को धर्म की स्वीकृति हासिल थी.

(अंग्रेजी से रूपांतरण अमरीश हरदेनिया; लेखक आईआईटी मुंबई में पढ़ाते थे और सन 2007 के नेशनल कम्यूनल हार्मोनी एवार्ड से सम्मानित हैं)

समकालीन हिंदी कहानियों में चित्रित किन्नर विद्रोह

रामेश्वर महादेव वाढेकर
सहायक प्राध्यापक,हिंदी विभाग
श्री आसारामजी भांडवलदार कला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,देवगांव(रंगारी), तहसील-कन्नड,जिला-औरंगाबाद, (महाराष्ट्र),पिन-431115,मो.-9022561824

प्रस्तावना:-

साहित्य के क्षेत्र में दलित विमर्श,आदिवासी विमर्श,स्त्री विमर्श,किसान विमर्श,बाल विमर्श,वृद्ध विमर्श,वेश्या विमर्श, मुस्लिम विमर्श,अल्पसंख्याक विमर्श, किन्नर विमर्श आदि परिस्थिति के अनुरूप निर्माण हुए।इनमें से किन्नर विमर्श पर तत्कालीन समय बहुत चर्चा हुई,वर्तमान में भी हो रही है। किन्नर समुदाय का प्राचीन काल से शोषण होता आया हैं,आज भी जारी है। वे वर्तमान में अधिकार से वंचित हैं, प्रावधान होने के बावजूद! सिर्फ़ उनपर साहित्य लिखकर कोई मतलब नहीं,उनके भाव को समझना पढ़ेगा।समाज में उन्हें सम्मान देना होगा,तब विमर्श की चर्चा सफल होगी।

हिंदी साहित्य में किन्नर समाज पर अनेक विधा में लिखान हुआ हैं,वर्तमान में भी लिखान जारी है। परन्तु कहानी के माध्यम से किन्नर समुदाय की समस्या पर बेहतरीन चर्चा हुई। कहानी में किन्नर अत्याचार सहता नहीं, विद्रोह करता है।अनेक कहानियां किन्नर की त्रासदी पर लिखी गई। जिनमें प्रमुख कहानियां हैं, 'संज्ञा'-किरण सिंह, 'कुकुज नैस्ट'-कमल कुमार,'कबीरन'-सूरज बडत्था,'मन मरीचिका'-विमलेश शर्मा,'खलीक अहमद बुआ'- राही मासूम रज़ा,'बीच के लोग'-सलाम बिन रज़ाक,'त्रासदी'-महेन्द्र भीष्म, 'लेग'-लवलेश दत्त,'बिन्दा महराज'-शिवप्रसाद सिंह,'ई मुर्दन के गांव'-कुसुम अंसल,'हिजड़ा'-कादंबरी मेहरा, 'इज्जत के रहबर'-पद्मा शर्मा, 'कौन तार से बिनी चदरिया'-अंजना वर्मा,'रतियावन की चेली'-ललित शर्मा,'संकल्प'-विजेन्द्र प्रताप सिंह, 'खुश रहो क्लिनिक'-चांद दीपिका आदि।कहानियों के माध्यम से रचनाकारों ने किन्नर समाज की त्रासदी समाज के सम्मुख रखी। सिर्फ़ त्रासदी बताने से कुछ नहीं होगा,उनके साथ प्रेम भाव से बर्ताव करने की आवश्यकता हैं। उन्हें समझना जरूरी हैं। सिर्फ़ किन्नर समाज पर लिखा साहित्य पढ़कर कुछ नहीं होने वाला, वे विचार आचरण में लाने की नितांत आवश्यकता है। आज भी किन्नर समुदाय पर अत्याचार होता है। उन्हें न्याय नहीं मिलता।यह परिस्थिति बदलनी चाहिए।

समकालीन कहानियों में किन्नर समुदाय का संघर्ष चित्रित हैं,साथ ही विद्रोह! कहानियों के किन्नर पात्र अन्याय सहते नहीं,विद्रोह करते है समाज से।उन विद्रोह को हम निम्न कहानियों से समझने की कोशिश करते हैं।

मनुष्य की हीन मानसिकता प्रति विद्रोह-

किन्नर समुदाय के प्रति समाज का देखने का दृष्टिकोण कल भी हीन था, आज भी हीन है। किन्नर को बहुत से लोग मनुष्य नहीं,जानवर समझते हैं। संघर्ष जन्म से जुड़ा है उनके साथ।उनका अपमानित होना तय है समाज से।उन्हें ज्यादा वेदना हीन मानसिकता से होती है समाज से। वर्तमान में पढ़े-लिखे किन्नर अन्याय सह नहीं रहें,विद्रोह कर रहे हैं।यह समय की मांग भी है।

हीन मानसिकता पर किरण सिंह 'संझा' कहानी से प्रहार करती है। 'संझा' नामक पात्र से किन्नर समुदाय का विद्रोह दिखाया। कहानी में पिता वैद्य जी 'संझा' को बहुत पढ़ना चाहता है,पढ़ाते भी है। किंतु 'संझा' की मां उसके भविष्य को लेकर चिंतित रहती है। कुछ वर्ष पश्चात मां का देहांत होता है। कालांतर से समाज के कई मनुष्य को 'संझा' किन्नर है,समझ आता है।वे उसके तरफ हीन नज़र से

देखते है।एक दिन उसे नग्न करने की कोशिश की जाती है समाज के मनुष्य से। तब 'संझा' मनुष्य की हीन मानसिकता प्रति विद्रोह करती हैं, "न मैं तुम्हारे जैसी मर्द हूं,न मैं तुम्हारी जैसी औरत हूं। मैं वो हूं,मुझमें पुरुष का पौरुष है और औरत का औरतपन ।तुम मुझे मारना तो दूर,अब मुझे छू भी नहीं सकते।"[1]वर्तमान में 'संझा' की तरह किन्नर हीन मानसिकता का विरोध कर रहे हैं। होना भी चाहिएं। किन्नर समुदाय प्रति मनुष्य ने मानसिकता बदलनी होगी,तभी किन्नर सुकून से जीएंगा।

सरकार प्रति विद्रोह-किन्नर समुदाय प्राचीन काल से अधिकार से वंचित रहा। खुद की पहचान समाज में नहीं थी,वर्तमान में भी नहीं। आज संविधान होने के बावजूद उनके अधिकार का हनन होता है,समाज से। वर्ष 2014 तक उनका लिंग निश्चित नहीं था, प्रगति तो बहुत दूर!उन्हें वोट का अधिकार नहीं था,लोकतंत्र के देश में। किन्नर समुदाय के लिए सरकार की ओर से योजना न के बराबर। योजना की घोषणा वर्तमान में होती है, किंतु योजना सिर्फ़ कागज़ पर। ऐसी कई समस्या कमल कुमार ने 'कुकुज नैस्ट'कहानी में प्रस्तुत की हैं। कहानी में किन्नर सरकार प्रति विद्रोह करता है, "सरकार हमें पहचान पत्र देती है क्या? वोट देने देती है क्या?पर हम इस देश में रहते हैं न!इसी देश के नागरिक हुए न!"[2] इक्कीसवीं सदी में किन्नर समुदाय संघर्ष कर रहा है,अधिकार के लिए। किन्नर समुदाय के लिए संविधान में प्रावधान होने के पश्चात सरकार कुछ नहीं करती। समाज नहीं स्वीकारता। किन्नर समुदाय शिक्षित हो,यह न समाज को लगता है,न सरकार को। किन्नर समाज की समस्या पर चिंतन करने की आवश्यकता है,तभी उनमें बदलाव संभव है, अन्यथा नहीं!

अत्याचार प्रति विद्रोह- किन्नर से जन्मत: जुड़ी समस्या है अत्याचार।अत्याचार मूलतः परिवार से शुरू क्षहोता है,समाज से नहीं। वर्तमान परिस्थिति में किन्नर अत्याचार में जल रहा है,कानून होने के बावजूद!यह देश के लिए शर्म की बात है।देश स्वतंत्र हुआ,किंतु किन्नर समाज नहीं। उन्हें संविधान ने बहाल किए मूलभूत अधिकार नहीं मिले। समाज आज भी किन्नर का शोषण कर रहा है शारीरिक एवं मानसिक।तब भी वे किसी को बता नहीं पाते।

किन्नर समुदाय के संघर्ष पर अनेक रचनाकार ने लिखा। वर्तमान में लिखान शुरू है। किन्नर समुदाय पर लिखित सूरज बड़त्था की 'कबीरन'कहानी बहुत चर्चित रही। उन्होंने 'कबीरन' कहानी से किन्नर की त्रासदी बया की है।'कबीरन' को परिवार के सदस्य आश्रम में भेजते है,समाज के कारण।वहां वह सुरक्षित नहीं रहती।उस पर बलात्कार होता है। वह अत्याचार नहीं सहती, समाज से विद्रोह करती है,"पर मैं किसे बताती कि मेरे साथ...कौन विश्वास करता कि हिजड़े के साथ बलात्कार हुआ। कहीं किसी कानून में लिखा है कि हिजड़े के साथ बलात्कार की क्या सज़ा है। समाज न तो हमें स्त्री मानता है,और न ही पुरुष।"3

किन्नर वर्तमान में सुरक्षित नहीं है। खुलेआम उनपर बलात्कार हो रहे हैं। मानसिक शोषण जारी है। दोषी व्यक्ति के खिलाफ़ तकरार दाखिल की, तो भी न्याय नहीं मिलता। उन्हें ही दोषी ठहराया जाता है। समाज ने किन्नर के साथ इन्सान के रूप में पेश आना चाहिए,तभी समाज में सही समानता स्थापित होगी।

परिवार प्रति विद्रोह-किन्नर का साथ न परिवार देता है,न समाज।वह ज़िंदगी बेवारीस बनकर गुज़ारता है। ज़िंदगी का सबसे बड़ा दुख है परिवार से दूर रहना।वह भी कायम का।यह दुरभाग्य किन्नर के जीवन में आता है।सब रिश्तें होने के बावजूद उनसे कोई रिश्ता नहीं रखता।वह सबके लिए मरा हैं। किन्नर समुदाय के पारिवारिक समस्या पर लिखित महत्वपूर्ण कहानी है 'बिन्दा महराज'। शिवप्रसाद सिंह की यह प्रसिद्ध कहानी रही। कहानी में 'बिन्दा महराज' के माता-पिता का देहांत जल्द होता है।'बिन्दा महराज' अकेली जीती है,संघर्ष करके।वह चचेरे भाई की बेटी 'करीमा' से बहुत प्रेम करती है। किंतु उन्हें प्रेम के बदले चचेरे भाई से अपमान मिलता हैं। चचेरे भाई उसे घर से निकाल देते है।' बिन्दा महराज' क्षरोती नहीं,हार भी नहीं मानती। चचेरे भाई से विद्रोह करते हुए कहती है," था ही कौन अपना,जो पैरों में रेशमी बेड़ियां डालकर रोक रखता। मां-बाप एक प्राण-हीन शरीर उपजा कर चले गए।मर्द होता तो बीवी-बच्चे होते,पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता।"[4] वर्तमान में किन्नर को परिवार में रखा नहीं जाता,अपमान की वजह से।एक तो उसे मार दिया जाता है,या किन्नर समुदाय में छोड़ा जाता है। दोन्हों जगह उसका शोषण ही। समाज किन्नर की ज़िंदगी नरक बना रहा है। किन्नर मनुष्य ही तो है। उसके शरीर में जो शारीरिक बदलाव होते है,वह नैसर्गिक। आज के युग में परिवार, समाज को मानसिकता बदलने की जरूरत है,तभी किन्नर का जीवन बर्बाद होने से बचेगा...!

रुढ़ि-परंपरा प्रति विद्रोह- शोषण का दूसरा नाम है किन्नर समाज। जन्म से लेकर मृत्यु तक किन्नर का शोषण होता है परिवार एवं समाज से। परिवार,समाज की त्रासदी से मुक्ति पाने हेतु वे किन्नर समुदाय में शामिल होते है,इच्छा न होने के बावजूद। वहां भी उनका शोषण रूढ़ि-परंपरा के नाम जारी रहता है। वे वहां भी रहना नहीं चाहते,किंतु मजबूरी में रहना पड़ता है। कहीं बार भागने की कोशिश करते है,किंतु सफल नहीं होते। परिणाम अत्याचार ज़्यादा बढ़ता है। दुख भुलने हेतु नशा करने लगते है। वे आज भी जी रहे है,किंतु मृत्यु की अवस्था में।

किन्नर समुदाय के रुढ़ि-परंपरा पर प्रहार करने वाली महत्वपूर्ण कहानी है 'कुकुज नैस्ट'।कमल कुमार कहानी के माध्यम से रूढ़ि-परंपरा प्रति विद्रोह करते है। मनुष्य के जान से बढ़कर कोई परंपरा महत्व पूर्ण नहीं। किन्नर समुदाय में लिंग काटने की परंपरा प्राचीन है। वर्तमान में भी दिखाई देती हैं। किन्नर का लिंग काटते समय अनेक की जान जाती है। लिंग काटने की परंपरा पर कमल कुमार भाष्य करते है,"बिना किसी डाक्टरी सुविधा के,तेज चाकू से एक ही वार से काट दिया जाता है। उसके चार लोग हाथ-पैर को पकड़े रहते हैं।दर्द से कई बच्चों की मौत भी हो जाती है। लिंग काटकर उन्हें कई दिनों सीधा लिटा दिया जाता है।उस पर कई किलों तेल लगाकर डाल दिया जाता है।"[5] आज भी यह परंपरा प्रचलित है। कुछ स्वार्थी लोग किन्नर समुदाय से बिजनेस करना चाहते हैं। इसलिए वे लालदिखाकर कई किन्नर का लिंग काटते हैं,घर पर। परिणाम अनेक की मृत्यु हो रही हैं। परंपरा, बिजनेस के नाम लिंग काटा जाता है,वह बंद होना चाहिएं।इसके साथ ही किन्नर समुदाय की दूसरी प्रथा प्रचलित है वह भी बंद हो।

निष्कर्ष-वर्तमान में परिवार और समाज से किन्नर लढ़ रहा है,हक्क के लिए। समाज में वह पुरुष एवं स्त्री के मध्य बिंदु पर खड़ा है।अपूर्णता के कारणवश समाज उन्हें स्वीकारता नहीं। किंतु शोषण निरंतर करता है। किन्नर समुदाय में परिवर्तन लाना है,तो सरकार ने ध्यान देने की जरूरत है। इसके साथ ही गैर-सरकारी संगठन सहकार्य की आवश्यकता है।

किन्नर समुदाय प्रति समाज की मानसिकता बदलनी जरूरी है,साथ ही उन्हें हरक्षेत्र में प्रतिनिधित्व मिले। तब वे इन्सान के रूप में खड़े होंगे समाज में। ज़िंदगी में संघर्ष कम होगा। वे मुक्त रूप में जिएंगे,समाज में...!

****

संदर्भ संकेत-

1)सं.एम.फिरोज खान- 'थर्ड जेंडर: हिंदी कहानियां',अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन,कानपुर-208001, प्रथम संस्करण-2018,पृ.79

2)सं.सपना सोनकर-'नागफनी',जनवरी-मार्च,2022,त्रैमासिक पत्रिका,नमन प्रकाशन,नई दिल्ली-11002,पृ.197

3)सं.एम.फिरोज खान- 'थर्ड जेंडर: हिंदी कहानियां',अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन,कानपुर-208001, प्रथम संस्करण-2018,पृ.17

4)सं.एम.फिरोज खान- 'थर्ड जेंडर: हिंदी कहानियां',अनुसंधान पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रकाशन,कानपुर-208001, प्रथम संस्करण-2018,पृ.26

5)सं.सपना सोनकर-'नागफनी',जनवरी-मार्च,2022,त्रैमासिक पत्रिका,नमन प्रकाशन,नई दिल्ली-11002,पृ.197

दुलारी

रूपनारायण सोनकर

सेवालाल प्रजापति ग्राम बेनारू का रहने वाला है जो घाटमपुर तहसील के अंतर्गत आता है। इसने बी एस सी तक पढ़ाई दिल्ली विश्वविद्यालय से की है। इसके पिता के पास जमीन थी जिसमें से कुछ जमीन सरकारी सड़क निकलने से उसी में समा गई।तीन बहिनें और माता पिता बहुत ही दयनीय स्थिति में रहने लगे। पूर्व प्रधानमंत्री डॉक्टर मनमोहन सिंह द्वार शुरू की गई मनरेगा योजना जो गांवों के गरीब लोगों के लिए जीवन दायिनी थी जिसको वर्तमान सरकार ने लगभग बंद कर दिया है। प्रथम बार सन उन्नीस सौ चौदह में प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने पार्लियामेंट में कहा था-

''मनरेगा योजना को मैं दफना दूंगा''

वास्तव में ग्रामीण भारत के गरीब लोगों के रोजगार,और उनके सपनों को दफनाने जैसा था। इस योजना से गांवों की गरीबी दर होने लगी थी।उनके बच्चे अच्छे स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरियां पाने लगे थे।इस योजना को पूर्णतया समाप्त ना करके उसका बजट काटकर अपंग बना दिया गया है। सरकार की यह एक अदूरदर्शी सोच है। आज भारत के अस्सी करोड़ लोग सरकार की भीख पर निर्भर हैं।इन गरीब लोगों को भी विकलांग बना दिया गया है। सरकार लोगों को पांच किलो राशन ना देकर उनके बच्चों को नौकरी देते।

इस योजना के अपंग होने से गांव के लोगों को काम मिलना बंद हो गया। ग्रामीण भारत के लोगों के पास केवल एक ही रास्ता बचता हैं कि वे लोग शहर जाकर फैक्ट्रियों,कल कारखानों,दुकानों,और मॉल में काम करें।पैसा कमाकर गांव में निवास कर रहे अपने माता पिता को भेजे ताकि उनका परिवार जिंदा रहे।उसकी तीन जवान बहिनें थी। उनकी शादी का उत्तरदायित्व इसी पर आ गया था। बाहर जाकर नौकरी करना उसके पास मात्र यही एक रास्ता बचा था।वह इसीलिए अपने गांव के साथियों के साथ नौकरी करने मुंबई आया था।

सभी एक साल पहिले मुंबई आए थे। इसी गांव का एक आदमी सल्लू यहां पर एक बल्ब फैक्ट्री में काम करता था। वही सभी को लेकर मुंबई आया था।उसकी सिफारिश पर सभी को मैनेजर ने काम पर रख लिया था। यहां पर वेतन नहीं दिया जाता था।जो जितने बल्ब तैयार करता था उसमे से कुछ रुपए प्रति बल्ब दिए जाते थे। इस प्रकार उनको बारह से पन्द्रह हजार रूपए प्रति माह मिल जाते थे।खाने में लगभग तीन से चार हजार रुपए लग जाते थे बच्चे रुपए अपने अपने घर भेजते थे।

भरोसेलाल पासी बी ए पास था उसके पास कोई भी जमीन जायदाद नही थी।दूसरों के खेतों में मजदूरी करता था। जब कभी उसको काम मिलता था तब वह दस दिनों में दो सौ पचास रुपए के हिसाब से पच्चीस सौ रुपए कमा लेता था। एक माह में उसको केवल दस दिन ही काम मिलता था। उसके परिवार में एक दो साल का लड़का और पत्नी थी। दो हजार पांच सौ रुपए में एक माह गुजारा करना मुश्किल था। इसीलिए वह सभी के साथ मुंबई आया था और फैक्ट्री में काम पर लग गया था।

दुलारी भारद्वाज एक ब्राह्मण परिवार की एक उच्च शिक्षित लड़की है। उसके पास दो छोटे भाई और एक छोटी बहिन है।सभी नाबालिग थे। दोनों भाई पढ़ते थे।एक भाई कक्षा सात दूसरा कक्षा आठ में पढ़ता था।बहिन पांचवीं कक्षा में पढ़ रही थी। मां अक्सर बीमार रहती थी। उसके पिता के नाम जो खेती थी उसके मरने के बाद चाचा लोगों ने कब्जा ली थी। गांव वाले कुछ दिन तक उसके परिवार की आर्थिक मदद करते रहे फिर सभी ने मुंह फेर लिया। उसने बाहर जाकर नौकरी करने की ठान ली।एक तरफ गांव की झूठी लोक लज्जा थी और दूसरी तरफ परिवार को जिंदा रखने के लिए गांव से बाहर निकल कर नौकरी करने की दृढ़ निश्चय।गांव में काना फूसी होने लगी।गांव की एक जवान लड़की गांव के पांच युवा लड़कों के साथ नौकरी करने मुंबई जा रही है।वह दलितों, मुसलमानों ,पिछड़ों के साथ एक कमरे में रहेगी। इनमे सल्लू सिंह ही ऊंची जाति का है बाकी सभी नीची जाति के हैं।

जब अंध विश्वास, अंध धर्म और जातिवाद की ऊंची-ऊंची अग्नि की लाल लाल लपटें उठती हैं तब वे मानव समाज को नष्ट करने की पूरी कोशिश करती है।लेकिन उन्नति के पथ पर उड़ने वाले बादल पानी की वर्षात कर देते हैं और बिनाशकरी दहकती आग की लपटों को बुझा देते हैं ।

दुलारी भारद्वाज दृढ़ता से गांव वालो का सामना करती है।गांव की पंचायत की मीटिंग में बुलाई जाती है।गांव में ढिंढोरा पिटवाया जाता है।दुलारी के गाँव के नवजवानों के साथ मुंबई जाने या नहीं जाने का फैसला पंचायत में होगा। पंचायत का हाल गांव वालों से खचा खच भरा है।आपस में वार्तालाप जारी है।गांव वाले दुलारी को एक अपराधी की तरह देख रहे है हलाकि उसने कोई भी अपराध नहीं किया है। पंचायत एक तालीवानी नियमों का पालन करने वाली पंचायत लग रही थी।जहां पर बिना कोई अपराध किए शक के आधार पर मानव को दंडित किया जाता है।यह भारत है। यहां पर प्रजातंत्र के नियमों के आधार पर फैसले किए जाते हैं।लेकिन ग्रामीण भारत के पंचायती राज सिस्टम में यह पंचायत तालिवानी नियमों का पालन करने जा रही थी।एक युवा असहाय महिला को बिना अपराध किए कठोर दण्ड देने वाली थी।

सरपंच पंडित नोखेलाल नफरत भरी आवाज में कहता है-

''गांव वालो दुलारी भारद्वाज बॉम्बे जाने के लिए कृत संकल्प है। वह किसी का भी कहना नही मान रही है।वह दलितों,पिछड़ों,और एक मुसलमान के साथ बॉम्बे जाने के लिए

अपना सामान बांध लिया। है।इस टोली में मात्र एक ऊंची जाति का युवा है।दुलारी भारद्वाज के इस कृत्य से क्या गांव की इज्जत धूल में नही मिल जायेगी?"

एक गांव पंचायत सदस्य देवीलाल शर्मा कहता है-

''आज तक इस गांव से कोई भी लड़की गैर-युवाओं के साथ इतनी दूर बाहर नौकरी करने नही गई है। इससे पूरे जिले में हमारे ब्राह्मण समाज की बहुत बदनामी होगी।"

दुलारी भारद्वाज इस रूढ़िवादी पंचायत का हिम्मत से सामना करते हुए बोली-

''आप सभी लोग चाहते हैं की मेरा पूरा परिवार भूंखो मर जाए या आपकी भीख पर जिंदा रहे। ये सभी गांव के ही लड़के हैं।उनके साथ मुंबई में नौकरी करने जाना कोई अपराध नहीं है। इसमें गांव की बेइज्जती नाम की कोई चीज नहीं है।दलित, पिछड़े और मुसलमान सभी इंसान हैं।"

सरपंच पंडित नोखेलाल गुस्सा करते हुए बोला-

''यह ग्राम पंचायत ब्राह्मण लड़की दुलारी भारद्वाज को पांच युवा लड़कों के साथ जिनमे दलित,पिछड़े और मुसलमान शामिल हैं ,मुंबई जाने से दृढ़ता पूर्वक रोकती है।दलितों,पिछड़ों और मुसलमानों के साथ एक ब्राह्मण समाज की लड़की अपना धर्म नष्ट करके नही रह सकती है।सर्व प्रथम इस गांव की प्रतिष्ठा को बचाना है। दुलारी भारद्वाज के इस कदम से इस गांव और अन्य गांव की लड़कियां भी दुलारी भारद्वाज के कदमों का अनुसरण कर सकती हैं। गांवों में ऐसी कलुषित सभ्यता और संस्कृति का पदार्पण होगा जो हमारी सदियों से चली आ रही ग्रामीण भारत की सभ्यता और संस्कृति धूल धूसरित हो जायेगी।"

सरकारी सचिव अभिमान धानुक बोला- ''सरपंच जी,आप ऐसा फैसला नहीं कर सकते हैं।यह समाज, प्रजातंत्र और संविधान के विरुद्ध है। इस देश के सभी नागरिकों को कहीं भी नौकरी करने का अधिकार है।कोई भी देश का नागरिक चाहे पुरुष हो या महिला वह अपनी मर्जी से देश के नागरिकों के साथ रह सकती है। उसके साथ खाना खा सकती है और अपनी इच्छानुसार उसके साथ सो भी सकती है। सुप्रीम कोर्ट ने ऐसा आदेश पारित किया है।" ''तुम शूद्र हो इसीलिए शूद्रों का पक्ष ले रहे हो। तुम नीच जाति के लोगों और मुसलमानों को हमारी उच्च जाति की बहिन बेटियों के साथ एक कमरे के अन्दर रहने की छूट दे रहे हो।तुम्हारा यह घिनौना वक्तव्य निंदनीय है।"

"मैं आपके इस आदेश का विरोध करता हूँ ।

मैं आपके इस आदेश पर सरकारी पंचायत सचिव की हैसियत से हस्ताक्षर नहीं करूंगा।"

''तुमको हस्ताक्षर करना पड़ेगा।मेरे आदमी ,मेरे आदेश पर तुमसे मेरे आदेश पर हस्ताक्षर करा कर रहेंगे।तुम हस्ताक्षर अपनी मर्जी से करो या मेरी मर्जी से।"

उसी समय सरपंच के पांच छः लठैत सचिव को घेर लेते हैं। दुलारी भारद्वाज के घर के सामने बहुत सारे गुंडे पहरा देते है कि कहीं वह मुंबई ना चली जाय। पंचायत में मौजूद एक युवा हिम्मत कुर्मी जिसने दिल्ली विश्वविद्यालय से ग्रामीण भारत की आर्थिक सामाजिक दशा और दिशा पर पी एच डी की है। उसने कहा- ''समाज बदल रहा है।बहुत तेजी से प्रगति पथ पर जा रहा है।लड़कियां जातिवाद के बंधन को तोड़ रही है। ग्रामीण भारत की उच्च शिक्षित लड़कियां देश विदेश में नौकरी करने अपने मित्रों के साथ या अकेले जा रही हैं।वे धन कमाकर ग्रामीण भारत के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं।आप लोग मनुस्मृति में व्यक्त समाज विरोधी विचारों का पालन करके समाज और देश का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं।इस वैज्ञानिक युग में ऐसे सड़े गले और मानवता विरोधी विचारों का कोई महत्व नहीं है। ऐसे विचारों को तुरंत दफन कर देना चाहिए।" ''तूने पी एच डी की डिग्री लेकर हमारे धर्मग्रंथों को बदनाम कर रहा है। मनुस्मृति का युग पुनः आने वाला है। एक शूद्र डॉक्टर अंबेडकर द्वारा लिखे संविधान का युग जाने वाला है। तू संविधान को मनुस्मृति से बड़ा बता रहा है।" ''जिस दिन दलित,पिछड़े,आदिवासी, अल्पसंख्यक और गरीब सवर्ण एक हो जायेंगे तब तुम्हारे जैसे अविवेकी लोगों और मनुस्मृति का पता नही चलेगा।"

''देख ! हिंदू राष्ट्र आने वाला है। मनुस्मृति संविधान को हटा देगी। अब उसका राज होगा। देखता नही है एक महराज हिंदूराष्ट्र बनाने के लिए गांवों,शहरो में रात दिन प्रवचन कर रहा है। हजारों लोग चाहे नेता हो या अभिनेता उसकी शरण में जाकर उनका आशीर्वाद ले रहे हैं। तू महा अज्ञानी है।"

'' ऐसे महात्मा जो राष्ट्र को बाटने के कार्य में जुटे हों। विश्व स्तरीय संविधान को हटाने का नारा दे रहे हों। ऐसे फालतू प्रचारकों के खिलाफ एफ. आई. आर. दर्ज करके जेल में डाल देना चाहिए।' ''तू ऐसे संतों की बेइज्जती कर रहा है जो किसी भी आदमी को देखकर उसका नाम और उसके जन्म स्थान का पता बता देता है।" ''फेस रीडिंग एक विज्ञान की कला है जो इस कला में पारंगत होता है वह मनुष्य का फेस देखकर उसका नाम और उसके जन्म स्थान का पता बता देता है। वह आदमी का फेस रीडिंग करने में माहिर है।वह पहाड़ों में निवास करता है। वह पहाड़ों में घट रही विपदाओं को क्यों नहीं रोक पा रहा है।वह वहां से मुंह छिपाकर समतल स्थानों पर चला जाता है।"

हिम्मत कुर्मी पंचायत भवन से बाहर निकल आता है।वह जिला मजिस्ट्रेट और एस. एस. पी. को फोन द्वारा सूचित करता है- ''पंचायत सचिव अभिमान धानुक को सरपंच पण्डित नोखेलाल और उसके गुंडों ने दुलारी भारद्वाज प्रकरण में बंदी बना लिया है।पंचायत के अनैतिक वा कानून विरुद्ध आदेश पर उसने हस्ताक्षर करने से मना कर दिया था।"

डी. एम. और एस. एस. पी. के कान खड़े हो गए। तुरंत गांव बेनरू पर पुलिस फोर्स के साथ धावा बोल दिया। अभिमान धानुक को सरपंच और उसके गुंडों से मुक्त कराया। पण्डित नोखेलाल और उसके सभी लठैतों को अरेस्ट कर लिया गया। दुलारी भारद्वाज और उसके साथियों को नौकरी करने के लिए मुंबई रवाना कर दिया गया।

****

प्रो. दिनेश कुशवाह जी की दो कविताएँ

1. कानपुर की एक मेहतर बस्ती में रहने के दिन याद करते हुए

(गोपाल प्रधान के लिए)

रखा गया इन्हें कुछ ऐसे
कि उन्हें पता ही न चले
कि वे किस नरक में रह रहे हैं।

कुंभीपाक का रौरव कुछ भी
नहीं होगा इतना भयानक
जिस नरक से यहाँ जूझते हैं लोग
माँ-बहन-बेटी-बीवी के साथ।

सिर्फ़ इन्होंने देखा है
कैसी होती है पीब-ख़ून-पेशाब और मैले की नदी।

यहाँ लोग बोतल से करते हैं
वैतरणी पार, वाराह की पीठ पर हाथ रख
सुस्ताते हैं दो घड़ी।

एक अंधे कुएँ में पड़े हैं ये लोग
प्राणलेवा छटपटाहटों के साथ
सोए बिना रात-दिन।

यहाँ विष्णु का पीतांबर और
ब्रह्मा का अंगवस्त्रम् धोता है जो
वह भी है नरक का प्राणी
तांत्रिक अभिचारियों की गाली सुनता हुआ
इस नरक में भी अप्सराएँ तलाशते हैं कुलीन
अपनी शव-साधना के लिए।

यहाँ आरे से चीरे जाते हैं लोग
पेरे जाते हैं कोल्हू में
यहाँ जीते हैं लोग
अपने पेट में पचाते हुए
धरती का हैज़ा।

****

2.महिला सरपंच के निर्वसन घुमाए जाने पर

आपा* मैत्रेयी पुष्पा के लिए

दुहाई देकर निशाना
मछली की आँख में मारा जाता है
और एक स्त्री के
मनमाने इस्तेमाल की
छूट मिल जाती है।

आग लगती है हस्तिनापुर में
और जलता है द्रौपदी का लहँगा
ख़ून हरियाली का होता है
वध मासूमियत का
पंख सुंदरता के नोचे जाते हैं
और सिर्फ़ चिड़िया की आँख
देखने वाले कुछ नहीं देखते।

बोलती औरत को चुप कराने का
एकमात्र हथियार बेहयाई है।

निर्लज्ज लोगो!
दुनिया! आग! हवा! और पानी!
स्त्री ने नहीं बनाया फिर भी
उसी के दम पर सिरजी है दुनिया
उसी के जतन से ज़िंदा है आग
उसी की साँसों से महकती है हवा
स्त्री की आँखों से ही बचा है
धरती का पानी।

****

क्रिकेट की घरेलू पिच पर बैटिंग

(हास्य-व्यंग्य)

रूप नारायण सोनकर

पत्नी सदैव पति पर नजर रखती है
पति अपने मोबाइल फोन पर किससे
बातें करता है
उसकी कितनी गर्ल और मैडम फ्रेंड्स हैं
उसका शक सदैव उनको ढूंढता रहता है
पति के मोबाइल फोन से सारे कॉल्स डिटेल्स
का स्टेटमेंट निकलवा लेती है
पति पर नज़र रखने का
यह एक अचूक औजार है
जिसमे पति बिलकुल नहीं बच पाता है
एक लोहे के कांटे मे मछली की तरह
फंस जाता है
इस वैज्ञानिक युग में
पत्नियां बहुत होशियार हो गई हैं
पति के मोबाइल फोन का कॉल रिकॉर्डर वाला बटन चुपके से दबा
देती है
अपने पति और उसके महिला मित्रों की बातें
बड़ी जलन से सुनती है
पति के घर आने पर
उसके ऊपर शब्दों का
बॉम्ब विस्फोट कर देती है
उसका पति अपनी एक प्रेमिका से
प्रेमालाप कर रहा था
स्वीट हार्ट जब तक
मैं तुमको देखता नही हूं
बहुत ही सुस्त रहता हूं
तुम्हारे द्वारा टच करते ही
छुई मुई की तरह
सिकुड़ने और फैलने लगता हूं
हृदय की धड़कन बढ़ जाती है
आई लव यू आई लव यू की
दोनो ओर से सुरीली टोन निकलती है
लेकिन पत्नी का डर मुझे रन आउट
कर देता है
लेकिन पत्नी का डर
मुझे रन आउट कर देता है
मैं हाफ सेंचुरी से सेंचुरी तक
बनाना चाहता था
लेकिन पत्नी का विकराल रूप
फास्ट बॉलर बनकर
मुझे क्लीन बोल्ड कर देता है
मेरी सास रूपी अंपायर
मुझे आउट करार देती है
मैं मुरझाया हुआ
हाथ मे बैट पकड़े हुए
क्रिकेट मैदान से बाहर
आता हूं

मेरी गर्ल फ्रेंड मेरी हिम्मत
बढ़ा रही है
दूसरी पारी में एक सेंचुरी
ठोकने को कह रही है
मैं तैतीस साल का हूं
हिम्मत नही हारता हूं
वन डे क्रिकेट में
अपने हाथ आजमाता हूं
लोग कहते है की आज कल
तैतीस साल में ही
क्रिकेटर रिटायर हो जाता है
उसकी सफेद दाढ़ी झलकने
लगती है
वह गेंद को फील्ड में
मजबूती से जकड़ नही पाता है
वह बैटिंग करते हुए
जीरो, एक व दो रन में ही
आउट हो जाता है।

*****

The Narrative Trajectory of Omprakash Valmiki's Joothan: The Three Evolutionary Ps Pain, Protest and Progress

Laksheyata Yadav
Ph. D. English Scholar
Central University of Haryana, Mahendergarh
Ph: 9729148988

Autobiography writing is a relatively new tradition in India, unlike the West. The act of narrating one's own life is not traditional in Indian literary culture. Still further, Dalit personal narratives flout the established norms of the genre. Unlike the autobiographies and the various personal narratives by the upper caste Indians, Dalit autobiographies are written with a purpose. Dalit autobiographies in particular and autobiographies in general are selective in recollecting the past through memory. Particularly, the Dalit writer selects certain incidents from her life that suit the larger framework of his/her intended project. Raj Kumar points out that "there are priorities to narrate those events of life which the narrator thinks are significant. Thus, writing an autobiography is a political act because there is always an assertion of the self." (Kumar 3) The non-conformist nature of Dalit autobiographies is apparent in the lack of adherence to mainstream literary standards. With their intentional rustic language and inflexion in local dialects, these narratives unveil the harsh truth of perpetual oppression and torture inflicted on a part of the Indian population. The perspective from below presented by these autobiographies is an alternative view of Indian society. While the portrayal of the Indian rural space in the works of mainstream writers is realistic it is not holistic. Sreya Chatterjee expresses that "the preference for the middle-class, upper-caste citizen-subject has garnered substantial attention in the global literary market, Dalit literature, especially in the vernacular languages has remained in the shadows." (Chatterjee 377) Therefore, Dalit writers seek to establish their position through the agency of their artistic expression.

Dalit autobiographies are a challenge to the homogeneous representation of the social life of Indian society as portrayed in the works of mainstream upper caste writers. Arun Prabha Mukherjee points to the remoteness of Dalit issues from the mainstream narrative by drawing attention to the title of Omprakash Valmiki's *Joothan* when she contends that "How far removed Valmiki's subject matter is from the day-to-day experience of an urban middle-class reader." (Mukherjee XXXIX) It is significant to point out that the title of the autobiography encapsulates the pain, suffering and lived reality of a humiliated existence that survives and thrives on the discarded *joothan* of the upper caste community. The structural complexity of Indian society with its multifaceted religious and social life is represented in these Dalit personal life narratives. Such a complex societal structure with its superstitions and orthodoxy is an alternate view of reality from the mouth of the inhabitant of that culture. Dalit writers reveal the plight of millions of marginalised people in Indian society.

Early Dalit narratives did not aim for literariness but they projected a different view of the lives of Dalits which depicted the tortures and inhumane treatments to which they were subjected. These narratives shake the very genre of autobiography writing with their equal stress on narrating the lived reality of the entire community and not just the individual author. In this sense, the autobiographies by the first-generation Dalit writers of the twentieth century are defined by a dialectical process as they navigate the individual self 'I' and the collective 'we' within the Indian society. There are multiple reasons for the spurt of Dalit autobiographical writings in India. The present paper intends to trace the narrative trajectory of Omprakash Valmiki's autobiography titled *Joothan*. One witnesses a common trajectory in the unfolding of almost all Dalit autobiographies written by the

first generation of Dalit writers in post-independent India. The present paper contends that structurally (in terms of plot) and psychologically (in terms of the growth of the Dalit author) the development of these early Dalit autobiographies necessarily passes through three stages namely pain, protest and progress. These narratives usually transition through, what may be referred to as the 3Ps to develop completely and achieve the ultimate purpose of their creation. The evolution of Dalit personal narratives through these stages is an essential feature of these autobiographies. In terms of artistic expression progress for the writer and his community is central to Dalit aesthetics. Pushpa Bhave's understanding of Dalit literature is defined by three words- *Vidroha* (revolt), *Vedana* (grief) and *Nakar* (saying "no") (Bhave 169) which represents the thematic and structural concerns in the metamorphoses of the personal life stories of Dalit writers through these three stages.

The first stage of these early Dalit autobiographies concerns a profound presence of pain and reveals a hurtful anguished individual bearing the onslaught of caste-based prejudices. Conventionally, all these narratives begin with a retelling of a painful past. The agonies and sufferings result from blatant discrimination and the ugliest forms of inhumane treatment and torture perpetuated by the upper caste on the lower caste. The representation of pain is essential to project an alternative view of history. The initial chapters present the inner and microscopic view of Dalit life, culture and society. They deal with the daily trials and tribulations of the Dalit community that exists in abject poverty and hunger amidst scarcity of resources. These early Dalit narratives were based on describing the plight of the suffering Dalit community by providing descriptive accounts of the socio-religious and political sphere of Indian society. These writings show how the maintenance of caste practices in Indian society led to the Dalit communities being shifted to the periphery of the upper-caste territories. These communities were displaced not only socially but also geographically. Hence, nowhere do the Dalit writers idealize or give a utopian view of rural Indian society. For them, there is no bliss in rural. It is not the idyllic escape that provides solace from fast-paced city life. Rather, the rural is a quagmire of deeply entrenched caste-based discrimination.

The quagmire is not only psychological but also literal. Valmiki's autobiography opens with the literal filth. The abode of the Dalit community consists of "pigs wandering in narrow lanes, naked children, dogs, and daily fights." (Valmiki 1) The Dalit *basti* of Omprakash Valmiki's *Joothan* is segregated from the rest of the village. As if being spatially cornered to the outskirts was not enough, the Dalit community is separated by a filthy village pond which is used as a sewer by the upper caste community. The remoteness that is a result of the socio-spatial ostracisation of Dalits does not spare Valmiki even at school which under ideal conditions is supposed to be a secular place. The author had to sit away from the rest of the upper-caste students, that too on the floor. Valmiki's encounter with various upper caste school teachers in the village underscores the irony of Dalit existence as one sees the protector becoming the perpetrator. His teachers not only try to dissuade him from studying but even assault him verbally and physically. The worst incident to befall his student life is his failure in the practical examination which was orchestrated because of the hatred of the upper caste school teacher who ensured that Valmiki was denied access to the lab. The very survival of Valmiki's people is dependent on the leftovers of the upper caste people. The word joothan carries historical baggage with it whose burden Dalits have to carry throughout their lives. To illustrate the idea of Dalit autobiographies as narratives of pain, Valmiki's anecdotes from his village will prove to be good examples. Of prime importance in the book is the incident of the beating up of young Dalit men from the basti who refuse to work as unpaid labourers. At the behest of upper caste people, the policeman

beats the Dalit men till he is tired. The vivid and heart-touching portrayal of the inhuman treatment meted out to Dalits puts the whole human race to shame. The captured Dalit men were made to stand like a rooster in crouched positions. As if this was not enough, they were beaten black and blue with the batons. Valmiki painfully recalls that "the one being beaten would scream after every blow." (Valmiki 45) The women and the children of the basti were standing in the lane and crying loudly. "My mind was filled with a deep revulsion. Then as an adolescent, a scratch had appeared on my mind like a line scratched on glass. It remains there still." (45) The shrieks of those unheard, unseen Dalit men reverberate in the mind of the author and the reader long after the book is closed. The placement of words in the phrase, "It remains there still" (Valmiki 38) is significant. The precedence of 'there' before 'still' depicts the final and everlasting scar in the author's mind. The stillness connotes a certain numbness and a permanent imprint in the conscious and subconscious mind of the author. The memory of this brutal incident is important not only to depict the pain, suffering and humiliation of the wailing Dalits, but the indelible mark it leaves in the author's memory is vital. With the community mourning, individual and collective pain and plight become entwined.

Dalit narratives are not only about an individual as a victim of oppression but the whole Dalit community is at the receiving end so much so that it is difficult to differentiate individual suffering from the subjugation of the entire community. In Dalit autobiographies, the individual is attuned to the collective so much so that he dissolves his causes with the collective Dalit community. But such a relation does not put the collective community 'we' over the individualized 'I.' The 'I' acts as the spokesperson of the Dalit community and the community legitimises and validates the existence of the individual. Both the 'I' and the 'We' derive power from each other. The "I" and "We" share a healthy communal bond and history. In Omprakash Valmiki's *Joothan,* the people of the basti share a warm relationship. They share their joys and sorrows. When Valmiki becomes the first child to pass the high school, the whole basti celebrates Valmiki's success with a grand feast. However, in this inextricable connection, an individual is not compromised for the sake of the community. As Sara Beth points out, "Valmiki is able to assert his personal agency in opposition to the traditions of his community by rejecting the girl chosen by the community for his marriage. (Beth 553) Also, Valmiki doesn't pay heed to his well-wishers' protestations of not using the surname 'Valmiki.'

The most pitiable position in the book is that of the Dalit women who are doubly displaced in a society that not only discriminates on the basis of caste but is deeply patriarchal too. Women are not only ousted from the Indian Brahminical social structure but are also subjugated by the patriarchal system of the Dalit communities. In a sense, Dalit women are thrice "Dalits" because they are not only oppressed by caste and class but also by patriarchy. Valmiki writes "Everyone called my mother Khajoorwalli. Perhaps she too had forgotten her real name." (Valmiki 58) Dalit women have no identity of their own in the village. They are denied opportunities in life. The sorry state of women is seen in the curt revelation by Valmiki that there was no question of sending his sister to school. (Valmiki 2) However, Dalit women have moments of self-assertion. Valmiki recalls how goddess Durga entered his mother's eyes when Sukhdev Singh pointed at a basketful of leftover joothan to her and insulted her after the wedding guests had left. That was the day that Valmiki's mother stopped taking their joothan.

Dalit writers do not portray the Dalit community as ideal. They are equally critical of the prevalent superstition in their own community. The Dalit writers themselves provide a critique of their community and an objective and realistic view of it. *Joothan* highlights the rampant superstition that is present in Dalit communities. Valmiki reveals that when people fell ill in the community, they were taken for exorcism to sorcerers instead

of being given medicines. He painfully recalls how his two brothers died because of these superstitious practices and from want of medicines. Thus, Dalit writers are aware that the fight has to take place not only with the upper castes but as Dalits they have to resist the orthodoxy persistent in their community by embracing modernity.However, the representation of the painful past by Dalit writers has not gone unchallenged by mainstream critics who feel that its representation is an act of seeking sympathy via narrating sob stories. However, they fail to see that penning one's painful past is a natural form of expression and a cathartic experience for those who have been silenced into perpetual submission for thousands of years. Toral Gajarawala says that Dalit autobiographies are characterised as narratives of "historical revisionism, typically with an emphasis on the documentation of the violent oppression." (Gajarawala l) This revised history develops a Dalit's point of view and not the version of history propagated by upper caste people. The lower caste characters bear the burden of representativeness. Furthermore, she writes that "this leads to the problem of unidimentionality and stereotype. Caste fixes and stagnates. Further, there is a problem of representation of character and Dalit literature argues for the humanization of the Dalit Subject- the Dalit humanism -the figuration of that character moves beyond its literal incarnation" (Gajarawala 41) in depicting the atrocities inflicted and the oppression to which Dalits are subjected. Narrating a Dalit's life from the voice and perspective of a Dalit himself propagates liberal individualism and opens new avenues for the possibility of transcendence for him. The charges that the early Dalit life stories bordered on and sought sympathy for their survival is a biased and reductive view because in reality a simultaneous Dalit identity, a history from the point of view of the oppressed and not the oppressor is being written. Also, It is very natural for Dalit people who have been silenced for ages to write cathartic works. The problem of similarity of experiences in Dalit autobiographies is seen because Dalits were kept at the fringes of society. Being restricted spatially they do not have 'heroic' encounters in the world outside. Dalit narratives do not have a caricature of conflict-driven heroes befitting the classical ages. Thus, the criticism that the early chapters in a Dalit narrative are rooted in the presentation of the pitiable subject is a narrow and one-sided reading of the Dalit autobiography. It is not an exaggeration to consider that the early descriptions in the narratives were born out of a desire to express. These narratives of pain were meant to release the pent-up feelings of the author.

The second stage in the narrative of twentieth-century Dalit autobiographies is protest. Structurally, the innumerable incidents of the painful past are followed by protests resulting from simmering anger and revolt that is shaping up in a Dalit's life. Realising and understanding one's own plight definitely leads to progress. However, the progress in Valmiki's life comes at a heavy cost. He is scarred for life because of the traumatic experiences that he undergoes in his village. As Valmiki reveals "The children of the Tyagis would tease me by calling me 'Chuhre ka.' Sometimes they would beat me for no reason. This was an absurd tormented life that made me introverted and irritable." (Valmiki 3) Therefore, evolution has to necessarily shape from the deep-rooted anguish in the minds of Dalits. Dalits become the victims of not just psychological scarring but their bodies become the sights of physical assault. Daring against all odds, Valmiki's act of entering the school and passing the high school examination is an open resistance and protest which ultimately culminates in his becoming a successful man. The creation of a distinct Dalit identity is urgent in the environment where Dalits are not called by their names but by derogatory epithets, as Valmiki recalls; '*Oe Churhe*,' '*Abey Churhe*'. Valmiki realizes the urgent need to create a distinct Dalit consciousness. As a mode of protest, Dalit writers are engaged in the act of "superimposing an intellectual history of social resistance over the more commonly assumed non-history of centuries of silent subservience based on the unquestioning assumption of a lowly caste identity. Raj Kumar

points out that "It is quite important to note that Valmiki consciously divides his readers into two camps: 'we', the Dalits and 'they', the non-Dalits… By doing so the author clearly draws a line between the oppressor and the oppressed." (Kumar 198) Other moments of protest include Valmiki's insistence and assertion that the people of the "Chuhra community… do not worship Hindu gods and goddesses." (71) Valmiki takes pride in his culture. Hence the powerful act of deciding not to get rid of his low caste signifying surname. He is unperturbed by the fact that his "surname carries the threat of being found out" (149).

However, once the Dalit writers feel that they have expressed and narrated enough, their writings undergo an overhauling in the following story. Once the social history is established, protest follows resulting from educational awakening. Dalit autobiographies can very accurately be called social biographies. Once a Dalit gains enlightenment concerning his subjection, he advocates bringing about the Dalit consciousness amongst his fellow brethren.

The protest by Dalit writers takes shape in literary expression too as they flout the established rules of mainstream literature and its aesthetics. Rosemary George highlights Beth's views that in the autobiographical mode, Dalit writers have "constructed a powerful counter-discourse emphasizing the authority of Svanubhuti (self-perception) and discrediting literature based on Sahanubhuti (Sympathy) as elitist and oppressive." (qtd. in George 125) Thus, Dalit writers are not looking for pity or patronage among the upper caste audience. They lay emphasis on experience-based lived reality. They counter the hegemonic forces of Indian society by contesting established literary norms. Sara Beth writes that "these writers strike at the heart of the Hindi literary world's belief in the autonomy of art and the value of 'art for art's sake which has persisted since the 1920s and 1930s through prominent literary movements like Chayavad." (Beth 2) Chayavad, a period of romanticism in Hindi literature had only further cemented the preference for romantic literature. Such literary movements pushed the purposive and propagandist form of literature to the backfoot. Dalit literature aims to challenge the mainstream aesthetics of art for art's sake by replacing it with art for the community's sake. Protest through literary iconoclasms takes place in Dalit literature. Dalit autobiographies make use of local dialects in their narration. It challenges the established mainstream literature with language that is considered rustic and uncouth by mainstream critics.

The third stage into which the narrative of *Joothan* heads is the progress and upward social mobility of Valmiki. However, this progress is not limited to Valmiki's individual life only. Through his efforts, the impact of his progression and success trickles down to his fellow brethren. He is able to shape and change the lives of many other Dalits as he spreads awareness and advocates for their cause through his creative expression which includes writing and performing plays, writing short stories and being involved in other humanitarian endeavours. Especially noteworthy is Valmiki's active participation in the Dalit movement at Chandrapur in Maharashtra. In fact, quite early during his adolescent years, Valmiki took on himself to do his bit for his community when he started an evening school on his porch. The progress of the Dalit community is brought about through acts of assertion of its Dalit identity stemming from Dalit consciousness. Arjun Dangle opines that "Dalit is not a caste but a realisation and is related to the experiences, joys, sorrows and struggles of those in the lowest stratum of society. It matures with a sociological point of view and is related to the principles of negativity, rebellion and loyalty to science, thus finally ending as revolutionary." (qtd. in Mukherjee XIX-XX)

The Dalit writer brings about a positive impact on the lives of the members of his community through his artistic creation. It is often seen that the Dalits have to bear the burden of their subjection alone because the upper caste people who oppress them do not take accountability. The upper caste community doesn't understand that the problem of untouchability is not a Dalit problem

alone. Untouchability is the result of the caste system that thrives on the practices and norms established by the upper caste. Therefore, Dalit writers seek to rectify this social ill by bringing about awareness not only in the minds of Dalits but also in the minds of the upper caste people. Thus, the onus of the progress of the Dalit community falls on the upper caste community too.

With the progress of the narrative, the Dalit author becomes more self-assertive and the plot of the autobiography undergoes structural and aesthetic changes. The functionality of sympathy rooted in thematic concerns of the narrative is transformed. The narrative now focuses more on the achievements, development and assertion of the Dalit community. Sympathy is no longer essential and is restricted to mere revelation of facts. The portrayal of the plight and conditions of the Dalit writer was just a starting point for a narrative and not a vital one. "The question of sympathy seems to have been deconstructed in the writings of progressives." (Gajarawala 47) The narrative of pain becomes secondary because it does not meet the aesthetic ends of Dalit autobiographies. Dalit narratives today seek to bring change in the position of their communities. It aims at achieving concrete and action-oriented radical solutions. These writers are no longer satiated with mere expression or exposition of their horrible lived stories. They seek to transform society and bring changes for the betterment of their community. In their radicalism, these writers move beyond conscience-moving narratives. They aim to right the wrongs meted out to them through their works. The narratology shifts the focus of the theme to aesthetic concerns once the Dalit writer is educated and gains economic security. The resultant progress leads to the upward mobility of the Dalit author. The assimilation and appropriation of the educated Dalit shake the rigid caste structure of Indian society.

Dalit writer is empowered not only by self-assertion but also by being positioned on a pedestal as an objectivist reformist, trying to figure out the prevalence of superstitions and orthodoxy in his community. He incurs a certain power as a reformer writing with a purpose who is not content with presenting an ethnographic account of his society. When a Dalit writer archives anthropological details, it is either to open new vistas of exoticism of his native culture, or a different worldview of the Indian nation. As a cultural insider, the Dalit writer does not present only a romantic view. The Dalit writers realise that a "rehabilitative ethnographic particularism is not a solution" (Gajarawala 127).

It is noteworthy to point out that the ultimate 'Progress' which is the third stage in the evolution of *Joothan* concludes almost all Dalit narratives. Laura R. Brueck says "For both scholarship and the publishing industry to excessively favour autobiographical narratives over the rich body of fiction and poetry that comprises the corpus of Dalit literature is to understand the impact of literary expression on the construction of Dalit identity and consciousness." (Brueck 6) These life narratives will become an alternative history, a starkly different worldview from the one depicted by the upper caste. This alternative Dalit history is not only different but authentic history. In Valmiki's association of the pig with Dalit cultural life, the reader encounters a confident Dalit writer who takes pride in his identity. Valmiki does not feel shy or guilty. For the people of basti, Beth writes, "Pig is a positive symbol, signifying celebration, a sense of tradition and a state of plenty amid habitual poverty and want… The process of renaming the pig 'prosperity' rather than 'filth' represents a renegotiation of power relations, which emphasizes the right to name objects and culminates in the right to name and thus define oneself." (Beth 555) Thus, Dalits evolve as masters of their destiny and identity. Through the articulation of history and culture, Dalit consciousness is developed in the community.

Valmiki expresses that "Dalit literature is not just a literary movement. It is also a cultural and social movement." (qtd. in Mukherjee XXXIII) *Joothan* in the portrayal of the plight of the Dalits is close to Brecht's idea of epic theatre. The inhuman treatment meted out to

the Dalit community is not a mere anthropological, archival resource meant for arousing sympathy. It has a larger aesthetic concern. The rampant caste-based discrimination shocks the readers. This shock value for Brecht helps the reader/ audience to take action. Thus, through the act of writing his autobiography, Valmiki protests for the betterment of his community. The only logic of the Dalit narrative that shakes the logic and semblance of the well-knit rigid hierarchical structure of the Indian society 'is the logic of sympathy' and understanding. In the early chapters of Dalit autobiographies "sympathy, not social justice, is the narrative channel by which the other is accorded space. The victimisation of the Dalits and other lower classes expands the circle of the reader's sympathy" (Gajarawala 45). Toral highlights Alok Rai's views on the "guilty reader" who is willing to countenance injustice but may also be pushed too far, after which his loyalties and sympathies may wander; it is a delicate dance, this readerly compact" (qtd. in Gajarawala 46). Charges of fabrication and exaggeration have been labelled against Dalit autobiographies. They are also critiqued for resting on melodrama. It is crucial to point out that the narrative of pain, gains "upper caste sympathiser" (Gajarawala 46). The reception of Dalit autobiographies can be seen from the lens of the reader's response theory. Dalit narratives involve a "complex interplay of sympathy, guilt and outrage"(Gajarawala 47). These narratives work at dual levels. At one level the Dalits were asserting themselves while on the other they served as a model for self-critique of the upper caste readers.Thus, Dalit narratives depict the lives of Dalits from humiliation to realisation of their subjection through education to assertion and ultimately culminating in progress. To conclude, these narratives achieve larger aesthetic concerns as Beth points out that "Dalit autobiographies are not written for the purpose of personal reflection but are overtly meant for public consumption." (Beth 573) Dalit autobiographies usually follow the life story of an author's discriminatory and subjugated childhood, enlightenment and protest through education and ultimately progress and upward social mobility. The progress is aimed at the community as well. The reader sees Valmiki as he fulfils his social duty of upliftment of several downtrodden fellow brethren like himself. Thus, Dalit autobiographies are coming-of-age stories. Valmiki's journey unfolds like a *buildungsroman* from hunger, humiliation, abject poverty and discrimination to a life of accomplishments, fulfilment and honour. Literature replicates life as the writer conscious of his struggle seeks to bring about a social revolution in Indian society governed by a watertight hierarchical caste system.

****

Works Cited

1. Brueck, Laura R. *Writing Resistance: The Rhetorical Imagination of Hindi Dalit Literature*.New York: Columbia UP, 2014. 1-15.
2. Chatterjee, Sreya. "Dialectics and Caste: Rethinking Dalit Life-Writings in the Vernacular, Comparing Dalit Narratives." *Comparative Literature Studies*, vol. 53, no. 2, 2016, pp. 377–99. *JSTOR*, https://doi.org/10.5325/complitstudies.53.2.0377. Accessed 29 Sept. 2023.
3. Dasgupta, Sanjukta, and Malashri Lal. Eds. *The Indian Family in Transition: Reading Literary and Cultural Text*. New Delhi: Sage Publications, 2007. 164-172.
4. Gajarawala, Toral Jatin. *Untouchable Fictions: Literary Realism and the Crisis of Caste*. New York: Fordham UP, 2013. 1-127.
5. George, Rosemary Marangoly. *Indian English and the Fiction of National Language*. New York: Cambridge UP, 2013. 124-131.
6. Hunt, Sarah Beth. "Hindi Dalit Autobiography: An Exploration of Identity." *Modern Asian Studies*, vol. 41, no. 3, 2007, pp. 545–74. *JSTOR*,http://www.jstor.org/stable/4499792. Accessed 29 Sept. 2023.
7. Hunt, Sarah Beth. *Hindi Dalit Literature and the Politics of Representation*. Routledge India, 2014.
8. Kumar, Raj. *Dalit Personal Narratives: Reading Caste, Nation and Identity*. Orient Blackswan Private Limited, 2010.
9. Lindquist, Steven E., ed. *Religion and Identity in South Asia and Beyond*. New York: Anthem Press, 2013. 347-364.
10. Valmiki, Omprakash. *Joothan: A Dalit's Life*. Trans. By Arun Prabha Mukherjee. New York: Columbia University Press, 2008.

Assessment of Body Mass Index of Young Adult (Male) who Practices Yoga Postures regularly

Dr.Asem Jayanti Devi
Dept. of Yogic Science and Human Consciousness,M.D.S. University Ajmer.

Dr. Abhishek Sanchora
Department of Phyisical Education
Madhav University, Pindwara,Sirohi, Raj.

ABSTRACT:-The present study titled "was done to assess the body composition of boys (18-25 years) practicing yoga regularly at M.D.S. University, Ajmer. A total number of 30 subjects were chosen. The subjects were healthy and willing to participate in the study. Assessments of BMI revealed that majority of the sujects were "Normal". Few were found to be either "Underweight or overweight". The mean value of BMI was 20.07 kg/m^2. The fat mass per cent values also showed the same results where majority of the subjects were again classified as "Normal" with respect to fat mass per cent. None of the subjects possessed fat mass per cent value higher than normal, however a few subjects possessed fat mass percent value less than normal. The mean value of fat mass per cent was 15.18, which can be labeled as "Normal".

For the next body composition parameter that is fat free mass percent, again majority that is 60% possessed fat free mass per cent value in the normal range. Very few subjects (10%) possessed fat free mass per cent value "higher than normal", while 30% subjects possessed fat free mass per cent value "less" than normal. The mean value of fat free mass per cent was found to be 84.13 which would be classified as "Normal".

Mean value of total body water per cent and visceral fat rating were also found to be "Normal". The mean ideal body weight was greater than current body weight for majority of the subjects. The mean metabolic age was less than actual age, which is desirable.

Thus the study subjects could be classified as normal with respect to different body composition parameters and as such it can be said that Yogic Exercises help to maintain a healthy body composition.

Key words: obesity, adipose tissue, body mass, adults, body mass index

INTRODUCTION-Scientists have been studying body composition since the beginning of the 20th century, but research has increased dramatically in the last 25 years as methods for measuring and analyzing the body have grown in accuracy. There is growing evidence that clearly links body composition with health risks and the development of certain diseases. New research indicates that fat loss, not weight loss, can extend human longevity. By measuring body composition, a person's health status can be more accurately assessed and the effects of both dietary and physical activity programs better directed.Current methods for measuring body composition rely on "indirect" measurements techniques and are called In Vivo methods - meaning they are performed on a living body. Millions of rupees are spent every year on treating the side effects of obesity. It's a serious condition, known to contribute to Type 2 diabetes mellitus, heart disease, hypertension, stroke and some forms of cancer.

Methods and Materials-The present study was aimed to study the Body Composition, college going boys (18-30 years).

The boys were studying in premises of M.D.S. University, Ajmer. The age group of boys was (18-30 years). A total of 30 subjects were studied.

The boys include in the study were interviewed about the general information such as family type, age, religion, food habit, etc.

Body Composition Analysis was done using, an Automatic Body Composition Analyser. The following Parameters were assessed

1. Weight 2. Height

The data was collected in the months of Oct – Nov2022. A questionnaire was developed to collect the Information from the subject. The questionnaire was pretested on five subjects

1. General information
2. Socio - Economic status
3. Information about the nutritional status
a. Anthropometric measurement
b. Body composition
4. Information about the nutritional status of subject

Anthropometry-

The growth and stature of an individual depends grossly on the individual dietary intake. There are various methods for accessing the nutritional status. No single method for accessing the nutritional status is perfect and complete. If used in carefully planned and locally relevant combination they can provide the full information. Anthropometry is concerned with the measurement of the variation of the physical dimensions.

a) Weight: The Weight of the subjects was determined using body composition analyses BC - 420 MA.

b) Height: The Height is a linear measurement made up of the sum of four components - leg, pelvis, spine and skull.

c) Body Mass Index (BMI) - BMI has the best correlation between height and weight (Bray 1978 , Black et at , 1983) according to Sri lakshmi (1996) BMI less than 20kg / m^2 indicates that the person is normal And BMI more than 25 kg / m^2 indicated over weight .

BMI of subject was calculated by using the formula
BMI = Weight (kg)/ Height (m²)
Body Composition :
Body Composition Analysis was done using, an Automatic Body Composition Analyser. The following Parameters were assessed
3.Weight 4.Height

BMI Category	Number of subjects	Percentage of subjects
Under weight	9	30
Normal	18	60
Over weight	3	10
TOTAL	30	100

RESULTS AND DISCUSSION-The present study was conducted to assess the nutritional status of college going boys in the age group of 18-30 years studying at Maharshi Dayanand Saraswati University, Ajmer A total number of 30 subjects were chosen for study. There were no specific criteria for selecting a particular subject. Subjects who were healthy and willing to participate in the study were only included

TABLE-1: DISTRIBUTION OF SUBJECTS IN VARIOUS CATEGORIES OF CERTAIN SPECIFIC BODY COMPOSITION PARAMETERS:

A) Body Mass Index:-When the subjects were classified into various categories of BMI, it was seen that 18 subjects (60%) fell in the "Normal" category 9 subjects

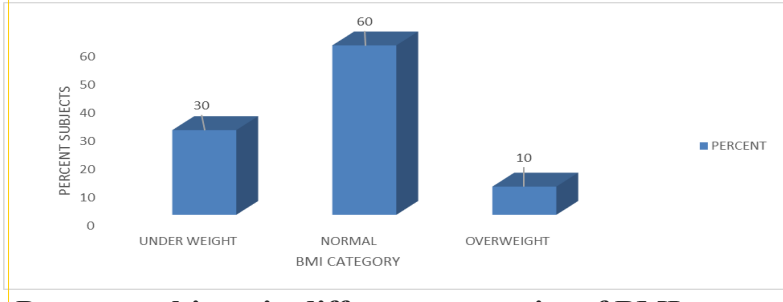

Per cent subjects in different categories of BMI.

SUMMARY AND CONCLUSION-The study was conducted to assess the Nutritional Status of Boys 18-30 years, enrolled as yoga students in the Department of Yogic Sciences and Human Consciousness, M.D.S. University, Ajmer

The mean values of BMI were found to be 20.07 Kg, which helped to classify the subjects as "Normal". The percentage of Underweight subjects was 30 whereas the percentage of Overweight subjects was 10. Majority of the subjects (60%) were classified as "Normal" with respect to BMI. With respect to fat mass percent values again majority of the subjects could be classified as Normal. The mean values of fat mass per cent were also found to be "Normal". None of the subjects possessed fat mass percent values higher than the reference range. A very few number (10, 33.33%) possessed fat mass percent values below the reference range. Remaining 20 subjects (66%) were found to be normal with respect to Fat mass per cent values. The mean values for total body water per cent was 55, which could be classified as Normal. All the subjects had a body water percentage in the normal range of 50-65%.

The mean ideal body weight was greater than the mean current body weight and the mean visceral fat rating was also found to be "Normal". The mean metabolic age (19 years) was also less than the Actual age (21.20 years) which is desirable. Thus it can be said that the study samples were "Healthy", with respect to various body composition parameters of BMI, Fat Mass, Fat free mass and total body water per cent. It was also observed for the study samples that BMI and fat mass per cent exhibited a positive correlation of +0.93 and thus varied along with each other for the present study sample. Similar results have been obtained by Ranasinghe *et.al*. 2013 Water and Fat mass per cent showed a negative correlation of -0.95 that is both varied inversely with each other. BMR and fat free mass in Kg showed a positive correlation of +0.92, that is both varied along with each other.

****

References-

1. Anderson , K.L. , Masironi , R . , Rutentraz , J. , Seliger , V. , Trygg , Habitual Physical activity and health . WHO regional publication , (2008)
2. C. S. Johnston , L. T. Sherrie and D. Pamela , " High Protein Low Fat Diets are Effective for Weight Loss and Favourably Alter Biomarkers in Healthy Adults " . (2010)
3. D.B. Jelliffe , " The Assessment of Nutritional Status of Community " WHO , Geneva . (2005)
4. D. K. Layman , E. Evans , J. I. Baum , j . Seyler , D. j . Ericon , " Dietary Protein and Exercise Have Additive Effect during Weight Loss in Adult Womens , " (2003)
5. Indian Council of Medical Research , " Nutrient Requirement and Research and Recommended Dietary Allowances for Indians , " National Institute of Nutrition , Hyderabad , 2010 .
6. M. Visser , S. B. Kritchevsky , " Leg Muscle Mass and Composition in Relation to Lower Extremity Performance in Men and Women Aged 20 -30 Year the health Aging and body composition study " (2000)
7. Popkin , B. M. Time Allowcation of the Mother and Health . The use of Food Consumption Measurement, Nutrient Data Based and Dietary Guidelines. (2004)
8. Puri ,rahul , Priti and Camre : Seasonal Variation in nutrient intake of Urban Families . (2010)
9. Rajalakshmi , R .: Applied Nutrition , Prevention of obesity .
10. Ranasinghe C, Gamage P, Katulanda P, et.al. Relationship between body mass index and body fat percentage, estimated by bioelectrical impedance, in a group of Srilankan adults: A cross sectional study. *BMC public health* 2013; 13: pp 1-8.
11. Shrilakshmi , B .: Dietetics . New age international Limited, Publishers . (2003)
12. Sri kanita , S. G .: Nutritional adaptation in man.
13. U. Goya , " Fat and Fatty Acid Intake by Women from Urban and Semi - Urbon Areas , " M.sc. Thesis , Punjab 2003 .
14. WHO Energy and Protein Reqirement . Report of a Joint FAO / UNU Expert Consultation .(2006)
15. Agata Maria KawalecA–D, Anna Maria KawalecC–E -Analysis of the body composition of young adults and the frequency of occurrence of so-called normal weight obesity: A pilot study

Right to Water and Human Rights a Socio- Legale Study

Dinesh Kumar
Research Scholar
Department of Human Rights, School of Legal Studies
Babasaheb Bhimrao Ambedkar (A Central) University
Lucknow, Uttar Pradesh, 226025 MO. 9506155988

ABSTRACT-Water is a clear thin liquid that has no colour or taste when it is pure. Water is a vital compound it is a compound consist of hydrogen and oxygen. It usually found in liquid state in nature at normal temperature and pressure. Main components of water are hydrogen and oxygen having covalent bond between them. Any physiological, biological & bio-chemical change in the natural composition of water that may be harmful to living organism is known as water pollution.

Human rights are rooted in ancient thought and in the philosophical concepts of 'natural law' and 'natural rights'. Human beings are rational beings. They by virtue of their being human possess certain basic and inalienable rights which are commonly known as human rights. Since these rights belong to them because of their very existence, they become operative with their birth. Human rights, being the birth right, are therefore, inherent in all the individuals irrespective of their caste, creed, religion, sex and nationality. These rights are necessary because they create an environment in which people can develop their full potential and lead productive and creative lives in accordance with their needs and provide suitable conditions for the material and moral uplift of the people.

KEY WORDS – Human Rights, Right to Water**,** Constitutional Rights

INTRODUCTION-Ancient Indians did recognize the importance of their rivers as literally the life blood of the nation. Hence, the great honour and respect given to them in Hindu scriptures. See for example the following sloka:

Gange Cha! Yamunechiava! Godavari! Sarasvati!
Narmada! Sindhu! Kaveri! JaleasminSannidhimKuru!
[In this water, I invoke the presence of holy waters from the rivers Ganga, Yamuna, Godavari, Sarasvati, Narmada Sindhu and Kaveri!]

Moherjodaro,Harappa and Dravidian civilizations sprang up on the banks of rivers. The word 'environment' is a broad spectrum which brings within its sweep; hygienic atmosphere and ecological balance. Enjoyment of life and its attainment including the right to life with human dignity encompasses within its ambit the protection and preservation of environment, ecological balance free from pollution of air and water Sanitation without which life cannot be enjoyed any contracts or actions, which would cause environmental pollution causing environmental, ecological, air, water pollution, etc. should be regarded as amounting to violation of Article 21 of constitution of India. It is therefore not only the duty of the state but also the duty of every citizen to maintain hygienic environment. India has taken a lead in giving a constitutional status to environment. The constitution an article 48(A) to the part IV of the Directive principles as under: "The state shall Endeavour to protect and improve the environment and to safeguard the forests and wild life of the country."Article 51A (g) of fundamental duties prescribes "it shall be the duty of every citizen of India to protect and Improve that natural environment including forests lakes, rivers and wildlife and to have compassion for living creators."The law has a positive role to keep our ecological balance by introducing judicial restraints as well as Judicial Activism. There is need to transform the Inter predation of right to water include right to life in article 21 of the constitution in to a meaningful right to healthy life and healthy environment with human dignity.Environment protection Act 1986 sec 2 (d) of the act defines the environment to include water and the interrelationship which exists among and between water and Human beings other living creatures plants micro organisms and property. National tribunal Act 2010 Section 2 (c) of the Act defines the "environment" Includes water air and land the Inter-relationship which exists among and between water air and land and human being other living creatures, plants, micro-organism and property."

All human rights derive from the dignity and worth inherent in the human person and that the human person is the central subject of human rights and fundamental freedoms.

According to D.D. Basu: Human rights are those minimum rights which every individual must have against the states or other public authority by virtue of his being a member of human family irrespective of any other consideration.

The Protection of Human Rights Act, 1993 Sec 2 (d) Definitions Human rights means the rights relating to life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the constitution or embodied in the international covenants and enforceable by courts in India.

National health bill 2009 section 2(r) of the act defines the human rights means rights relating to life, liberty, equality and dignity of the individual guaranteed by the

constitution or embodied in the international covenants and enforceable by courts in India.

Realized as also on the threshold question of whether a claim should be recognized as a right. On all these aspects the problem has been more with what is called 'collective rights', commonly termed as the debate centers on the rights themselves and the processes through which the rights have to be "Third Generation Rights". The collective rights like the right to development, right to healthy environment, right to peace and right to self-determination are difficult to fit in the traditional sense of the term 'human right', because as group rights they do not vest in, nor is exercised by, an individual alone, although the individual is clearly their beneficiary. Eminent sociologists like Andre Beteille oppose the creation of new rights on the grounds of (a) the problems associated with its formulation and implementation and (b) the apprehension that it might encourage avoidable 'judicial interventionism'. In the Indian context the controversy has been most acute on the question of fundamental right to development. In addition to the above argument against collective rights, recent initiatives for the creation of a new right to development

Shobana Ramasubramanyam v. Member secretary, Chennai metropolitan development Authority, The Madras High Court, observe rightly pointed out that today's emerging jurisprudence, environment rights, which encompass a group of collective rights, are

National tribunal act 2010 section 2(c)

7 Human Rights in Constitutional Law (1994) p5

National Human Rights Protection Act 1993 Section 2 (d)

National Health Bill 2009 section 2(r)

AIR 2002 mad 125

described as 'third generation rights' The first generation rights are political rights, while the second generation rights are social and economical Thus, right to have a pollution free environment is a third generation right.

Indian approach right to life means something much more than just physical survival includes right to live with human dignity, right of enjoyment of pollution free water for full enjoyment of life is a part of right to life guaranteed under article 21 of the Constitution.

F. K. Hussain v Union of india, The kerala high court declared that one of the attributes of right to life is right to potable water as it is one of the basic elements which sustains life itself.

Human rights being essential for all-round development of the personality of the individuals in the society be necessarily protected and be made available to all the individuals. These rights must be preserved, cherished and defended if peace and prosperity are to be achieved. Apart from policy making and enactment of laws it is more important to create awareness among the people and to take necessary steps to provide for the proper implementation of laws.

Right to water as basic needs

Water is essential to ensuring the continuance of life, and is intrinsically linked to other fundamental human rights. Water is necessary to produce food (right to adequate food), to ensure environmental hygiene (right to health), for securing livelihoods (right to gain a living by work), to enjoy certain cultural practices (right to take part in cultural life), etc.

The following fundamental human rights cannot be fully realized without having right to water.

Right to life: explicitly enshrined in our understanding of human rights since 1948 and the promulgation of the universal declaration of human rights. Needless to say that without water, no life can be sustained.

Right to food: although not explicitly mentioned, the right to water is very strongly implied, since it is vital in preserving the right to food. Water is essential for farming almost 70% of all available freshwater is used for agriculture and it is estimated that more than one third of global food production is based on irrigation.

Right to self-determination: rooted in both human rights covenants, this right also includes the right of all people to manage their own resources and is thus connected to a right to water. Right to adequate standard of living: cannot be realized without a right to water either. The UN committee on Economic Social and Cultural Rights recognized that such a right "clearly falls within the category of guarantees essential for securing an adequate standard of living, particularly since it is one of the most fundamental conditions for survival".

Right to housing: water is also a fundamental precondition of this right. As the committee on Economic, Social and Cultural Rights stated "the right to adequate housing should have sustainable access to natural and common resources, safe drinking water, sanitation and washing facilities"

Right to education: water also plays a crucial role in the implementation of such Right. The lack of proper supply of water forces children to walk long distances, often several times a day- thus missing school-to provide their families with water.

Right to health: it is beyond any doubt that this right cannot be realized without securing a right of access to adequate and sufficient water. More than 3 million people die every year from diseases caused by unsafe water. WHO estimates that in developing countries 80% of illness and more than a third of heaths are the result of drinking contaminated water? More startling is that approximately 60% of all infant mortality worldwide is linked to water- related infectious and parasitic diseases.

Right to take part in cultural life: embraces the right of indigenous peoples to have access to water resources on their land. The destruction, expropriation or pollution of water-related cultural sites represents a failure to take adequate steps to safeguard the cultural identity of various ethnic groups.

Right to suitable working conditions fresh water is also key element for this right as it is particularly important for food production and agriculture, the main income source of the majority of populations in developing countries.

The human right to a healthy and safe environment was first recognized in the United Nations declaration of Human Rights of 1948 article 25 (1) of living adequate for the health and well-being of an Individual. 1972 Stockholm declaration at the United Nations conference on environment Paragraph 1 of the preamble to the declaration states:

"Man has the fundamental right to freedom, equality that permits a life of dignity and well-being and he bears a solemn responsibility to protect and improve the environment of present and future generations:

"Everyone has the right to a standard of living adequate for the health and well-being of himself and his family."The Earth Summit 1992 stated that:- "To defend and improve the human environment for present and future generations has become an imperative goal for mankind a goal to be pursued together with and in harmony with, the established and fundamental goals of peace and of world-wide economic and social development." We have to achieve the equity within the present generation and also future generation.

The Stockholm and Rio Declaration adopted as Magna Carta of environmental development philosophy.

STATEMENT OF PROBLEM

"Access to safe water is a fundamental human need and, therefore, basic human right .Contaminated water jeopardizes both the physical and social health of all people. It is an affront to human dignity."

Water, the basis of all life on earth, is becoming an increasingly scarce resource, and its shortage had become one of the most vital issues human race is facing. Anthropogenic damages to earth, mostly, deforestation, destruction of natural ecosystems and biodiversity, desertification, Climate Change and injudicious water management all are directly linked to the scarcity of occurrence and storage of fresh water, available for life on land. Statistics reveal that about 1.4 billion people lack access to clean drinking water and by 2025, three billion people will be suffering from water shortage.

The majority of the affected populations would be in developing countries, predominantly in the rural areas and in the densely populated periphery of large cities. Every year, more than two million people die due to lack of drinking water or diseases caused by polluted drinking water. The fact that the lack of access to drinking water kills more children than malaria and measles combined shows us the gravity of the situation.

Efficient and equitable use of water resources has become one of the major concerns for nation states in their socio-economic developmental planning. Water scarcity leads to increased hunger, poverty, misery and disease, as well as desertification, destruction of other natural wealth and loss of biodiversity. Water shortage drives people out of their home, and results in mass migrations in many developing countries. Social unrest and conflicts over this valuable resource have become a banal reality, and battles and wars over it has become a dreadful possibility.

The current international trade and investment agreements encourage commoditization and corporate control of water resources, which reduces access to water and limits government capacities. The problem is worsened by privatization of water resources and drinking and irrigation water supply systems. Such ventures have lead to rising water costs in many countries, and large food and beverage companies heading such ventures are already facing huge resistance from people. Access to water is a fundamental human right implicitly supported by international law, declarations, and State practice. Arguably, this right is even more basic and vital than some of the more explicit human rights already acknowledged by the international community, as can be seen by its recognition in many local customary laws, traditions or religious canon In 2002, the United Nations Committee on Economic, Social and Cultural Rights, recognized that right to water itself was an independent right. Drawing on a range of international treaties and declarations, it stated: "the right to water clearly falls within the category of guarantees essential for securing an adequate standard of living, particularly since it is one of the most fundamental conditions for survival." The committee also commented that "the human right to water entitles everyone to sufficient, safe, acceptable, physically accessible and affordable water for personal and domestic use."The United Nations General Assembly formally recognised the right to water and sanitation by supporting the Resolution initiated by Bolivia on 28 July, 2010. The Resolution acknowledged that clean drinking water and sanitation are integral to the realisation of all human rights.

General Comment 15, The Right to Water, Adopted in November 2002 by the Committee on Economic, Social and Cultural Rights Human right. Water is a natural resource that should be used judiciously and preserved for the common good of all peoples and ecosystems in this planet. The session aims at identifying the issues to be

addressed at domestic and international level while moving forward for an international convention on water. The presentations are also supposed to create awareness among the students, public and civil society groups on the gravity of the issue.

OBJECT OF RESEARCH-No mechanism structure of government to use water resources of individual private and public sector. How can sustainable use of water resources.

Obligations of welfare state to protect, preserve, and regulate to use of water resources for human being.

Jurisprudential approach says that law is not static it is dynamics according changed to society it is true and universal so that A society is unable to protect natural resources because origin and development of consumering culture.

Development of liberalization privatision and globalision to use of natural resources and stablish to superior of world level. Kamal nath case decided and new theory adopted in Indian scienerio public trust doctrine how can apply government in this theory.

AREA OF STUDY-Consumering culture is a cause of exploitation of natural resources for example water resources misuse of water resources in all sectors government policy not affected to control of natural resources and violation of human right.

Demostric agriculture and industry areas misuse of water resources.

Drinking water crisis.

Problem and misuse of borewell in private areas how to regulate it

No Proper ground water recharge programme.

How to balancing use of water resources in india

RESEARCH METHODOLOGY

The proposed study is based mainly on doctrinal materials collected by primary and secondary sources, informative, analytical and descriptive method has been adopted in this study. The more emphasis is given to the documents related with national statute and judicial decisions as well as books Journal, newspaper and materials available on different websites. Keeping in view the nature of problem, analytical and descriptive research method has been adopted in accordance with the this method an information covering the decided case, issues of order, direction of Judiciary have been taken to use as facts and information in analyzing research problems. In such case the method to be applied will be doctrinal.

CONCLUSION-Water is driver of earth. It is a basic human right of the humankind. Every individual must have water for personal consumption and for livelihood activities. There should be no discrimination amongst Individuals and groups of peoples as far as availability of and access to water is concerned religion, ethnicity, caste, languages, class or gender must not be factors to restrict accesses to water. Right to water can mean different things to different people but for everybody it is at least access to clean and sufficient drinking water and water for domestic use and sanitation. His despite that water is essential to human life and to all life on earth, and that the freshwater resources are part of global commons and a collective resource, not a private commodity to be bought, sold or traded for profit.

Though, the right to water is recognized as a fundamental right by the courts in India various milestone Judgments. Further in *State of Karnataka v. State of Andhra Pradesh* (2000) 9 sec 572 the Supreme Court observed. "There is no dispute that under the constitutional scheme in our country right to water is a right to life and thus a fundamental Right In case of *Chameli Singh vs. State of Uttar Pradesh* the Supreme Court while discussing the Scope of Article 21 of the constitution, gave expanded meaning to the right to life and held, "Right to life guaranteed in civilized society implies the right to food water decent environment education Medical care and shelter." In *Narmad Bachao Andolan v. Union f India* the Supreme court observed, "Water in the basic need for the survival human of human beings and is part of the right to life and human rights as enshrined in Article 21 of the constitution of India and can be served only by providing source of water where there is none.

Subhash Kumar v. State of Bihar (1991) the Supreme Court observed Right to life is a fundamental Right under Article 21 of the constitution and it includes the right of enjoyment of pollution free water and air for full enjoyment of life. If anything endangers or impairs that quality of life in derogation of Laws. A citizen has right to have recourse to Article 32 of the constitution of removing the pollution of water or air, which may be detrimental to the quality of life.

The *Public Trust Doctrine* primarily resets on the principle that certain resources like air, sea, waters and the forests have such a great importance to the people as whole. It would be wholly unjustified to make them a subject of private ownership. The said resources being a gift of Nature, they should be made freely available to everyone irrespective of the status in life. The doctrine enjoins upon the government to protect the resources for the enjoyment of the general public rather than to permit their use for private ownership or commercial purposes.

****

BIBLIOGRAPHY

BOOKS:

1.Chandra, U, "*Human Rights*", Second Edition-1999,

2 Allahabad law agency publications Pvt.Ltd. New Delhi.
3 Doobia, T.D, "*Environmental & Pollution Law in India*"- volume 2, First Editon – 2005, Wadhawa Nagpur.
4 Iyer, Ramaswamy R., "*Water and the Laws in India*", First publish-2009 Sage publication India Pvt. Ltd, New Delhi.
5 Jain, M.P., "*India Constitutional Law*" 6th Edition 2010, Lexis exis Butter worths wadhwa Nagpur.
6 Medhi, Dr. Ali, "*Water Pollution Laws and their Enforcement in India*" R. Cambrag & co. Private Ltd.
7 Shastri, S.C, "*Environmental Law*," Third Edition- 2008, Eastern book company Lucknow.
8 Shukla, V.N, "*Constitution of India*" 11th Edition, Eastern book company Lucknow.
9 Sinha, P.C., "*Encyclopedia of Human Right",* First Edition 2002, Anmol publication Pvt.Ltd., New Delhi.
10 Seervai. H.M., "*Constitutional Law of India*" vol-2, 4th Edition reprinted 2008, Universal law Publishing Co.
11 Kashyap, Subash C. "*Constitution of India*", vol-1 Edition 2008, Universal Law Publishing Co.
12 Cullet, Philippe "*Water Law – Poverty and Development water Sector Reforms in India"*, Edition, Oxford University Press, India 2009.
13 Sharma, Prof. Mool Chand, "*Human Rights Development and environmental Law an: Anthology*" Edition – 2007, Bharat Law Publications Jaipur.
14 Bhat, Sairam "*Natural Resources Conservation Law*", Sage Law Publication.
15 Cullet, P., " *Water governance in motion To ward socially and Environmentally Sustainable*", Water laws Edited by- A. Gowlland Guvltieri, R. Madhav, u. Ramanathan, Foundation book, first Published- 2010
16 Kaur Gurkirat, "*Environmental Law*", Shree Publishers & Distributors New Delhi, Edition- 2005.
17 Tiwari, A.K., "*Environmental Law in India*", Contribution of the Supreme Court, Deep & Deep publications Put. Ltd. New Delhi, 2006 (Publication) Edition.
18 Thakur, Kailash, "*Environmental Protection Law and Policy in India*", Deep & Deep publication Pvt. Ltd., New Delhi, Reprinted 2005.
19 Dube, Indrajit, "*Environmental Jurisprudence Polluter's Liability*", Lexis Nexis Butterworths.

WEBSITE

1. www.ielrc.org/research -water.php/Articles
2. http://www.india water portal.org/channels/drinkin
3. www.india resource.org
4. www.ielrc.org/content/e9904pdf 19-03-1012
5. http://legalseruicesindia.com/Aritcal-Environmental Justice Right to water-101
6. http:// edugreen'teri.res.in/explore/water/conser.htm.

MAGZINE

1. The hindu
2. The times of india
3. National Law News
4. Our Earth- Aliganj Lucknow
5. Journal of the India Law institute

DOCUMENTS

1. Universal Declaration of Human Rights.
2. International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights.
3. Substantive Issues Arising in the Implementation of the International Covenant
4. On Economic, Social and Cultural Rights - General Comment No. 15 (2002)
5. United Nations Committee on Economic Social and Cultural Rights.

STATUTES

1. Environmental protection act 1986
2. Water pollution & prevention act 1974

DRAFT

1. National water policy & program

Value education in teacher training

Dr.Sujan kumar Patel
Associate Professor
Dept. of Education, Madhav University, Pindwara, Sirohi, Rajasthan,

Dr.Shefali Patel
Assistant Professor, Samarth college of Education, Pavi-jetpur Shri Govind Guru University

ABSTRACT: -This paper is based on reviews of critical analyses of existing literature on values education in training of teachers. The analyses point at the importance of values education for both teachers and pupils as they plan to help one to relate values to corresponding actions in life based on informed and reasoned positions.

In the last quarter of 2019, Praveen P has already finished in the 21st century. That is the limitation of existence (Existential Vacuum) is experiencing. By helping humans to survive, the human race became an antidote to the disease. Has been Teshavadh is experiencing an increased risk. On the one hand, there is a lack of knowledge and technology. There are many different types of cosmetic facial enhancement available. Tya rem nav ek prakarri, anantadrak**.** The patient is suffering. In such a geographical face-ecliptic, the nine are inclined towards the 21st degree. In the midst of it the heart-wrenching screams of joy and happiness are heard. On the one hand, I received new information but on the other hand, he has become a fool and is wandering in the path of destiny.

Wandering in the endless and eternal world, the new day is pushed into the distance of more and more self-interest. Today's mnav, born in the sun, is immersed in the river of sun. This is why science is innovative Itapunatjivanan Pya Neajeluna has passed away. Value education has become very important in teacher training. We are committed to imparting valuable education to the coming generations.

Key Word: Value Education, Value, Education,Teacher.

Introduction:-The National Education Policy 1986 and the advent of technology in the 21st century introduced several new themes in education. Students learn value from the teachers than from the texts taught by them. In this concern teacher education needs reorientation to meet this demand. The paper provides rationale in support of teacher and value-oriented education. The paper also considers different practical issues in this orientation and suggests remedial measures.

which is Mainly Vocational Education, Computer Education, Management Education, Special Education, Value Education etc., all of these loans in the original

regulations are important findings in the educational process. Only the minimum which are essential in life, and which are important in individual human beings and also in public human beings.

By default, such a concept is of value education. Value education is still the essence of the history of economics of education. The period of education is not the teacher who teaches, Gives answers, gives answers and tries to improve the soul. This is the element of value education. Aadhar is an educational institution. The knowledge, practices and skills of education are valued in the education system, these knowledge and practices acquired by the teacher are based on the culture. This vision includes cultural, religious practices, religious rituals, The real value of voters is in the education system. Jani (1994) raised awareness of the power of the electorate, the family, the image, the nation, and the environment. Education value education is a saying that motivates people to do. During teacher training, teachers themselves have to inculcate values in educational practice, and those values should be reflected in their lives as well.

Just fall. If there is no teaching period in this teacher category in the same year, then the values of

Filled in the sun. Therefore, it becomes necessary to get this value education.

Objectives of the Study:

1. To explore the importance of value education
2. To study the concept of value education
3. To explain the role of teacher in promoting values.

Valuable Education Chapter

Individual Values Education

These values are based on the individual birth weight, regrowth, gender. The pride of labour, the immortal pursuits of life

To look forward and not to act in any way, is the duty of the individual and is not concerned with the job.

Knowledgeable, Scientific perspective, Respect for others, Self-discipline, Goal-setting, Self-motivated, Self-motivated.

Teacher Values Education

Among them, the values are set in the most practical way in the world. As Paying special attention to the public domain, geographical and natural objects, to represent others, The spiritual power of women, the spiritual power of women, kinship, lokiv, pu-pachi, prini, mnava etc. towards living beings. It is used to represent the concept of forgiveness, the concept of forgiveness, i.e. giving money to others, etc.

Cultural Values Education

The scholarly education passed down from generation to generation in which the individual resides is the pride of other schools. An important aspect of education is the value of values. The main one of which is the high level of realism. Bushwadh cal Gani To carry out each and every transaction within the approved framework of the above-mentioned events. Ahaani's son, Apadargraha, self-respect means not self-deprecating or taking other people's money. The number of buttons not counting the number etc. is variable.

Economic value education

Entering into these values, a person gets the essentials of life, money, money, etc. This activity increases the ability to live life. Acquiring the necessary funds in the course of life is a valuable resource. I consider the entries in the selected and assigned restrictions to be the most important in terms of their results (outputs). Individual wealth may contribute to productivity, but may not be accessible to others, etc.

Female values education

Nationally recognized children who are entering the protection market and are also covered under certain conditions. Lev Yeluhoy. Such as patriotism, self-determination, the heritage of patriotism, in which nationalism is the main thing, individualism. Ushachat Muktaashabhapraya, the desire of the person to be satisfied and to eat the fruit of love and affection is Loki. There is an attitude. 3. Use and protect the physical, mental and emotional components of the structure. National awareness and environmental conservation education are also important in Vrishavadh.

Value Education

A person's medical condition is characterized by certain things such as internal communication between the person and the patient. There is and individual is embodied in the product of universal values. Why is the observer on the clock? The behaviour of the person who gives the name of Napshwarat. The main concern is that the standards set by the system are strictly enforced Plan. Be kind to each other, love for other living beings, love for others, eternal courage, every individual. In other words, accepting others' opinions, the individual has an explicit congruence between extrinsic beliefs and internal beliefs. Just as the person's origin expresses the objective person, it refers to the person's identity or other sources of knowledge. Things like following the rules effectively, etc. are important.

Subjective Values Education

1. The quality of an individual's ability to accept geographic beliefs on some and associations with geographic objects on others.
2. Dhammatangeni

These values are static, universal values, both personal and personal. Bhaushtak Nebilepar Bhaushtak jagat no swik Rs And it makes significant contributions to these values.

3. Lord love
Obedience to God and the conduct of life is eternal and the acceptance of the union of life with God. Marks
4. Prakrishat Sacharan
Study of nature and acceptance of the divinity expressed in it.
5. Anani
The quality of the face of the nava in relation to physical objects or complete emancipated happiness.
6. The Ramatak
Sacred books, reading of scriptures, remembrance of the divine, the satisfaction of the Lord. Dhammatguru and Dhammat villages
7. Even spiritual fear
Receive spiritual guidance on practical and material things as well as careers, careers and life goals. Etc The subjective value of things like this is immense in education.
8. Upaniha
Value education is a training program in the field of physical education as well as in the development of new personality. Values
Personality formation is also known as personality traits. Values play an important role in shaping personality.
Value education is one of the most important aspects of moral values. Other than that, some of them are charitable There are significant values. Cultural values are complementary to each other. On the one hand, culture is a preconceived notion of values.
On the other hand, westernized values are the nurturer of human culture as well as human life.

Conclusion

Only an ideal teacher whose life itself is a beacon light of values can lead a society in the right direction. He has to demonstrate the essential values such as optimism, motivation, willingness to learn and teach, truth, non violence, never to speak and think ill of others, creativity and ability to demonstrate unaddressed love. Promotion of human values in the society depends on the promotion of good qualities among individuals. In every tradition and in every country the place of a teacher, not only in the institution but also in society, has been glorified. According to a Japanese saying- A poor teacher tells, an average teacher teaches, a good teacher explains, an excellent teacher demonstrates and a great teacher inspires. To inspire the students, a teacher should discharge twin roles- one is to mould himself and other to mould others. A nation with atomic power is not a strong nation but a nation with people with strong character is indeed a strong nation.

Suggestions for the future Study

Indifference to the importance of values in teacher education; Lack of skills to enable lecturers to acquire skills, knowledge and language that facilities values development; Inability to prioritize values in the PTE curriculum; Inadequate skills to integrate values in the teaching and learning processes; and v. Minimal attention given to inculcation of values in teacher education.

****

References

1. Central Board of Secondary Education (2003). Value Education, A Handbook for Teachers. New Delhi: CBSE. - DEST (2003).
2. Values education study. Melbourne: Curriculum Corporation. - DEST (2005).
3. National framework for values education in Australian schools. Canberra: Department of Education, Science and Training. - Habermas, J. (2001).
4. The liberating power of symbols: Philosophical essays. Cambridge: Polity Press. - Kalita, Kirtinath (2015).
5. Need of Value Education and a Teacher's Role, International Journal of Social Science and Humanities Research, Vol. 3, Issue 4, pp: (566-571). - Kaur, Kuldeep & Nagpal, Balwinder (2013).
6. Teacher Education and Role of Teacher Educators in Value Education. Educational Confab, Vol. 2, No. 11. - Lovat, T. & Schofield, N. (1998).
7. Values formation in citizenship education: A proposition and an empirical study. Unicorn, 24, 46-54. - Lovat, T. & Toomey, R. (2007).
8. Values Education and Quality Teaching: The Double Helix Effect. David Barlow Publishing. - Lunenberg, M., Korthagen, K. and Willemse, M. (2007).
9. Value-based teacher education: the role of knowledge, language and
10. golden moments. In Russell, T. & Loughran, J. (eds.) Enacting a pedagogy of teacher education. Values, relationships and practices, (pp 166- 181). London: Routledge.
11. Radha, P (2016). Role Of Teachers In Imparting Value Education, National Conference on "Value

The Educational System of Indian Society in Chetan Bhagat's Five Point Someone

P. Iyyappan
Ph. D., Part-time Reserach Scholar in English,
PG & Research Department of English,
Karupannan Mariappan College, Muthur,
Tiruppur (Dt) Tamilnadu – 638105.

Dr. V. Suresh
Head and Associate Professor of English
PG & Research Department of English, Karupannan Mariappan College, Muthur, Tiruppur
(Dt) Tamilnadu – 638105.

Abstract:-Human race has jumped over the boundaries of countries and geography in the post-modern time with progression of internet. In this modern period, knowledge is considered as money and those who have talent are becoming successful. In the competitive world, a student can be victorious, if he has multifarious talents like technology, formation, innovation, energy, risk taking and chivalrous spirits as these are basic elements to success and talents can be promoted through education and culture. Education is the provenience of intelligent people and human resources; it is also the establishment of civilization. In the novel *Five Point Someone*, the novelist comically expresses the solemn note which creates awareness to the engineering colleges to change their conventional teaching method. Teachers help the students to use their knowledge to innovation. Both originality and creativity should have to be encouraged. *Five Point Someone* is a light irony on the present education system and impulses for improvement. Bhagat has portrayed a realistic picture of the campus life in this novel.

Key Points: Introduction, Education, Society, Conflict.

Introduction:-It is a fact that literature is a reflection of society. It replicates vices and virtues of the society. Chetan Bhagat, in a literary piece, designs the human life and actions in such a way that they give certain message to the society for its betterment. As a writer, Bhagat is the product of his age, his writing is certainly affected by the attitudes, morale and values of the society in which he is brought up. Bhagat uses the real life around him as his raw material, transforms it into a piece of literature with the use of his imagination, emotion and presents it before the society as a mirror with which people can look at themselves and make amends where necessary. Thus, literature has a corrective function besides being the reflection of society. Chetan Bhagat, in his best-selling novel *Five Point Someone* has depicted various aspects of current Indian educational system. Bhagat, IIT and IIMA graduations have confessed the alarming truth about Indian education system in his *Five Point Someone* treats the life of three friends Hari, Ryan and Alok at IIT and their dilemma due to their ruin to encounter with the grade-point system. The novelist is more disquiet about what to do after obtain admission into an IIT than the admission process itself. He discloses out that entering into IIT is not at all hard as is made out to be.

Grade System in Education-Student's creativity is doomed by the educational system and the professors who are the essential part of the system. Because of Prof. Vohra's negative reception Ryan stops attending his class and gets copying the assignments directly from Hari's notes. This is how he gives up designing. Bhagat criticizes in his novel about the conventional method of education that students entirely loss their young age for secured high grades in the studies. They spend regularly nine hours in the class room, extra studies in tuition centres and labs. The remaining time at evening they continue the study in the library or the hostel room as they have to prepare report cards and assignments, the class tests are an additional pressure for them. Hari mentions that each subject has two minor tests, one major and three surprise quizzes: "seven tests for six courses meant forty-two tests per semester, mathematically speaking." (P. 12) Ryan's dissatisfaction with such an educational system has a wide appeal in the students' community: "Damn ... What a crazy week; classes, assignments, more classes, assignments and not to mention the coming -attraction quizzes. You call this a life" (*FPS* PP. 13-14) He further says: "I think this is jail it is. Damn jail … working away like moronic drones until midnight. Man Pro yesterday, ApMech day before, Quanta today ... it never ends." (*FPS* P. 14) The novelist has disclosed the mistakes like grade-point system which makes the whole academics a race. It strongly shows how the entire educational method turns as a serious notion of competition instead of support. The students compare themselves by high grades in the result and they are not unified. The professors create their students to become intent so they may do whatever for reaching their goal. The students will have few friends in the college as all their classmates are their challenges. Yenket and Prof. Cherian are the best examples in this sort. Yenket is a real mugger and can do anything to get the topper in the class. He does not get any intimate friends in the campus. He has changed as a selfish with a certain extent to accomplish the status of the topper. Prof Cherian is the elder edition of Yenket. Prof Cherian's state is the end of Yenket's way of life. Prof. Cherian had no friends like Yenket in his life even he was a successful person. He has even lost

his only son, Sameer, as he has visualized his aspiration in his son's future, so, Cherian feels miserable in his life. Even his daughter is not comfortable for telling the secret of Sameer's suicide. Yenket has begun walking on the way of Cherian's life compete with others to be the first. The students make enemies rather than friends from college. The novel pictures the modern scenario of education and its object about job and placement. The only aim of study for most of the students in India is to accomplish a job. Hence, the aim of education to the students is earning only money rather than knowledge. Hari points out that those who are mugging the syllabus, getting pass mark then own a job easily. Thus, the conventional method of teaching only helps the students to score high grade in the examination, so it is not right method of education, generally, education is a tool for yearning knowledge. In this way, the traditional teaching perspective had been followed only on exam oriented. In order to argue with Hari and Alok, Ryan expresses his despair on continues mug up, tests and assignments, shows his annoyance that there is no time for innovative ideas. Ryan makes inquiry about the esteem of the reputed engineering institute like Indian Institute of Technology. He says:

You know guys this whole IIT system is sick ... Because, tell me how many great engineers or scientists have come out of HT? ... I mean this is supposed to be the best college in India, the best technology institute for a country of a billion. But has IIT ever invented anything? Or made any technical contribution to India? ... Over thirty years of IITs, yet all it does is train some bright kids to work in multinationals. (*FPS* P. 34)

Ryan does compare IITs with MIT in USA. On Hari's debate of the budget is the main cause for MIT's much better achievement than that of IITs hence Ryan says: "See, it is not always the money ... IITs cannot do space research, but we surely can make some cheaper products? And frankly, money is just an excuse. If there is value, the industry will pay for research even at IIT." (*FPS* P. 35) The grade-point system and study pressure for students is incorrect. It spoils the best years of student's life. It does not permit creativity and original thinking. In this system, a so-called capable student is the one who can mug up the lessons before the day of the exam and can emit out the mugged up things in the answer paper. Every individual is unique in their way. Each has their own ideas, nature and sense of taste, likes, dislikes, perceptiveness and background. Each student is different from the rest of the world. Our current exam system aims to evaluate all the different types of students with the same syllabus, with the same question papers and with the anticipation of the same answer. Ryan criticizes the unjust educational system, he states: "Yes sir, let us mug and cram. Otherwise, how will we become great engineers in this great country?" (P. 18) The knowledge and competence of the students are estimated based on the grade-point, what they score in the exam. Education creates students' careers, but the system evaluates only the memory power of the students. The present evaluation system does not evaluate students' extra-curricular like sports or music etc. The only measurement for judging student's talent is how much they can mug up before the day of the exam and how well can they execute their memory power in the answer sheet. Ryan is the typical example of a talented guy who is wrongly evaluated by the incompetent educational system. Also being sporty and elegant, he is much sound in engineering, nobody can chase him in practical knowledge which is essential for real life. Prof. Cherian is typically a strict professor who likes to illustrate his importance over students; he throws a piece of chalk at the student whom he finds talking to others in his class. When he hears rustlings in the class, he smashes the duster on the table vigorously saying that the rest of the sixty minutes no one talks in the class.

Conflict with Teachers-Students and teachers educational conflict is the main problem in this novel. Professors anticipate the same level of knowledge from students who have succeeded after years of experience. Professor Dubey's ego makes harm when Ryan challenge his proclamation and provides a logically intense argument. The professor's conceited self seems in the following words: "What are you trying to do? … Are you saying that I am wrong? … Watch it son. In my class, just watch it." (P. 1I) They force the students from the first day of the college by implying them to do assignments, projects, quizzes, and surprise test. Students are forced by the name of job. Professors threaten them about quiz and internal marks. Prof. Sen one day appears in the class and says his students to prepare for quiz rather than spending time in making fun. The mercilessness of professors are expressed when the physics professor gives a hard look at Alok's request for re-quiz as he couldn't do well due to his father's ill health. Ryan is embraced for his originality by Prof. Vohra who teaches students to design a screw-jack and asks them to repeat it. But Ryan does not copy, he makes a new design in the 'modified screw-jack' in which one cannot manually open and raise the jack. A flat tire engine has failed; hence one could attach a motor on the traditional jack and hook it up to the car battery. Prof. Vohra insults him for doing something different from what he advocates. It reflects how students are pressurized to stick to the syllabus and not permitted to do something innovatively. Creativity, in this system, is not valued and appreciated by teachers. Prof. Vohra is an example of many conventional teachers with a high ego who

cannot tolerate anything different from their consciousness. In this connection, the syllabus and content in our education system does not change with the pace of changing the world. The technology has tremendously changed but the course's syllabus does not change in the technical education. The course teaches to the students a little use in the real life. Even the people who frame the course content are not based to the need for corporate and industries. And professors demand the students pose to the outdated course. Bhagat criticizing the education system in one of the articles of his book, *What Young India Wants* has said:

We treat lessons as rules to be adhered to, and the better you confirm, the more likely you are to score ... Innovation, imagination and creativity. Crucial for our country as well as, more likely to bring the best of any student, have no place in our education. We ensure we kill this spirit in the child as fast as possible. Because innovation by definition means challenging the existing way and that is not just something good Indian kids who respect (PP. 121-122)

Conclusion-Earlier novelists have devotedly represented the social values, principles and ethical values which have occupied a chief role in shaping the lives of Indians. They appreciate a tradition of conviction and standards, ethnicity and ceremonies even doctrines and blind beliefs. However, the social environment as portrayed in the novel of Chetan Bhagat in the post modern era of the society. The Educational setting is alarming with the dissolution of the value system and utter bewilderment due to lack of explanation of values with context to the new challenges. The astonishing communication technology which today surrounds the world rarely uses its great ability to spread global values and promote a more caring compassionate consciousness, thus Chetan Bhagat suggests the significance of the educational values and his novel vividly reflects the Indian educational system.

****

Work Cited-

1. Agarwar, Beena Dr. *Chetan Bhagat: A Voice of Seismic Shift in Indian English Fiction*. Yking Books, 2013.
2. Ahuja, Ram. *Society in India*. Rawat Publications, 2011.
3. Bhagat, Chetan. *Five Point Some One*. Rupa Publications India Pvt. Ltd., 2004.
4. R.K. Dhawan & R.Gosh, Tapan. *Chetan Bhagat The Icon of Popular Fiction*. Prestige Books International, 2001.

The Inner Sufferings of Women in Shashi Deshpande's The Binding Vine

A. Sagayaraj

Ph. D., Part-time Reserach Scholar in English, PG & Research Department of English, Karupannan Mariappan College, Muthur, Tiruppur (Dt) Tamilnadu – 638105.

Dr. V. Suresh

Head and Associate Professor of English, PG & Research Department of English, Karupannan Mariappan College, Muthur, Tiruppur (Dt) Tamilnadu – 638105.

Abstract-Women's sufferings have been depicted in various ways by writers of modern Indo-English fiction. Many writers have depicted women characters and their sufferings in their novels but only sketchily and superficially, the women portrayed and seems it too distant from reality; to crude, moralized or sentimentalized, mainly because the women characters have very little scope in their work. The women are shown suffering either from male domination or abject poverty, but that the suffering and the inevitable fate of the woman is what the writers seem to underline. But Shashi Deshpande vividly portrays the inner sufferings of women in her novels. Women are sometimes unable to express their inner sufferings and it is burning as a fire in their mind. Male society must have to realize it to eradicate completely. Male society should not study women instead of that they must understand them.

Key Points: Introduction, Feminism, Sufferings, Plight.

Introduction:-Since women in Indian society have had a long history of oppression, exploitation, inferior and marginal status, awareness in the social context is necessary, particularly to understand the worth of novels like Shashi Deshpande's. Women as objects of pity are portrayed from the male point of view the girl child, neglect and over burdened with the work of an adult woman or living an infernal life in stinking hutments, the daughter cursed at birth by parents for far of dowry, as a helpless wife being tormented by the husband and his family are accused for giving birth to a girl or for being barren woman as mother, seeking out a marginalized existence, particularly if widowed or woman as vulnerable to mental hostility and physical assault from man, both at home and in society are also portrayed. There is at times an attempt to come as close as possible to reality by the writers but nowhere is there an attempt to give voice to the women's innermost feelings or an attempt to understand her.

Deshpande, The Writer of Feminism:-The Indian woman is now clamoring for reorganization of herself

as not just a woman but as a person, an individual acutely conscious of her position, both in the family and in the society. Inspired by the feminist movements in the West, some Indian women in their desire for freedom, have made a total switch over to the other side, seeking freedom from everything, even from their culture. However, Shashi Deshpande's protagonists do not strive for the kind of freedomthat the emancipated women of the West seek so fiercely but in conformity with the society they live in without drifting away from their culture. Shashi Deshpande does not take to the theory that women are victims. The dependency syndrome in women is responsible for their victimization and Deshpande, through her writings, exhorts women to offer resistance and emerge as strong willed individuals to face life, to share responsibilities and not to escape from them. Through the ever remembering presentation of the feelings and aspiration of women, Deshpande has added a humble contribution to the cause of women. But in spite of her leaning towards feminine sensibilities, Deshpande never says that she is a feminist writer:

I consider novel as a piece of art, it cannot carry message. There are struggle of being women, in this patriarchal society, it is hard. So, this is the picture I present in my novels. I am not telling you what to do nor I am spelling out the message of feminism. I am not a feminist writer. If you call me a feminist writer, you are wronging me, because I see people as human beings. In my novels you will not see bad men, good women. All of us have both the qualities…some good and some bad and you know it is all there in my novels, in my characters. (*Deshpande* 15)

The Inner Sufferings of Women in *The Binding Vine*:

The inner sufferings of women is vividly expressed in the novel *The Binding Vine*. It is shown the perennial truth of how all the human beings in life, parents and children, relatives, strangers, men and women are bound by the vine of emotional attachment and struggle to enjoy the beauty of life and overcomes the ugliness in various ways. One may describe the emotional bondage among the human beings as a part of Maya of mortal life. But the characters in this novel, far from running away from the anxieties of life, indulge in life with a lot of gusto and face it boldly. Written in the third person singular mode, the novel is centered on the life of Urmila, a sharp-tongued and self-willed woman. The author's feminists, obviously, has helped her to depict the mind and heart of the protagonist microscopically and with an insider's authenticity of exercise. Urmila, though not very poor, has been leading a contented married life. She is educated and teaches in a college. But the happiness of her domestic life is married by the unexpected death of her female baby, Anu. She remembers the child time and again and sorrows over it. In her despair, she bangs her head against the wall. The experience of frustrated motherhood keeps on gnawing at her soul. She feels the emptiness of life very intensely and suffers from utter helplessness about it. Her psychic problem is aggravated further by her physical problem i.e. asthma. Though relatives try to console her, she continues to feel the blankness of life haunted as she is by the memory of her dead daughter both in reality and in dream. Although she has other children like Karthik, she finds it extremely difficult to forget the dead baby. The emotional vine that binds her to her daughter cannot be served even after the death of the baby. In fact, it becomes stronger and stronger as days go by. Frustrated motherhood of a different kind is depicted through the picture of another woman, Shakutai. Although Urmila is neither a friend nor a relative of Shakutai, she develops a concern for her and her daughter Kalpana again, because of the binding vine of humanitarianism. Shakutai, who is choked to learn that her daughter has been spending her days in the hospital attending upon Kalpana. When Urmila happens to meet Shakutai and understands her plight, she tries to give her moral support.

She escorts Shakutai to her humble house. She visits the hospital repeatedly to offer moral support to Shakutai who is deeply worried about the gossip in her chawl generated by her daughter's case. She tells Urmila how she had married a worthless man who was jobless and who forced pregnancy on her and how Kalpana was born as an unwanted child for her. Since Kalpana's stay in the hospital has been almost interminable, the authorities of the hospital are planning to discharge her from there. But Shakutai does not know what to do next and where to go, especially when she has no money to support her. Urmila wants to help her in her own way. She introduces Shakutai to her classmate, Malcolm, who is a journalist and explains the whole history of the case and the decision of the hospital authorities to discharge the patient i.e Kalpana. Accordingly, Malcolm interviews Shakutai and gets the news published in the local newspaper much to the chagrin of the poor mother. In spite of the fact that the journalistic publicity causes terrible embarrassment to Shakutai, it helps her at least in one practical way. As a result of the wide publicity in the newspapers, the authorities of the hospital decide not to shift Kalpana from there.

Like Shakutai, Salu also is helpless and has a libidinous husband who had an eye on Kalpana from the beginning. Salu is shocked to know that it is her husband Prabhakar who has raped Kalpana and been trying to escape the police. Shocked by the terrific news of her husband's heinous act, Salu commits suicide by burning herself. Salu who was the only person, who offered some kind of emotional security and moral embodiment

of suffering in the patriarchal society of India. Whereas her sorrow is aggravated by the factors like illiteracy, Kalpana's tragedy is caused by adamancy, self-will, recklessness, exhibitionism and limitless freedom. Shakutai tries to find meaning in her life by giving her daughter all the facilities which were denied to herself like good education, a good job and a respectable marriage.

But all her dreams are frustrated by her daughter's reckless and brainless behavior like painting her lips, dressing herself up and moving about with strangers, without knowing her own biologically determined limitations. Thus, the mother and the daughters exemplify two contrastive patterns of behavior, but ironically enough, both of them suffer in their own ways. The solution to their problems is not easy to achieve. Both of them are identical in the quality of their frustration, though different in their mode of frustration. Urmila tries to share their sorrow purely on the ground of humanitarian sympathy. Whereas Urmila is bound by the vine of sympathy with Shakutai and her unlucky daughter, Kalpana, in the present, she is also bound by the same vine with her own mother-in-law who lived in the past. When she accidentally discovers the Kannada writings of Mira safely kept in a trunk on the loft, she reads them avidly and discovers the sad story of Mira. She is sad to learn that Mira, being a sensitive girl, did not love her husband who could not understand her heart or mind. Mira's husband possessed her physically but could not comprehend her psychic and artistic dimension. Mira was, thus, subjected to rape in marriage and being a lady of super-sensitive temperament, had a great repulsion for the so-called love or sexual act in theirs was only a physical marriage and never a marriage of minds or hearts.

Thus, frustrated with the physicality of marital life, Mira tried to achieve her true identity by writing beautiful lyrical poetry. That was the only way to escape from the sense of isolation and emptiness of her humdrum life. Urmila, who reads through the pages of Mira's poems, is deeply touched by the tenderness of feelings expressed in them and can easily guess her suffering through her own feminine imagination. She sheds tears of sympathy for Mira's miserable condition in the past. She wants to translate and publish Mira's poems in order to immortalize her in the world of art. That is the way of paying her homage to her dead mother-in-law. *The Binding Vine* deals with the multi-facetedness of its protagonist Urmi. Her one year old daughter has died and she is unable to forget her because her memories haunt Urmi. She fights with the memories but also realizes that forgetting is betrayal:

I must reject these memories, I have to conquer them. This is one battle I have to win if I am to go on living. And yet my victory will carry with it the taint of betrayal. To forget is to betray. She also realizes her responsibility to her living son Kartik who needs her love and watches her anxiously. It is not that she takes every death of her kith and kin in this way. When her father died she could bear the shock easily. She says that Papa is only a memory, a gentle memory. (*TBV* 27)

But Anu is different. When she wants to have a framed photograph of Anu on the wall, she reacts bitterly: "I don't need a picture to remember her; I can remember every bit of her, moment of her life. How can you imagine I need a picture…?" (*TBV* 68) But when her friend Lalita asks how many kids she has, she replies and soon she realizes that she has done injustice to Anu: "Only one, a son…the words keep hammering in my mind. How could I. Oh God, how could I? That was betrayal, treachery, how could I deny my any? Only one son…how could I?" (*TBV* 106) Obsessed with the memories of her daughter, she comes across a photograph of her mother-in-law Mira, which is introduced as:

Lisper's mother. Kartika's grandmother. She sees a group photograph of Mira and from the formality of the picture she conjectures that it was taken to mark an occasion Mira's wedding perhaps a parting of ways for a group of friends, the end of a chapter. (*TBV* 43)

The trunk from which she gets the photograph contains many books and diaries of Mira. The poems of Mira are in Kannada and the diaries in English. Inquisitive to know more about her, she asks Akka about her. Akka tells her that her brother saw Mira at a wedding and fell in love with her. Since then he had: "Single-minded pursuit of an object: marrying Mira." (*TBV* 47) He was suggested as a good match for Mira and in this way the marriage was arranged. She died while giving birth to Kishore. Urmi notices the difference in handing over of Mira's property to her. When Akka hands over little bits of Mira's jewelry, she says: They are Kishore's mother's…I kept them for his wife. But when she hands over the books and diaries of Mira, she says, take this, its Mira's. She did not mention Kishore at all, as if she was now directly linking me with Mira. (*TBV* 48) This shows that a woman loses her identity after her marriage. She is seen either as a wife or mother who in a way erases her real self and a wife or mother which in a way erases her real self and imposes another alien self on her. The difference made by Akka symbolizes that the poems and diaries are: "self-actualizing, whose identities are not dependent on men." (*TBV* 48) After reading the poems, Urmi realizes the suffering of Mira: "the woman who wrote those poems in the solitude of an unhappy marriage, who died giving birth to her son at twenty two" (*TBV* 48) in the eyes of Urmi, Mira's diary: "is not a daily account of her routine life but a communion with suffering and tries to probe into Mira's poetry to visualize the kind of troubled life she had lived. Taken

together, the poems and the diary entries connote molestation in marriage. For an instance, Deshpande admits as: "But tell me, friend, did Laxmi too twist brocade tassels round her fingers and tremble, fearing the coming of the dark-clouded, engulfing night?" (*TBV* 66) This is further denoted by the diary entries like the following:

But I have my defenses; I give him the facts, nothing more, never my feelings…And so it begins. 'Please,' he says, 'please,' he says, 'Please, I love you.' And over again until he has done 'I love you'. Love: How I hate the word. If this is love it is a terrible thing." (*TBV* 67)

Such passages embody the psychological fears and physical suffering of Mira. Urmi wants to share this suffering with Vanna, her friend from childhood and now her sister -in-law but she cannot, because:

I cannot speak of Mira, of Mira's writing, to her. That is another packet of silence between us. One can never see one's parent as a sexual being; he or she is merely a cardboard figure labeled 'parent'. Don't tread paths barred to you. Obey, never utter a 'no'; submit and your life will be a paradise, she said and blessed me." (*TBV* 83) Urmi feels the burden of the dead on her. She had taken several things of the dead Balaji's silver chains, her saris and Mira's bangles but none of these meant much to her. Contrasted with these Mira's poetry is: "Like a message being tapped on the will by the prisoner in the next cell." (*TBV* 115) Urmi visualizes the moments when and where Mira could have written the poems. Certainly, she did not possess a room of her own. Urmi says: "I can see her stealthily, soundlessly getting out of bed, sitting down on the floor by the window perhaps, and forgetting everything while she writes." (*TBV* 127) Mira's diary also mentions her meeting with the rising poet Venu who later became a brand old man of Indian literature. When Mira gave some of her poems to read he said: Why do you need to write poetry? It is enough for a young woman like you to give birth to children. That is your poetry. Leave the other poetry to us men. This is also a kind of brutality because even to force your will upon another is to be brutal. (*TBV* 133) This reflects the agony of a creative woman in an androgenic world. It connotes the handicaps of women writers in a male chauvinist society. This is subordination by domestication. This is a scheme of depriving woman of imagination and the power of communication.

Urmi is surprised to see Shakutai, whose husband has already deserted her for some other younger woman, worried about the marriage of Kalpana who is in the words of the doctor: "neither dead nor alive." (*TBV* 86) But she soon realizes that women like Kalpana's mother find security in marriage. At least they are: "safe from other men." (*TBV* 88) Marriage in the life of such women acts as; urban or view which serves a: "provision of symbolic shelter." (*TBV* 146) As mother Shakutai was afraid of the boys of her chaw because they behaved "like dogs panting after bitches." (*TBV* 146) She had even thought of marrying Kalpana to Sulu's husband Prabhakar who was mad after her. Kalpana rejected the offer and ridiculed Salu was compelled by her husband to make such proposal. When Salu knows that her own husband has molested Kalpana, she finishes her cooking, gives breakfast to her husband and then commits suicide because she wants to avoid telling a lie to save her husband from the police. Her Suicide symbolizes the anguish of the weakened soul of the typical traditional Indian women:

No woman in our land is beyond the threat of rape, because of the suppressed energies of the male, through the taboos of patriarchy, which deny sex before marriage and make male-young into wanton animals who assault any possible victim, when possessed by lust. (TBV 86)

Though Urmi is accused of being a traitor to Mira and Kalpana, she is resolute to break the silence of women which come in different forms sometimes in the name of the social justifies her stand because she sees these mishaps from the female point of view. These things show that Shashi Deshpande is an Indian feminist writer who does not go to the extremes. It is significant that in the creative female world of Deshpande all men are not villains. The husband of the protagonist Urmi is good to her and she is fully satisfied with him. But she realizes the responsibility to her own caste the Stri Jati and struggles to bring its truth before the society. This embodies the depth of the dimension of personality of Deshpande's heroine. The present study sums up the various inner sufferings of women faced in their life is vividly portrayed by the novelist.

Conclusion:-Shashi Deshpande presents the Indian shades of feminism and she makes it very clear that hers is not the strident and militant kind of feminism which sheds the male as the cause of all troubles. Rather her writing deals with the inner mind of the woman. Though her novels she presents her complete, holistic and harmonious view of Indian woman's life. She not only projects the problems of woman, but the problems of entire Indian society. Freedom lies in having the courage to do what one believes is the right thing to do and the determination and tenacity to adhere to it. This can bring harmony in life. Freedom is the by-product of individual efforts and sufferings. The more one makes others responsible for our life, the more one is slaves. If one can realize the responsibilities, if one feels that I am the cause, then one can change ourselves. Psychologically, human being is the lost product of unconscious of evolution, which is always mechanical and natural. The

women and their sense of frustration and alienation is given more important than before. The unwilling submission is the problem faced by women in earlier fiction, the problem of fusing tradition and modernity confront the women in modern fiction. However, it also brings to the surface the capacity for adaptability and suffering as well as their power to sublimate, though reconciliation of the opposing trends is not easy. More attention is given to the emotional and intellectual conflicts that the women encounter.

****

WORKS CITED-

1.Adam Kuper. *The Invention of Primitive Society: The Transformation of an Illusion*. Routledge, 1988.
2.Atrey, Mukta and Viney Kirpal. *Shashi Deshpande: A Feminist Study of Her Fiction*. B. R. Publishing Corporation, 1998.
3.Bala, Suman, Ed. *Women in the Novels of Shashi Deshpande*. Khosala Publishing House, 2001.
4.Cora Kaplan. *Sea Changes: Culture and Feminism*. Verso, 1986.
5.Deshpande, Shashi. *The Binding Vine*. Virago, 1993.
6.De Beauvoir, Simone. *The Second Sex*. Trans and Ed. H. M. Parshley. Vintage Books, 1974.
7.Iyangar. K. R. *Indian Writing in English*. Sterling Pub,1985.
8.Pathak. R. S. Ed. *Deshpande.* Creative Books 1998.
9.Reddy, Y. S. Sunita. *A Feminist Perspective on the Novels of Shashi Deshpande*. Prestige, 2001.
10.Sandhu, Sarabjit. *The Novels of Shashi Deshpande*. Prestige Books, 1994.
11.Singh. R. S. Ed. *Indian Novel in English*. Arnold Heinemann, 1977.
12.Sree S. Prasanna. *Woman in the Novels of Shashi Deshpande: A Study*. Sarup & Sons, 2003.

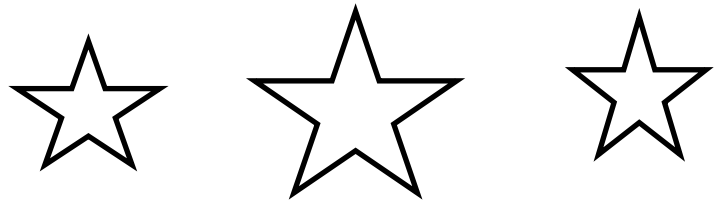

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा स इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।हिन्दी की स्तरीय पत्रिका नागफनी के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा ।

जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं उसमें निम्नोक्त बिंदु आवश्यक हैं जैसे-

1.सरांश
2. विषय वस्तु / बीज शब्द
3.भूमिका / प्रस्तावना
4. मुख्य अंश / उद्देश्य
5. परिणाम / निष्कर्ष
6. सन्दर्भ
7. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 । इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा ।
8. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा ।

मैं ..... सत्यापित करता/करती हूँ की नागफनी के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है स लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य है । किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा / रहूँगी । साथ ही प्रस्तूत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमिटी को संशोधन, संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता / जताती हूँ । शोधालेख प्रकाशित-अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है । स्तरीयता एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा । उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर :-

नाम:-

मोबाइल नं. :-

व्यक्तिगत पंच वार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी । शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा । इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं ।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

UNDERTAKING BY AUTHOR

I———— certify/undertake to say that the manuscript entitled————submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com